बंजारा लोकसाहित्य का मूल्यांकन

शिवाजी विश्वविद्यालय (कोल्हापुर) की पीएच्.डी.उपाधि के
लिए
प्र स्तु त शो ध - प्र बं ध

अक्तूबर १९७५

प्रस्तुतकर्ता
- ~~सादरकर्ता~~ -
सौ. पुष्पलता बी.रामपुरे,
एम.ए.,बी.एड.

- निर्देशक -
डॉ.चन्द्रलाल दुबे,
एम.ए.,पीएच्.डी.,डी.लिट्.
अध्यक्ष, हिंदी विभाग, राजाराम कॉलेज, कोल्हापुर.

प्राक्कथन

सदियों से भारत में बंजारा समाज एक उपेक्षित समाज रहा है। सरकार ने इसे " अपराधी समाज " (क्रिमिनल ट्राइब्ज) घोषित करके इसके प्रति उपेक्षा भाव को और बढ़ा दिया है। इनकी बंजारा बोली का न अपना कोई लिखित साहित्य उपलब्ध है न लिपि। अतः इस घुमक्कड़ समाज के मौलिक लोक-साहित्य तथा लोक-संस्कृति की ओर आजतक किसी का लक्ष्य केंद्रित नहीं हुआ है। न किसी ने इनके लोक-जीवन,लोक-संस्कृति का अध्ययन ही किया है या इनके लोक-साहित्य पर कार्य किया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इन पैंतीस वर्षों में ब्रज, मैथिली, अवधी,भोजपुरी, निमाडी, हरियानवी, मालवी एवं राजस्थानी- हिंदी जनपदीय लोक-साहित्य पर बहुत अधिक शोध-कार्य संपन्न हुआ है और शोध-प्रबंध भी प्रकाशित हो चुके हैं। लेकिन बंजारा लोकसाहित्य पर जहाँ तक मुझे ज्ञात है, अभी तक भारत या विश्व के किसी विश्वविद्यालय में कोई शोध-कार्य नहीं हुआ। बंजारा बोली आधुनिक आर्य-भाषा परिवार की भारोपीय शाखा राजस्थानी-हिंदी भाषा - मण्डल की पुन्तत्वप्रधान विशिष्ट सदस्या है। इसके अतिरिक्त इसका लोक-साहित्य भी काफी समृद्ध है और किसी भी जनपदीय लोक-साहित्य की तुलना में हीन तथा असंपन्न नहीं है। मेरा यह शोधप्रबंध उक्त अभावों की पूर्ति करने का एक विनम्र, मौलिक और नूतन प्रयास है।

लोकगीतों का संकलन करना टेढी खीर है। इस समय अनेक बाधाएँ उपस्थित होती है। प्रामाणिक पाठ का अभाव,अधूरे भाव, ध्वन्यांकन की कठिनाई, ऐसी विघ्न-बाधाओं को उठाते हुए भी येन-केन-प्रकारेण प्रस्तुत शोध-प्रबंध पूर्ण हो सका है।

लोक-साहित्य कोरा साहित्य नहीं है, वरन् वह साहित्य के अतिरिक्त समाज,धर्म, इतिहास आदि भी है — लोक साहित्य संस्कृति का वाहक है। अतः नृतत्व,समाजशास्त्र, इतिहास और संस्कृति से समन्वित व्यापक दृष्टिकोण से उसका अध्ययन होना अनिवार्य है। इस दृष्टि से प्रस्तुत प्रबंध में बंजारा लोक साहित्य के रूपों का वर्गीकरण तथा उसका साहित्यिक मूल्यांकन कर, इसके माध्यम द्वारा बंजारा लोकजीवन की विविध झाँकी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

मुझे अपनी शोध-साधना के निर्दिष्ट पथपर आगे बढ़ने की प्रेरणा और प्रोत्साहन जिन महानुभावों से मिले हैं और जिन अनेक अनाम सज्जनों, माता-बहनों आदि से सहयोग मिला है, उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करती हूँ।

संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित तथा राष्ट्रीय पंडित स्व. श्री बाळाचार्य खुपेकर शास्त्रीजी ने समय-समय पर संस्कृत के संदर्भ ग्रंथों की सहायता दी और संगीत-श्री मदन सकेश्वरजी ने लोक - गीतों की स्वरलिपि तैयार करने में मार्गदर्शन प्रदान किया। अतएव मैं इन महानुभावों की हृदय से कृतज्ञ हूँ ।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय-भारत सरकार, दिल्ली की ओर से उत्तर भारत का शोध-सर्वेक्षण करने के लिए यात्रा-अनुदान मिला और इस कार्य को मौलिक बनाने के लिए बंबई, पूना, जयपुर, उदयपुर, आगरा और दिल्ली विश्वविद्यालयों के ग्रंथालयों की अमूल्य सहायता मिली । इन संस्थाओं के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती हूँ ।

अंत में अपने आचार्य और निर्देशक डा. चन्द्रलाल दुबे, डी.लिट्, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, राजाराम कॉलेज, कोल्हापुर, हाल में अध्यक्ष, हिंदी विभाग, कर्नाटक विश्व विद्यालय, धारवाड के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने में स्वयम् को असमर्थ पाती हूँ जिनके सतत प्रोत्साहन और मौलिक निर्देशन के फलस्वरूप ही मेरा यह शोध-कार्य संपन्न हो सका है ।

यह शोध-प्रबंध मेरे सतत अनुशीलन एवं अनवरत अध्यवसाय का परिणाम है । इसे अधिकाधिक प्रामाणिक एवं सर्वांगीण बनाने के हेतु नाना मूलभूत संस्कृत, हिंदी एवं अँग्रेजी आदि ग्रंथों, विविध जन-गणना-साधनों तथा पत्र-पत्रिकाओं को उपयोग में लाने की यथाशक्ति चेष्टा की गई है और स्थान - स्थान पर इसका निर्देश भी किया गया है ।

इस शोध प्रबंध को विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे हार्दिक परितोष का अनुभव होता है । उनका संतोष ही मेरी सफलता है —

" आ परितोषाद्विदुषां न साधु, मन्ये प्रयोग विज्ञानम् ।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्य प्रत्ययं चेत: ।।"

हिन्दी विभाग,
आर्.एल्.एस्.इन्स्टिटयूट,
बेलगाँव-१

- डा. पुष्पलता बी.रामपुरे

अनुक्रम

पृष्ठांक

प्र थ म अ ध्या य

भारतीय लोक साहित्य की परंपरा

प्रथम अध्याय

भारतीय लोकसाहित्य की परंपरा

किसी भी लोक-संस्कृति के मूल में व्यक्ति-समूह का विकास निहित होता है। यह व्यक्ति-विकास का तत्व जातीय विकास या लोक-संस्कृति के विकास का उत्तरदायी है। व्यक्ति या लोक-समूह का यह विकास किन्हीं संस्कारगत परंपराओं, वंशानुक्रम एवं जातीय संभावनाओं से पृथक रहकर नहीं होता, बल्कि वह देश, काल, परंपरा, जातीय अहं चेतना एवं संस्कारों के धरातल से जुड़ा होता है

व्यक्ति-समूह के विकास-क्रम का मूल स्रोत सर्व व्यापी, गतिशील एवं उर्वर लोक-मानस है। इस लोक-मानस की विशाल परिधि में संसार की समस्त चेतन और अचेतन शक्तियाँ समाविष्ट होती हैं। वस्तुत: लोक-संस्कृति का मूलोद्गम लोक-मानस ही है। लोक-संस्कृति से हमारा तात्पर्य जन साधारण की उस संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा, शक्ति एवं ज्ञान " लोक " से प्राप्त करती है, जिसकी उत्स भूमि जनता है और जो बौद्धिक विकास के निम्न धरातल पर उपस्थित होती है।

लोक :

"लोक", संस्कृत की लोक-दर्शन धातु में " घञ् " प्रत्यय लगाने से बना है। इस धातु का अर्थ है देखना और " लोक" शब्द का अर्थ है देखने वाला, अत: वह समस्त जन समुदाय जो इस कार्य को करता है, "लोक" कहलाता है।[1]

"लोक" शब्द अनेक रूपों एवं अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। इसकी परंपरा अत्यंत प्राचीन है। जन सामान्य के अर्थ में[2] तथा लोक - व्यवहार, जीव तथा स्थान के अर्थ में अनेक स्थानों पर ऋग्वेद में इसका प्रयोग हुआ है।[3] वेदों से लेकर उपनिषदों, महाभारत, गीता आदि ग्रंथों में लोक शब्द उपलब्ध है। ऐतरेयोपनिषद में भी इसका प्रयोग भुवन के अर्थ में हुआ है।[4]

आर्यों में "लोक" शब्द का प्रयोग " वेदेतर " अथवा "शास्त्रेतर " के अर्थ में होता था, किंतु आगे चलकर लोक शब्द वेदेतर संस्कृति की संकुचित सीमा तोड़कर ऊँचा उठ गया। गीता में लोकशास्त्र तथा लौकिक नियमाचारों के संबंध में इसका उल्लेख हुआ है।[5] सम्राट अशोक के शिलालेखों में लोक का प्रयोग समस्त प्रजाजनों के लिए हुआ है।[6] बौद्धों के धर्म विकास में लोक शब्द मानवीय भावों का बोधक बन गया। प्राकृत एवं अपभ्रंश में प्रयुक्त" लोकजता" (लोक यात्रा)

" लोकप्पकाय" (लोक प्रवाद) शब्द लौकिक आचारों का भाव प्रकट करने के रूप में प्रयुक्त हुए। आगे चलकर हिंदी में तुलसीदास जी ने भी लोक और वेद की विरोधात्मक स्थिति प्रकट की है।[७] लेकिन उपनिषद काल में वेद और वेदेतर संस्कृति की भेदात्मक स्थिति लुप्त हो गई तथा दोनों के समन्वय से एक विशद सांस्कृतिक चेतना प्रकट हुई।[८] लोक की परंपरा का अनुशीलन मनुष्य को सर्वदर्शी बनाने की सामर्थ्य रखता है।[९] अत: लोक शब्द संसार के अनेक रूपों, मानव-समूहों, मानवीय क्रिया कलापों तथा विचार परंपराओं को अपने आप में समाहित करता है।

लोक का अर्थ सरल, स्वाभाविक मानव समाज है, जिसकी भावनाओं, परंपराओं, क्रियाओं, मान्यताओं एवं विचारों से लोक कल्याणमयी संस्कृति का आविर्भाव सिद्धय होता है। आधुनिक साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों में "लोक" का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत, साहित्य आदि से युक्त होकर साधारण जन-समाज के रूप में होता है, जिसमें पूर्व संचित परंपराएँ, भावनाएँ, विश्वास और आदर्श सुरक्षित हैं।[१०]

वर्तमान काल में लोक शब्द की व्याख्या विविध रूपों में की गई है। पाश्चात्य भाषाओं में लोक शब्द का समानार्थी "फोक" (Folk) शब्द प्रचलित है। सर्व प्रथम थॉमसन ने सन १८४६ ई. में फोकलोर (Folk lore) शब्द का प्रयोग सार्वजनिक पुरावृत्त (Public autiquities) के लिए किया था।[११] आगे चलकर यही शब्द सर्वमान्य हुआ। थॉमसन का मत है कि प्राचीन असभ्य और पिछडी जातियों के अंधविश्वास, उनके रीतिरिवाज, उनकी प्रथाएँ आदि के अवशिष्ट अंश ही आगे सभ्य कहलानेवाली जातियों में प्राप्त है।[१२]

अंग्रेजी के Folk शब्द की व्युत्पत्ति जर्मन भाषा के Volk शब्दसे हुई है, जो एक ओर असंस्कृत जाति और समाज के लिए प्रयुक्त किया गया है तो दूसरी ओर सर्वसाधारण के लिए भी प्रचलित है।

"लोर" .(Lore) शब्द की उत्पत्ति एंग्लो सेक्शन शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है -- " जो सीखा जाय।" अत: " फोकलोर " का शाब्दिक अर्थ " सुसंस्कृत लोगों का ज्ञान " हुआ। इस प्रकार निम्न वर्ग के व्यक्ति से समस्त विचार व्यापारों को " फोकलोर" शब्द में समाहित किया गया है।

ग्राम, जन तथा लोक

हिंदी में ग्राम, जन तथा लोक " फोक " के पर्यायवाची है। पं.रामनरेश त्रिपाठी " फोक" के लिए " ग्राम" शब्द को उचित मानते हैं। इसी आधार पर उन्होंने "ग्राम-गीत " को" फोक सॉंग" का पर्यायवाची बनाया है। उनका कथन है -- " मैंने गीतों का नामकरण ग्रामगीत शब्द से किया है क्योंकि गीत तो ग्रामों की संपत्ति है। शहरों में तो ये गए है, जन्मे नहीं, इससे मैं उचित समझाता हूँ कि ग्रामों की यह यादगार ग्रामगीत शब्द द्वारा स्थायी हो जाय।"[13] किंतु त्रिपाठीजी का यह विचार युक्ति-संगत तथा वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता क्योंकि ग्राम शब्द लोक की विशाल भावना को संकुचित रूप में प्रस्तुत करता है।

कतिपय विद्वानों का आग्रह लोक के स्थान पर " जन" शब्द पर था, लेकिन जन शब्द विशिष्ट वर्ग का द्योतक है। जन साहित्य मौखिक और परंपरागत नहीं हुआ करता। वह शिष्ट समाज के शिक्षित व्यक्ति द्वारा रचित होता है।

"जन" शब्द " जनि" धातु से निकलता है, जिसका अर्थ है -- "उत्पन्न होना।" अत: " जन" शब्द में " लोक" शब्द की व्यापकता समाविष्ट नहीं होती। डा.हजारीप्रसाद द्विवेदी की लोक शब्द की व्याख्या दृष्टव्य है -- "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं बल्कि नगरों और गावों में फैली हुई समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है।"[14] जन साहित्य के पीछे प्राय: व्यक्ति की कार्य प्रेरणा होती है। जनसाहित्य और लोक साहित्य में फर्क बताते हुए डा.नामवर सिंह का कथन है कि -- जन साहित्य औद्योगिक क्रांति से उत्पन्न समाज व्यवस्था की भूमिका में प्रवेश करने वाले सामान्य जन का साहित्य है। लोक साहित्य जनता के लिए जनता द्वारा रचित साहित्य है।"[15]

इस प्रकार समस्त भारतवासियों को ग्रामों या जनपदों की सीमा में बाँधना उचित नहीं है। लोक की सीमा बडी व्यापक है, उसमें ग्राम, नगर और जनपद का अविच्छिन्न समन्वय है। अत: "लोक"शब्द ही " फोक" का सम्यक् पर्यायवाची शब्द हो सकता है। डा. सत्येन्द्र लोक की व्याख्या करते हुए कहते हैं -- " लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह

में जीवित रहता है।"[16] वस्तुत: " लोक " मानव जीवन का विशाल सागर है। मानव संस्कृति का उत्स भी लोक ही है।

हिंदी में सर्वप्रथम ग्रामगीत की अपेक्षा लोकगीत शब्द का प्रयोग करने में स्वर्गीय सूर्यकरण पारीक का उदार दृष्टिकोण ही व्यक्त होता है।[17] इस प्रकार "लोक" में सर्व समाहित है। "लोक" में "लोके वेदे च " से लेकर "लोक कि बेद बडेरी" तक शुद्ध फोक की भावना मिलती है।[18]

लोक-संस्कृति,लोक-वार्ता तथा फोक लोर

प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्ययन और अवलोकन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैदिक काल से ही भारत में संस्कृति की दो पृथक धाराएँ प्रवाहित हो रही थी -(१) शिष्ट संस्कृति तथा (२) लोक संस्कृति। शिष्ट संस्कृति से हमारा अभिप्राय उस अभिजात्य वर्ग की संस्कृति से है जो बौद्धिकविकास के उच्चतम शिखर पर पहुँचा हुआ था,जोअपनी प्रतिभाके कारण समाज का अग्रणी और पथप्रदर्शक था तथा जिसकी संस्कृति का स्रोत वेद या शास्त्र था।लोक संस्कृति से तात्पर्य उस जनसाधारण की संस्कृति से है, जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती थी,जिसकी उत्स भूमि जनता थी और जो बौद्धिक विकास के निम्न धरातल पर अवस्थित थी।

हिंदी में "फोक लोर " के पर्यायवाची शब्द के संबंध में विद्वानों में बड़ा मतभेद रहा है। फोक्लोर के पर्यायवाचक "लोक वार्ता" शब्द के अतीरिक्त कतिपय अन्य नवीनतम संज्ञाओं का भी आविर्भाव हुआ है।फोक्लोर " के वाच्यार्थ को लेकर किसी ने "लोकविद्या " शब्द सुझाया तो किसी ने "लोकायन"। डा.भोलानाथ तिवारी ने "फोक लोर " के लिए "लोकशास्त्र","लोक-विज्ञान", "लोक परंपरा ","लोक प्रतिमा","लोक प्रवाह","लोक पथ",लोकविधान","लोक संग्रह " "लोक अयन "आदि शब्दों की ओर संकेत किया है।[19]

डा. वासुदेवशरण अग्रवाल,डा.सत्येन्द्र ,डा.श्याम परमार एवं कृष्णानंद गुप्त ने "लोक वार्ता" को फोक्लोर के पर्यायवाची के रूप में स्वीकार किया है।डा.वासुदेवशरण अग्रवाल ने वैष्णव संप्रदाय में प्रचलित "चौरासी वैष्णवन की वार्ता","दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" आदि ग्रंथों के "वार्ता" शब्द के आधार पर "फोक्लोर" का" लोक वार्ता" पर्याय स्वीकार किया है। श्री कृष्णानंद गुप्त ने बुंदेलखंड के "लोकवार्ता" पत्र " के निवेदन में लिखा है कि फोक्लोर के लिए हमने "लोकवार्ता"शब्द का प्रयोग किया है।"फोक लोर"

का प्रचलित अर्थ के "जनता का साहित्य", ग्रामीण कहानी आदि। परंतु हम उसका अर्थ करते हैं - "जनता की वार्ता"। जनता जो कुछ कहती है अथवा उसके विषय में जो कुछ कहा और सुना जाता है, वह सब लोक वार्ता है।

किंतु लोकवार्ता को ग्रहण करने में अनेक आपत्तियाँ उपस्थित हुई हैं। डा.कृष्णदेव उपाध्याय ने "लोकवार्ता" शब्द को अवाचक तथा अव्याप्ति दोषों से ग्रस्त होने के कारण "फोक लोर" के पर्यायवाची के रूप में रखना अस्वीकार किया है। लोक वार्ता शब्द में अधिक से अधिक गाथा या लोक चर्चा का भाव वहन करने की क्षमता है। उनके अनुसार लोक वार्ताकी अपेक्षा लोक संस्कृति शब्द अधिक उपयुक्त एवं समीचीन है।[२०] डा.हजारी प्रसाद द्विवेदी भी "फोकलोर" के अर्थ में "लोक संस्कृति" शब्द के पक्ष में हैं।[२१]

यद्यपि "फोक" के लिए "लोक" शब्द के ग्रहण के समान ही "लोर" के पर्यायवाची हिंदी शब्द के ग्रहण के लिए विद्वानों में मतैक्य नहीं है और नित्य नवीन शब्दों की उद्भावना की जा रही है, तथापि भाषाशास्त्र की दृष्टि से रूढ प्रयोगों द्वारा विशिष्ट अर्थ एवं महत्त्व प्राप्त कर लेने के कारण "लोकवार्ता" को "फोकलोर" की सम्मानार्थक महत्ता प्राप्त हो गई तथा हिंदी में उसका प्रयोग स्वीकृत हो गया।[२२] अत: "फोकलोर" के अभीष्ट अर्थ की व्यंजना के लिए "लोकवार्ता" शब्द का प्रयोग ही उपयुक्त है।

लोक जीवन में परिव्याप्त समस्त विचार-आचार, रीति रिवाज, रहन सहन, राग द्वेष, विश्वास-मनोभावों आदि का समन्वित अध्ययन लोकवार्ता शास्त्र का उद्देश्य है। लोक जीवन की गंगा की लहरों से इस लोक वार्ता के तत्व उद्भूत होते हैं और अपने चेतन अस्तित्व का आभास अंकित करते हैं। इसी तत्व को ध्यान में रखते हुए बेटकिन ने कहा है कि लोकवार्ता दूर और अत्यंत प्राचीन जैसी कोई वस्तु नहीं है। यह तो हमारे बीच सत्य और सजीव है।[२३] पाश्चात्य विद्वानों के परस्पर विरोधी मतों के बावजूद लोकवार्ता संबंधी एक सामान्य धारण निर्मित होती है, जिसके प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं- साहित्य, मौखिक आधार अनुभवजन्य संस्कृति, परंपरा तथा सौंदर्यात्मकता।[२४]

लोक वार्ता का क्षेत्र व्यापक होने के कारण उसे किसी बँधी बँधाई लीक से चलाना या उसे किन्हीं सीमाओं से बाँधना असंभव है। सोफिया बर्न के मतानुसार लोकवार्ता एक जातिबोधक परिभाषिक रूप में अंकित है, जिसके अंतर्गत पिछडी जातियों में प्रचलित या उन्नत जातियों के असभ्य वर्गों में अवशिष्ट विश्वास, रीतिरिवाज, कहानियाँ, गीत और कहावतें आदि आती है।[२५]

लोक वार्ता का दायरा विस्तृत है। "लोकवार्ता" शब्द "फोकलोर" के व्यापक एवं विस्तृत अर्थ को अभिव्यक्त करने में पूर्ण समर्थ है। लोकवार्ता के पक्ष में "लोकसंस्कृति" शब्द का प्रचलन हो जाय तो लोकसंस्कृति शब्द" फोक कल्चर " का पर्यायवाची शब्द हो सकता है। वस्तुत: फोक कल्चर और फोकलोर में कोई विशेष अंतर नहीं है। दोनों की सीमाएँ एक दूसरे के छोर को छूती हुई दिखाई पड़ती है।[26]

लोक साहित्य

"लोक" और" लोक वार्ता" का स्वरूप स्पष्ट कर लेने के पश्चात् अब लोक साहित्य पर दृष्टिपात करना समीचीन होगा। लोक साहित्य लोकवार्ता का ही एक महत्त्वपूर्ण अंग है। वैसे तो लोक साहित्य और लोकवार्ता में अभिन्न संबंध है, जैसे फूल और उसकी सुगंध का।

वस्तुत: लोक साहित्य की क्षेत्र परिधि अत्यंत विस्तृत है। यदि लोक वार्ता लोक - संस्कृति महासागर है तो लोक साहित्य उसमें समाहित होनेवाला एक महानद। लोक साहित्य की व्यापकता मनुष्य के जन्म से लेकर उसकी मृत्यु तक है। मनुष्य के शाश्वत मत का स्पष्ट प्रतिबिम्ब लोक साहित्य में प्राप्त होता है। विश्व लोक साहित्य का प्रवाह इसी छोर से प्रवहमान है। देश विदेश की विभिन्न भाषाएँ, विभिन्न समाज, विभिन्न संस्कृतियाँ अनेक शरीरों की तरह है, उनकी आत्मा एक है। शाखाएँ अनेक मूल एक है। इसकी अन्तर्बाह्य वृति भी स्वाभाविक और सरल है। लोक साहित्य केवल जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए उद्भूत साहित्य है।

लोक साहित्य लोक की मौखिक परंपरा का ही अनुसरण करता है जिसमें विषयों का समावेश श्रुति की सीमा में ही समाहित होता है। बैटकिन ने भी उ की मौखिक भाषाभिव्यक्ति को लोक साहित्य का आवश्यक तत्व प्रतिपादित किया है।[27] अत: लोक साहित्य मौखिक होता है तथा परंपरा गत रूप से चला जाता है। यह साहित्य जब तक मौखिक रहता है, तभी तक इसमें ताज़गी और जीवन पाया जाता है, लिपि की धारा में जाते ही इसकी संजीवनी शक्ति नष्ट हो जाती है।

लोक साहित्य की आत्मा है विगत का प्रभाव और उसका प्रमुख आधार भी यह विगत ही है। इसीलिए जी. एल. गोमे ने लोक साहित्य को ऐतिहासिक विज्ञान माना है। प्राचीन परंपराएँ नष्ट नहीं होतीं, मिटती नहीं, आगे बढ़ती

जाती है। उनका रूप गत्यात्मक (   ) ही रहता है। अतः लोक साहित्य लोक संस्कृति का निर्माण करने का उत्तरदायित्व वहन करता है और उसका निर्माण भी वही करता है। यद्यपि रुचि, लहर और कल्पना मात्र के लिए लोक साहित्य में कोई स्थान नहीं है, फिर भी लोकसाहित्य जिस तरह लोगों में घुलमिल जाता है, उससे उसमें कल्पना का भी अभाव नहीं और न बुद्धि तत्व की अवहेलना। रागात्मिका वृत्ति का संबंध समष्टि से अधिक होता है।

परंपरा

भारत में लोक साहित्य की परंपरा बहुत प्राचीन है। लोक साहित्य की विधा लोकगीतों का बीज प्राचीन ऋग्वेद में पाया जाता है। गीत के अर्थ में "गाथा" शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में प्राप्त होता है।[२८] वेदों में आध्यात्मिक अनुभूतियों के साथ लौकिक विषयों से सम्बद्ध ऐसे अनेक सूक्त हैं, जिनमें विशद लोक व्यवहार समाहित हुआ है। वैदिक साहित्य तत्कालीन जनसाधारण की भाषा का साहित्य लोकसाहित्य है। वह प्राकृतिक शक्तियों से संबंध दिव्य साहित्य है। वह आर्यों के उस सामाजिक जीवन का साहित्य है, जब वे मुख्यतः पशु पालन कर जीवन यापन करते थे, पर घुमक्कड़पन छोड़ ग्राम्य सभ्यता की ओर बढ़ चले थे। पशु चारण वृत्ति के साथ कृषि का विकास हो चला था। वैदिक साहित्य लोक गीतों सा स्वाभाविक साहित्य है।[२९]

वैदिक गाथाओं की परंपरा रामायण - महाभारत काल में भी अक्षुण्ण दिखाई पड़ती है। रामायण - महाभारत में तत्कालीन समाज की लौकिक भावभूमि अंकित हुई है, जिसमें लोक मानस का यथार्थ रूप प्राप्त होता है। महाभारत में युद्ध के साथ लोक संस्कृति की सजीव अभिव्यक्ति हुई है। राजा हाल द्वारा रचित "गाथा सप्तशती" से पता चलता है कि उस समय लोगीत बनाने तथा गाने की बहुत बड़ी प्रथा थी। लोक संस्कृति का पाली जातकों में भी सजीव चित्रण मिलता है। बावेरु जातक में तत्कालीन व्यापारिक दशा का पता चलता है तो अन्य जातकों से तत्कालीन साधारण जनता के रहन सहन, खानपान और रीतिरिवाजों का पता चलता है।[३०]

जातक कथाएं भारतीय कथा साहित्य के महत्वपूर्ण अंग हैं, जिनसे विक्रम पूर्व तीसरी शताब्दी से चौथी शताब्दी तक के भारत की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक अवस्था का पता चलता है। जैन पुराणों में भी लोक साहित्य के विपुल बीज

वर्तमान है। लोक साहित्य की कतिपय प्रवृत्तियों का आभास सिद्धों के चर्यापदों में भी प्राप्त होता है।[31] इन सिद्धों की धर्म साधना जनसाधारण में व्याप्त थी। इस प्रकार लोक साहित्य का अक्षुण्ण प्रवाह अत्यंत प्राचीन काल से लेकर आज तक अबाधित गति से प्रवहमान है।

विशेषताएँ:

लोक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता लोक जीवन के सर्वांगीण सत्य का उद्घाटन करना है। सामान्य लोक जीवन के सत्य को जगमगाती रत्न राशि लोक साहित्य में व्याप्त है।

इसकी दूसरी विशेषता इसमें आदिम परंपराएँ, विश्वास, रीतिरिवाज आदि का समावेश होता है। तीसरी विशेषता लोक साहित्य का रूप परंपरित तथा मौखिक ही होता है। वाणी और श्रुति इसके प्रधान साधन हैं, जो इसे सजीव रखते हैं।

लोक साहित्य के रचयिता अज्ञात रहते हैं। वह व्यष्टि से समष्टि में लीन रहता है। पूरा लोक साहित्य जनता की संपत्ति होता है। रचयिता के साथ ही रचना काल भी अज्ञात रहता है।

लोक साहित्य लोक मानस की अभिव्यक्ति है और लोकमानस अपनी मूल प्रेरणाओं के साथ आदिकाल से लेकर आज तक गतिशील है, इसलिए लोक साहित्य की रचना प्रयत्नसाध्य नहीं होती है। उसमें सरलता, स्वाभाविकता एवं मौलिकता होती है। उसमें किसी प्रकार की उपदेशात्मक प्रवृत्ति नहीं होती है।

लोक साहित्य सांप्रदायिकता से परे होता है। वह लोक मानस की सर्व मंगलकारी ~~उदात्त~~ भावनाओं से परिपूर्ण होता है। उसमें भव्यता के साथ विशालता भी होती है।

साहित्य और लोक साहित्य

साहित्य शिष्ट समाज का दर्पण है। समाज से साहित्य का अटूट संबंध है। "सहितस्य भावः साहित्यम्" - अर्थात मानव कल्याण ही साहित्य का उद्देश्य है। किंतु आज इस शब्द का प्रयोग हम अंग्रेजी के "लिटरेचर" (Literature) शब्द के अर्थ में करते हैं और "लिटरेचर" का संबंध है - लेटर्स "(~~xxx~~ Letters अक्षरों से। मनुष्य की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति चाहे वह लिखित हो या मौखिक - साहित्य के अन्तर्गत आती है। इसलिए साहित्य का उपर्युक्त संकुचित और सीमित

अर्थ नहीं ग्रहण किया जा सकता है ।

जीवन का सार सौंदर्य लोक साहित्य में विभिन्न रूपों में प्रस्फुटित होता है। मानव की हँसी-मुस्कान,आह-कराहट,आँसू -रुदन लोक साहित्य में प्रकट होते हैं। लोकसाहित्य मूलत: मानव की कहानी है और मानव का संगीत है। लोक साहित्य मानव का ही मूर्त अभिव्यक्त रूप है। लोक साहित्यकार की यह अभिव्यक्ति सहज,सरल एवं निश्छल होती है। डा.नगेंद्र के मतानुसार " अभिव्यक्ति की निश्छलता ही साहित्य का पहला और अनिवार्य लक्षण है।[२१] लोक साहित्य के सृष्टा कलाकार की रचना स्वयं प्रेरित और स्वान्त:सुखाय होती है। जीवन के स्पंदनों से ही उसको यह प्रेरणा जागती है। यही कारण है कि यह प्रेरणा स्वान्त:सुखाय के साथ ही लोक हिताय भी होती है।

इसी तरह साहित्य और लोकसाहित्य में मौलिक भेद है। लोक साहित्य नाम से ही स्पष्ट है - लोक का, साधारण अशिक्षित जनता का साहित्य होता है। साहित्य सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत जनता की कृति होता है। "पोषण, तोषण और मोदन की लोक अभिव्यक्तियों का वाणी रूप लोक साहित्य के अन्तर्गत आता है।... इस साहित्य की ऊपरी सीमा शिष्ट साहित्य को स्पर्श करती है और निचली सीमा जंगली अभिव्यक्ति को।[२२] एक में लोक जीवन के विविध चित्र मिलते हैं, तो दूसरा सीमित शिष्ट समाज का दर्पण है किंतु जहाँ साहित्य अपने क्षेत्र की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है, वहाँ लोकसाहित्य भी अपने वातावरण और अपने सीमा क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है।

यद्यपि साहित्य और लोक-साहित्य दोनों ही लोकानुवर्ती हैं,तथापि दोनों में मौलिक भेद एवं सैद्धांतिक अंतर है। साहित्य अपने मस्तिष्क से लोक जीवन के धरातल से ऊँचा उठता है तो लोक साहित्य इस धरातल को कभी छोड नहीं पाता। लोक जीवन के सांस्कृतिक तत्व साहित्य में गृहीत होते हैं किंतु लोक साहित्य में वे समाहित रहते हैं। लोक साहित्य का सबल और कलात्मक पक्ष भावों की कोमलता और प्राणों का स्पंदन है जबकि साहित्य का तर्कनिष्ठ मस्तिष्क और मेधाशक्ति। लोक साहित्य की अंतरंग अनुभूतियाँ उन्मुक्त होती है, जबकि साहित्य में से सीमाबद्ध होती है। लोक साहित्य नित्य नूतन जीवन का अमूल्य प्रतिबिम्ब है तो साहित्य में वैयक्तिकता का प्राधान्य रहता है। व्यक्ति का विकसित आत्म तत्व और व्यक्ति द्वारा प्रकट होने वाली सामाजिक अभिव्यक्ति साहित्य में होती है। लोक साहित्य समाज की ही व्यापक अभिव्यक्ति है।

लोक साहित्य में वैयक्तिक विशिष्टता का लोप होता है। समष्टि में तत्व के समान लोक साहित्य में समस्त लोक की व्याप्ति है। साहित्य का मूल स्रोत भी लोक साहित्य ही है। साहित्य की परतें लोक साहित्य में समाई हुई है। हमारा साहित्य, जिस रूप में हम उसे देखते हैं, उसके बीज इसी लोकजीवन, संस्कृति और लोक साहित्य में पता नहीं कितने वर्षों से बिखरे हुए हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे पानी और बूँदें। साहित्य देश काल की सीमाओं से प्रभावित होता है, लोक साहित्य उससे मुक्त रहता है।

लोक साहित्य में रस की जो परिपक्वता है, वह साहित्य में नहीं है। लोक कवि प्रकृति के अधिक निकट रहने से आडंबररहित रहता है। उसके सामने प्रांजल भाषा में काव्य रचने का प्रश्न उठता है और न संस्कृत के शब्दों का वाग्जाल या शास्त्रीय सिद्धान्तों में जकड़ा हुआ छंदशास्त्र और अलंकार प्रस्तुत करने का। किंतु साहित्य की अभिव्यक्ति परिनिष्ठित भाषा, परिष्कृत और परिमार्जित शब्दों के माध्यम से होती है। लोक साहित्य का आधार "लोक भाषा" या "लोक बोली" होने से भाषा सरस, सहज, स्वाभाविक तथा व्याकरण के नियमों से मुक्त होती है, फिर भी भावों एवं वृत्तियों के निरूपण में पूर्णतः समर्थ होती है। लोक साहित्य एक कंठ से दूसरे कंठ तथा एक युग से दूसरे युग तक अबाध यात्रा करने में सक्षम होता है। साहित्य लिपिबद्ध रूप में सुरक्षित रहता है जब कि लोक साहित्य की एक सुदीर्घ मौखिक परंपरा होने से वह परिवर्तनशील होता है।

लोक साहित्य की विधाएँ

मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक जीवन के मध्य लोक-साहित्य विकासशील है। लोक साहित्य का स्वरूप भी विकासक्षम है। लोक गीत, लोकगाथा, लोक कथा, लोकोक्ति, लोकसंगीत, लोकनृत्य तथा लोककला आदि लोकसाहित्य की विभिन्न विधाएँ है।

लोकगीत

लोकगीत "लोक" के भावुक तथा संवेदनशील हृदय के स्वाभाविक उद्गार है। लोकगीत का मूल स्रोत लोक मानस है। यह लोकमानस अनुभूत बहुश्रुत ज्ञान की परंपरा को अपनाकर मनोभावों की स्वर सरिता बहा देता है।

लोकगीतों में लोक जीवन की सच्ची झाँकी निहित है और भारतीय संस्कृति का सजीव इतिहास सग्रंथित है। लोक गीत किसी संस्कृति के मुहँबोले

चित्र है।[३४] अतः लोकगीतों में धरती गाती है,पहाड गाते है, नदियाँ गाती है, फसलें गाती है,उत्सव,मेले, ऋतुएँ एवं परम्पराएँ गाती है।[३५] लोकगीतों की यह परंपरा अत्यंत प्राचीन है।पंडितों की बँधी बँधाई प्रणाली पर चलनेवाली काव्यधारा के साथ साथ सामान्य अनपढ जनता के बीच एक स्वच्छंद और प्राकृतिक भावधारा भी गीतों के रूप में चलती रहती है।"[३६] लोकगीतों की यह भावधारा अखंडित प्रवहमान है। वस्तुतः "लोकगीत न तो पुराना होता है न नया। वह एक जंगली वृक्ष की भांति है जिसकी जडें दूर अतीत की गहराई में दृढ है, किंतु जिसेस निरंतर नई शाखाएं - प्रशाखाएँ पत्ते और नए फल विकसित होते रहते है।[३७]सामान्य जनभाषा में अवश्य परिवर्तन होता जाता है,गीतों की भाषा भी बदलती जाती है, पर इनके प्राणतत्व में कोईअंतर नहीं जाता क्योंकि लोकगीत आदि मानव का उल्लासमय संगीत है। यह संगीत की अपरिवर्तनीय धारायुगों से प्रवहमान है। खेतों में, नदियों, पहाडों,मैदानों, रास्तों या घरों में,विरह ,वेदना,हँसी मजाक में यह संगीत गीत बनकर जनकंठों से फूट पडता है। नए गीतों के साथ पिछले गीत धुल जाते है। नई पीढी,नए भाव,यहीगीतों की परंपरा है। गीतों की यह परंपरा तब तक विद्यमान रहेगी जब तक मानव का अस्तित्व रहेगा। मानव मन कीविभिन्न स्थितियों ने इसमेंअपने ताने बाने बुने है। स्त्री पुरुषों ने थककर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई है।इसकी ध्वनि में बालक सोए है,जवानों में प्रेम की मस्ती आई है, बूढों ने मन बहलाए हैं, वैरागियों ने उपदेश पान किया है विरही युवकों ने मन की कसक मिटाई है, विधवाओं ने अपने एकांगी जीवन में रस पाया है,पथियों ने थकावट दूर कीहै,किसानों ने अपने खेत जोते है।"[३८]

लोकोक्ति

लोक साहित्य के अन्तर्गत लोकमानस की किसी भी प्रकार की कही गई उक्ति - लोकोक्ति कहलाएगी। लोकोक्ति अनुभवसिद्ध ज्ञान का बृहत् कोष है। इन्हें मानव ज्ञान के चोखे सूत्र भी कहा जाता है। इनमें लघु आकार में " गागर में सागर भरने " की प्रवृत्ति काम करती है। इनमें कथा तत्व नहीं होता,किंतु जीवन सत्य बडी खूबी से प्रकट होते हैं।

लोकोक्तियों की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। वेदों और उपनिषदों में अनेक स्थलों पर इनकी उपलब्धि होती है।[३९] त्रिपिटक तथा जातक कथाओंमें भी इनका प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। संस्कृत साहित्य में तो लोकोक्तियों का अनुपम भंडार भरा पडा है। हिंदी साहित्य में लोकोक्तियों का व्यापक

प्रसार है ।

लोकोक्ति के अंतर्गत कहावतों, पहेलियों और मुहावरों का समावेश होता है । अरस्तु के शब्दों में " तत्वज्ञान " के खण्डहरों में से चुनकर निकाले हुए टुकडे कहावतें हैं । "संसार के सभी देशों तथा जातियों में कहावत का महत्वपूर्ण स्थान रहा है । सांसारिक व्यवहारपटुता और सामान्य बुद्धि का जैसा निदर्शन कहावतों में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । कहावतों का महत्व साहित्य तथा भाषाविज्ञान दोनों दृष्टियों से है ।

लोककला

लोक-मानस की कला लोककला कहलाएगी । लोक-संगीत, लोक नृत्य तथा लोक चित्र कला ये लोक कला के तीन प्रमुख पहलू हैं । लोक कला के ये तीन पहलू एक दूसरे से तकनीक की दृष्टि से भले ही भिन्न हों लेकिन लोक हृदय की संबंधित है ।

लोक संगीत

लोक गीतों में संगीत एवं काव्य का संमिश्रण होता है । लोकगीतों की मौखिक परंपरा में जिन श्रवण संचित स्वर लहरी संपन्न गीतों की गायन शैली अधिक सुरल एवं मधुर होती है, उनका प्रभाव जनमानस पर निरंतर बना रहता है । लोकगीतों के माधुर्य का रहस्य लोक संगीत में निहित रहता है । अतः लोक संगीत लोक गीतों की आत्मा है ।

लोक नृत्य :

आंगिक चेष्टाओं द्वारा हृदयगत भावनाओं की अभिव्यक्ति करना नृत्य है । आंगिक चेष्टा मात्र से ही भाव को व्यक्त करने की क्रिया के लिए संस्कृत में " नृत " धातु का प्रयोग किया गया है ।"[४०] नृत्य जनसामान्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति का सूचक है ।[४१]

नृत्य का मूल मानव के आनंदोल्लास में है । जब आदिम मानव में सामाजिक और सामुदायिक भावना आने लगी तथा वे साथ साथ मिलकर नृत्य का आनंद उठाने लगे, तब लोकनृत्यों की उत्पत्ति हुई । इन्हीं लोक नृत्यों से कालांतर में शास्त्रीय नृत्य विकसित हुए ।

स्वान्तःसुखाय होने के कारण लोकनृत्यों में भावों की स्वाभाविकता रहती है । लोकनृत्यों में किसी देश अथवा जनपद की संस्कृति निहित रहती है । मनुष्यों के स्वभाव, उनकी कला, सरलता, रीतिरिवाज, जातीयता, धार्मिकता,

सामाजिकता आदि का पता उनसे चलता है। अतएव वे किसी देश की लोक - संस्कृति के अविच्छिन्न अंग हैं।

लोक - चित्रकला

संसार की सभ्यता और संस्कृति के विकास का इतिहास मानव मन की विविध कलाओं की अभिव्यक्ति से भरा पड़ा है। मनुष्य का हृदय जब अपने चारों ओर प्रकृति के सौंदर्य को देखता है, तब बरबस उस सौंदर्य के प्रभाव को रेखाओं के माध्यम से प्रकट करना चाहता है। आदिम मानव अपने जीवन के संपर्क में आनेवाली वस्तुओं और जीवीत प्राणियों की रेखाकृतियों को अपने घर की दीवालों पर उतारने की चेष्टा करता था। यही चेष्टा उस आनंद की कला का प्रारंभिक रूप है, जो चित्रकला के रूप में विकसित हुई।

उत्सव-त्योहारों के अवसरों पर स्त्रियाँ रेखाकृतियाँ अंकित करती हैं। इसके पीछे गृहसौंदर्य अभिवृद्धि की भावना ही प्रमुख है। पूजा पर्व के समय अंकित किए जानेवाले रेखाचित्रों में मंगलाभिलाषा, पूजा भाव और सौंदर्य की मिश्र भावना रहती है किंतु सामान्य स्थिति में चित्रित आकृतियाँ नारी मानस की सौंदर्य वृत्ति का ही उद्घाटन करती हैं।

यह सौंदर्य भावना शरीर को विभिन्न रूपों में सजाने में भी दिखाई देती है। इसी कारण गोदना गुदाने की प्रथा प्रारंभ हुई। संसार की समस्त आदिम जातियों में गोदने की प्रथा का व्यापक प्रसार है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१ सिद्धांत कौमुदी, पृ.४१७ ,व्यंकटेश प्रेस ,बंबई ।

२ ऋग्वेद ,२-५२-१२ ।

३ नाम्या आसीदंतरिक्ष शीर्ष्णो द्यौ: समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिश: श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन् ।।"
- ऋग्वेद १०-९०-१४।

४ ऐतरेयोपनिषद - १-१-२

५ अतोऽस्ति लोके वेदे च प्रथित: पुरुषोत्तम:
श्रीमद्भगवद्गीता १५-१८।

६ अनुकत रासव लोकहिताय गिरिनार कतटबेयत हि मे सर्वलोकहितं ।"
अशोक के शिलालेख,पृ.१७४ ।

७ लोक कि वेद बडेरो ।
तुलसीदास,विनय पत्रिका ,पद १७२ ।

८ बहु व्याहितो वा अयं बहुशो लोक:।
क एतद् अस्य पुनरी हतो अयात् ।।"
जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण ३-२८।

९ प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नर:।"
— महाभारत आदि पर्व १-१०१।

१० श्री श्याम परमार: भारतीय लोक साहित्य,पृ.११।

११ Leach Maria: Dictionary of Folklore,Vol.I,p.403.

१२ Encyclopeadia of Social Sciences,Vol.5,p.288.

१३ पं.त्रिपाठी रामनरेश : जनपद,अंक १,पृ.११

१४ डा.द्विवेदी हजारीप्रसाद :जनपद त्रैमासिक,अंक १,पृ.६६।

१५ डा.नामवर सिंह: जनपद त्रैमासिक,खंड १,अ.२,पृ.६२-६४ ।

१६ डा.सत्येंद्र : लोक साहित्य विज्ञान,पृ.३।

१७ पारीक सूर्यकरण:राजस्थानी लोकगीत,पृ.१,पाद टिप्पणी

१८ डा.यादव शंकरलाल:हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य,पृ.२५।

१९ डा.भोलानाथ तिवारी: भारतीय लोक साहित्य,पृ.१५।

२० हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास,षोडश भाग,प्रस्तावना,पृ.११।

२१ डा .द्विवेदी हजारीप्रसाद: सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति अंक),

२२ श्री अवस्थी सत्यव्रत: लोक साहित्य की भूमिका,पृ.८ ।

२३ [illegible] Folklore [illegible]

२४ [illegible] Samuel [illegible] of Folklore,[illegible]

२५ डा.अग्रवाल वासुदेव शरण: पृथिवीपुत्र,पृ.८२।

२६ हिंदी साहित्य का बृहद इतिहास,षोडस भाग,पृ.१२।

२७

२८ प्रकृत्यान्यृजीषाण: कण्वा इन्द्रस्य गाथया ।-ऋग्वेद ८-३२-१।

२९ डा.पांडेय राजबली(संपा.) हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास,प्र.भा.
पृ.१९८।

३० प्रा.शर्मा बटुकनाथ : पालि जातकावली,पृ.१७।

३१ डा.भारती धर्मवीर : सिद्ध साहित्य,पृ.१३७

३२ अग्रवाल भारतभूषण (संपा.) डा.नगेंद्र के सर्वश्रेष्ठ निबंध,पृ.४८-

३३ डा.सत्येंद्र ,लोक साहित्य विज्ञान,पृ.६।

३४ सत्यार्थी देवेंद्र : आजकल सं.७, नवम्बर,१९५१ ।

३५ सीता देवी : धूलि धूसरित मणियाँ, भूमिका में उद्धृत गांधीजी के उद्गार

३७ पं.शुक्ल रामचंद्र : हिंदी साहित्य का इतिहास,पृ.७२४।

३८ डा.परमार श्याम: भारतीय लोक साहित्य,पृ.५२-५३।

३९ कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य अहित: ।-अथर्ववेद ७-५२-८।

४० "गात्र विक्षेप मात्रं तु सर्वाभिनय वर्जितम् ।
आंगिकोक्तप्रकारेण नृत्तं नृत्य विदोविदु:।।"
— संगीत रत्नाकर,७-२५

४१ "प्रायेण सर्वलोकस्य नृत्तमिष्ट स्वभावत: ।-भरतमुनि: नाटयशास्त्र-
४-२४४ - (निर्णयासागर प्रेस)

--- बंजारा : उद्भव और विकास ----

मंजारा : उद्भव और विकास --

प्राक्कथन

विश्व के विभिन्न प्रदेशों में आदिवासियों के विविध प्रकार पाए जाते हैं। भारतवर्ष में भी इनकी संख्या बहुत है। जनगणना रिपोर्ट १९६१ के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या का सात प्रतिशत आदिवासी हैं। प्राय: ये अरण्यों में निवास करते हैं अतएव इनका रहन-सहन, आचार-विचार, रस्मो-रिवाज, खाना-पीना, पूजा अर्चा आदि सभी पिछडे हुए हैं। ज्ञान-विज्ञान की प्रगति से दूर रहने के कारण उदर-निर्वाह के इनके साधन परंपरागत तथा सीमित हैं। सभ्यता की चकाचौंध से दूर इन वनवासियों का जीवन प्राचीन रूढियों, अंधविश्वासों तथा भ्रांतियों से आच्छादित है। इनके पास न लिपि है और न लिखित साहित्य। सदियों से सभ्यता-सूर्य से विलग रहने के कारण इनकी सभ्यता और संस्कृति अपने प्रकृत रूप में है। इनके जीवन को देखकर हमें आदिम मानवं सभ्यता की झलक मिलती है।

लेकिन यह भी निर्विवादत: सत्य है कि आधुनिक सभ्यता और संस्कृति का उद्भव और विकास इसी आदिम संस्कृति से हुआ है। विज्ञान के पंखों पर उड़नेवाले प्रगतिशील विश्व की पृष्ठभूमि में आज भी ये आदिवासी अपनी सभ्यता और संस्कृति के आदिम रूप को लिए हुए दुर्गम अरण्यों एवं पर्वतों के बीच रहते हुए आखेट, पशु-पालन एवं कृषि -कर्म में लीन रहते हैं। यही कारण है कि इनकी सभ्यता और संस्कृति अपने प्रकृत रूप में वर्तमान है। संभवत: इसी तथ्य को ध्यान में रखकर एक बार राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने इन लोगों को 'भगवान के निष्पाप पुत्र' (Unspoiled childern of God) की संज्ञा से अभिहित किया था।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति इसी आदिम सभ्यता का उन्नत तथा विकसित रूप है। स्वर्गीय पंडित जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही लिखा है कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता जो इतिहास के उदय काल से लेकर लंबे युग को पार करती हुई वर्तमान काल तक चली आई है, इसके लंबे विस्तार और सिलसिले का ख्याल दिलचस्प और बहुत कुछ आश्चर्यजनक है। एक अर्थ में भारत के हम लोक इन हजारों वर्षों के उत्तराधिकारी हैं।[१]

जानपद, जन और जनजाति

सम्राट अशोक के अष्टम प्रधान शिलालेख में आदिवासियों का उल्लेख "जानपद जन" के रूप में हुआ है। गोपथ ब्राह्मण में इन जनपदों का अत्यंत प्राचीन उल्लेख मिलता है।

महाभारत में भी इनकी सूची प्राप्त होती है । पाणिनी के अष्टाध्यायी में "जनपद शब्दात् क्षत्रियादञ्[3]" का उल्लेख मिलता है ।

जनजाति की व्याख्या बेन,हटन,बोअर्स[4], जैकब्स और स्टर्न तथा मुजुमदार[5] आदि अनेक नृतत्वशास्त्रियों ने की है । गिलिन और गिलिन के अनुसार -- " जनजाति किसी भी ऐसे स्थानीय समुदाय के समूह को कहा जाता है, जो एक सामान्य भू भाग पर निवास करता हो, एक सामान्य भाषा बोलता हो और सामान्य संस्कृति का व्यवहार करता हो[6] । इस परिभाषा के दृष्टिकोण से विचार करें तो वर्तमान बंजारा जाति को " जनजाति " नहीं कहा जा सकता । अपने मूल स्थान से जुडे रहने की दशा में भले ही वह " जनजाति" रही हो ।

बंजारा : जनजाति नहीं बल्कि जाति

वर्तमान बंजारा जाति एक विशिष्ट भू-भाग पर निवास नहीं करती । वह भारत के विभिन्न प्रदेशों में फैली हुई है । " जाति और जनजाति के अंतर पर दृष्टिपात करते हैं तो सबसे पहला अंतर प्रतीत होता है कि जनजाति के लिए एक निश्चित भू भाग का होना अनिवार्य है, जबकि जाति के लिए यह आवश्यक नहीं है । जाति के लोग विभिन्न प्रदेशों में रहते हुए भी एक जाति के सदस्य रह सकते हैं[7] ।" व्यवसाय,देशांतर आदि कारणों से जनजाति का रूपांतर जाति में हो जाता है ।[8]

बंजारा जाति की भाषा संबंधी भी एक विशेषता है । वह जिस प्रदेश में जाकर बस गई है, उस प्रदेश की भाषा भी अपना ली है । अतएव अपनी मातृभाषा के साथ ही उस प्रदेश की भाषा का भी वह व्यवहार करती है । इसके अतिरिक्त बंजारों की कोई एक समान संस्कृति नहीं है । आचार-विचार, रहन-सहन,धार्मिक त्यौहार, विवाह-संस्कार आदि के क्षेत्र में एकरूपता नहीं दिखाई देती । इससे बंजारा को-"जाति" कहना ही उचित है, उसे "जनजाति" नहीं माना जा सकता ।

बंजारा सामान्य परिचय :

भारत की बंजारा जाति का इतिहास प्राचीन तथा गौरवशाली है ।"[9] राजस्थान के साहसी एवं पराक्रमी राजपूत वीरों के ये वंशज हैं[10] । ये राजस्थान से आए और देश के सभी प्रदेशों में फैल गए[11] । प्राचीन काल से ही बंजारा घुमक्कड

जाति रही है, जिसका प्रमुख व्यवसाय व्यापार रहा है।[१२] एक स्थान से सामान बैलों पर लाद कर उसे दूसरे स्थान पर पहुँचाना एवं उस स्थान से आवश्यक वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते हुए अपने परिवार के साथ घूमते रहना ही बंजारों की विशेषता रही है। मध्य-काल में मुगलिया फौजों के लिए सामग्री पहुँचाने का काम इनके जिम्मे था।[१३] मुगलों का राज्य अस्त हुआ, अँग्रेज आए और इनके साथ रेलगाडी और मोटर आई, फलस्वरूप इन बंजारों का नमक का व्यवसाय नष्ट हो गया।[१४] काल-प्रवाह में पडकर इनके सारे लोग इधर उधर बिखर गए।[१५] अलग अलग प्रदेशों में इनकी अवस्था भी एक सी न रही। बिहार, उडीसा, बंगाल, आंध्र, गुजरात में इन्हें आदिम जाति (Scheduled Tribe) माना गया। दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मैसूर, राजस्थान, केरल में अनुसूचित जाति (Scheduled caste) के रूप में मान्यता मिली। महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, मद्रास में अवर्गीकृत जाति (De-notified Tribe) के अंतर्गत इन्हें रखा गया है। अन्य राज्यों में अन्य अनुसूचित पिछडी जाति (Other Backward Classes) के रूप में स्वीकार किया गया है।[१६]

आज बंजारा जाति किसी एक प्रदेश की जाति न होकर देश भर में यत्र-तत्र बिखरी हुई है -- कहीं कम और कहीं ज्यादा। बंजारा 'बंजारा' ही न होकर भारतीय भी हैं। देश के कोने कोने में बसकर और वहाँ व्यवस्थित होकर वह भावनात्मक एकता को सुदृढ कर रहा है। भारत विविधता में एकता का ज्वलंत उदाहरण है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेंद्रप्रसाद के शब्दों में -- " कोई विदेशी जो भारत से बिल्कुल अपरिचित हो, वह एक छोर से दूसरे छोरतक सफर करे तो उसको इस देश में इतनी विभिन्नताएँ देखने में आएँगी कि वह कह उठेगा कि यह एक देश नहीं बल्कि कई देशों का एक समूह है, पर विचार करके देखा जाए तो इन विभिन्नताओं की तह में एक ऐसी एकता फैली हुई है जो अन्य विभिन्नताओं को ठीक उसी तरह पिरो लेती है और पिरोकर एक सुंदर मणियों का समूह बना देती है।[१७]

बंजारे भारत में जहाँ भी गए, वहीं के हो गए। उत्तर प्रदेश में रहनेवाला उत्तर प्रदेशी बन गया, आंध्र में रहनेवाला आंध्री, महाराष्ट्र में रहनेवाला महाराष्ट्री और मद्रास - केरल में रहनेवाला मद्रासी - केरलीय बन गया। किंतु अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व भी उन्होंने बनाए रखा। अपनी भाषा, बोली तथा संस्कृति के अस्तित्व को उन्होंने मिटा नहीं दिया। व्यक्तित्व की यह स्वतंत्रता राष्ट्रप्रेम और एकता की विरोधी नहीं है क्योंकि " हिंदुस्थान की एकता की बुनियाद में यह बात है कि हम हिंदुस्थानी बनें,

हिंदुस्थान की तरक्की के लिए ऊँचे से ऊँचे जो काम हैं, उन्हें करते रहें और अपने व्यक्तित्व को भी कायम रखें यही बुनियाद है भारत की एकता में।[१८]

विविधता और एकता के इस धूपछांही खेल में बंजारा जाति के योगदान का रंग अनूठा है। " नक्शी काम का कपडा जब बनता है तो जुलाहा जहाँ जरूरत हो, वहीं सुनहरा धागा लगाता है, बाकी सब कपास के धागे होते हैं। फिर भी सुनहरा धागा कपडे के अंदर फैला हुआ दिखाई देता है, ऐसा ही यह बंजारा समाज है। हिंदुस्थान के अंदर इस बंजारा समाज का धागा हर जगह फैला हुआ है।"[१९]

बंजारा : मूल निवासस्थान

बंजारों की उत्पत्ति, मूल निवासस्थान, वंश, रक्त आदि के संबंध में पर्याप्त मत वैभिन्य पाया जाता है। इस उपेक्षित जाति पर जो कामोबेस दृष्टिपात किया गया है, वह अंग्रेज विद्वानोंके द्वारा ही। इब्बेतसन के मतानुसार इनका मूलस्थान उत्तर भारत के गोरखपुर से हरिद्वार तक की उप-पर्वत श्रेणी है।[२०] कर्नल मैकेन्जी ने राजपुताना बताया है।[२१] सैय्यद सिराज-उल् हसन की राय में ये उत्तर हिंदुस्थानी है।[२२] इलियट ने इनका मूल स्थान मुलतान माना है।[२३] सिंक्लेअर ने उत्तर हिंदुस्तान माना है लेकिन उत्तर हिंदुस्तान के किसी विशिष्ट भू-प्रदेश का उल्लेख नहीं किया है।[२४] गोवर्धन शर्मा के शब्दों में " ये बंजारे राजस्थान के मूल निवासी थे और व्यापार के सिलसिले में माल लाद कर दूर दूर पहुँचते थे।[२५] कर्नल टॉड ने भी बंजारों के तांडों का आदि वर्णन करते हुए यही मत व्यक्त किया है।[२६] रोज ने पंजाब बताया है।[२७] श्री नर्मदेश्वर प्रसाद[२८] और बेन[२९] ने राजपुताना का उल्लेख किया है। अय्ययन[३०] अय्यर[३१], कनेडी[३२] नन्जुन्दैया[३३] ने मारवाड मूलस्थान बताया है। माळवा प्रदेश की जनगणना रिपोर्ट में भी यही विधान मिलता है।[३४]

सिक्खों के सातवें गुरू गुरू हरगोविंदसिंह (ई. १५९५-१६४४) से बंजारों का संबंध था। इसके उपरांत नवम गुरू गुरू गोविंद सिंह (ई.१६७६) के पास कुछ बंजारे काम माँगने आए थे। अपना परिचय देते हुए उन्होंने कहा था " हम मारवाड से आए हैं ... हम मारवाड के ब्रिन्जोली एवं सलम्बूर के निवासी है।[३५]" सिक्खों की फौजों में इन्हें मारवाडी अथवा मारवाडी लुबार के रूप में जाना जाता था।

बंजारों के मूल निवासस्थान के संबंध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। बंजारों

का मूलस्थान निर्धारित करने के लिए उनके वंश एवं कुल पर ध्यान देना होगा । यदि ये राजपूत वंश से संबंधित हो तो इनका निवासस्थान राजस्थान अथवा मारवाड निर्विवादत: सिद्ध हो जाएगा । राजपूतों का राठोड वंश मारवाड की देन है ।[३६]

बंजारा : वंशोद्भव :

बंजारों की उत्पति के बारे में भी विद्वान एकमत नहीं हैं । इस मतवैभिन्य के कारण प्रामाणिक उत्पति के निर्धारण के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं । बंजारे तो एक ओर रहे, राजपूतों को कुछ अंग्रेज विद्वानों ने आर्यवंशीय क्षत्रिय न मानकर सीथियन वंशज तथा विदेशी हूणों के वंशज माना है । अतएव सर्वप्रथम राजपूतों का ही वंश - निर्धारण करना होगा ।

स्मिथ का कहना है कि वर्णवाचक " राजपूत " शब्द इतिहास में हम पहली बार आठवीं शताब्दी में देखते हैं ।[३७] अतएव राजपूत वर्ण का प्राचीन क्षत्रिय वंश से संबंध हो ही नहीं सकता है ।

कर्नल टॉड इन्हें सीथियन वंशज मानते हैं । उनके मतानुसार " राजपूतों और वैदिक क्षत्रियों में इतनी भिन्नता है कि उनमें पारस्परिक संबंध स्थापित ही नहीं कर सकते ।[३८] डा .भांडारकर इन्हें अनार्य गुर्जर जाति का वंशज सिद्ध करते हैं ।"[३९] आधुनिक काल के विद्वान श्री गुरे[४०] तथा सिन्हाने[४१] भी इसी मत को ग्राह्य माना है । इस प्रकार कर्नल टॉड, स्मिथ, सर विलियम कुक,[४२] डा. भांडारकर, गुरे, सिन्हा आदि देशी विदेशी विद्वान राजपूतों को विदेशी हूणों का वंशज मानते हैं, आर्य वंशीय क्षत्रिय नहीं । लेकिन यह धारणा आगे चलकर भ्रमपूर्ण सिद्ध हुई है ।

महाभारत में " राजपूत " शब्द क्षत्रियवाचक है --

" पुतेष्वम रथा नाम राजपुत्रा महारथा ।
रथेषु आस्त्रेषु निपुणानागेष्चुव परांपते ।[४३]

पाणिनी सूत्र में भी यही बात मिलती है --

" गो त्रोक्षोक्षोष्ट्रोरभ्र राजराजन्य राजपुत्र
वत्स मनुष्याजादञ् । ।[४४]

सम्राट हर्षवर्धन के शिलालेख में चाहमानों (चौहानों) का " तत्मुक्यर्थ उपागतो रघुकुले भूचक्रवर्तिस्वयम् "[४५] तथा कन्नौज के प्रतिहारों की वंशावली का निर्देश "तद्वंशे प्रतिहार केतन भृति त्रैलोक्य रक्षास्पदे " सूर्यवंश में किया गया है । पृथ्वीविजय " काव्यग्रंथ में

पृथ्वीराज को " सूर्यवंशोत्पन्न " तथा बाणभट्टकृत" हर्षचरितम् [४६] " में " राजपूत " का अर्थ " शुद्ध क्षत्रिय वंश " ही लिया गया है।

ये सारे तथ्य इस बात की ओर संकेत कर रहे हैं कि राजपूत विदेशी हूणों के वंशज नहीं, बल्कि आर्यवंशीय क्षत्रिय ही हैं। न वे बाहर से आए, न ही उनका शुद्धीकरण किया गया। डा. भार्गव[४७] तथा पंडित गौरीशंकर ओझा[४८] आदि विद्वानों के मतों से भी इसकी पुष्टि होती है।

अब हम बंजारों की ओर आएं। डा. ग्रियर्सन,[४९] नंजुदय्या[५०] और अय्यर ने इन्हें क्षत्रियवंशी राजपूतों का उत्तराधिकारी माना है। इब्बेटसन[५१] ने इनका उल्लेख "राजपुताना के हिंदू " के रुप में किया है। कोवेल [५२] ने ब्राह्मण और राजपूत वंश का माना है। बरार की जनगणना रिपोर्ट में किटस[५३] ने इन्हें "क्षत्रियवंशी " कहा है। १९६१ की भारत जनगणना रिपोर्ट [५४] में भी यही बात कही गई है। एपिग्राफिका इंडिका [५५] में इन्हें " आर्यवंशी " कहा गया है। नर्मदेश्वर प्रसाद[५६] और ब्रिग्ज[५७] ने इन्हें राजपुताना के चारण या भाटवंशी कहा है। इलियट[५८] ने " दशकुमार चरितम् " के आधार पर इन्हें " आर्यन " या " आर्यवंशी " कहा है। डा. मुजुमदार[५९] का भी यहीं मत है। शेरसिंग[६०] ने उन्हें " राजस्थान के राजपूत वंशी माना है।

इस प्रकार बंजारों की उत्पति राजस्थान के राजपूत वंश से समर्थित होती है, लेकिन सैयद हसन के अनुसार उतर भारत की विभिन्न जातियों के मेल से इनकी उत्पति हुई है।[६१] इसी प्रकार सर मालकॉम, शेरिंग, अल्फ्रेड लायल,प्लोडन,हेस्टिंग्ज, स्टवर्ट तथा राबर्टसन आदि ने इन्हें मिश्र जातीय माना है।

किंतु बंजारों को मिश्र जातीय कह देनेवाले यह भूल जाते हैं कि कोई भी जाति विशुद्ध होने का दावा नहीं कर सकता। जातियाँ अपनी आदिम अवस्था में भी संकरित या मिश्र हुआ करती हैं। फिर बंजारा जाति ही इसका अपवाद कैसे हो सकती है ?

अब तक हमने बंजारा जाति की उत्पति संबंधी दो मतों को देखा। विद्वानों का एक तीसरा वर्ग भी है जो इन्हें मुसलमानों का वंशज मानता है। थर्स्टन[६२] एवं जेक्सन[६३] आदि का यह मत पूर्णत: अग्राह्य है।

बंजारा समाज में राजा ध्वज से बंजारा जाति एवं उसकी उपजातियों का उद्भव हुआ। ऐसी धारणा है। और ध्वज से मोला।

<u>बंजारो और राजपूत</u>

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न विद्वानों ने बंजारों एवं राजपूतों के बीच संबंध

स्थापित किया है। दंतकथाएँ भी उन्हें राजस्थान का तथा राजपूतों से संबंधित सिद्ध करती हैं। लोकवार्ताएँ भी इसी ओर इंगित करती हैं। अकबर और राणाप्रताप के युद्ध (सन १५७६ ई.) में राणा की पराजय हुई। वे हल्दीघाटी के जंगलों में छिप गए तथा मुगल-सैनिकों से बचने के लिए जंगली जातियों में घुलमिल गए। राणा प्रताप ने प्रतिज्ञा की थी - " गोमेटी गोस्ट रिजो छेटी। आपणो राज्लाया सोस्न।" अर्थात अपना राज्य प्राप्त करने तक सोने की थाली में भोजन नहीं करूँगा, सोने के मंच पर शयन नहीं करूँगा और रात्रि में दीप नहीं जलाऊगाँ। महाराणा के साथ ये बंजारे भी इस प्रतिज्ञा का पालन करने लगे और आजतक करते जा रहे हैं। यह तथ्य भी राजपूत बंजारा संबंध सूत्रों की घोषणा करता है।

राजपूतों में राठोड, चौहान, यादव, परमार, सिसोदिया, बुंदेल, बनाकर आदि उपजातियाँ पाई जाती हैं। ठीक यही उपजातियाँ बंजारों में भी होती है - जैसे राठोड, चव्हाण, जाधव, पवार आदि।

राजस्थान के राजपूत, गूजर, मारवाडी आदि उप जातियों में जो रीति-रिवाज, परंपराएँ, त्यौहार, खानपान तथा वेशभूषा आदि हैं, वे सारी की सारी बंजारों में भी मिलती हैं।

राजस्थान, गुजरात और मालवा की भूमि जहाँ एक ओर वीर-प्रसविनी रही है, वहीं दूसरी ओर वाणिज्य-व्यापार में भी अग्रसर रही है। मारवाडी, गूजर, बंजारा आदि व्यापार में संलग्न रहे। आगे चलकर जब विदेशी मुसलमान आक्रमणकारियों के हमले राजस्थान, गुजरात, पंजाब, मालवा आदि प्रदेशों पर होने लगे तो इन प्रदेशों के बहुत से लोग जंगलों में छिप गए। आक्रमणों के उपरान्त मारवाडी, गूजर आदि तो पुन: शहरों में चले गए जबकि बंजारे राणा की प्रतिज्ञा का अनुसरण करते हुए घुमक्कड ही बने रहे।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि बंजारा जाति राजपूत जाति से ही निकली है। अतएव बंजारे भारतीय आर्य (इंडो आर्यन) शाखा के क्षत्रिय वंश (राजपूत) से संबंधित हैं।

काल-निर्धारण

(१) भारत में आर्यो का आगमन काल विवादग्रस्त है फिर भी कतिपय विद्वानों ने ईसा पूर्व ५ हजार का काल निश्चित किया है।[६४] राजपूतों का संबंध भारतीय आर्यो के साथ होने के कारण बंजारा जाति के काल-निर्धारण हेतु अधिक गहराई में उतरने की

जरूरत नहीं है । अतएव सर्वप्रथम राजपूत जाति का काल निर्धारण किया जाय ।. राजपूतों का उद्भव-काल ईसा पूर्व १ हजार से ४ सौ सिद्ध होता है ।

(२) ईसा पूर्व ३२४ में सम्राट चन्द्रगुप्त की राजसत्ता में यूनानी राजदूत मेगास्थनीज आया था । उसने भारतीय समाज का आँखों देखा चित्र प्रस्तुत किया है । उसके अनुसार भारतीय समाज उस समय ७ जातियों में बँटा हुवा था - दार्शनिक, कृषक, गोप या शिकारी, मजदूर, सैनिक, निरीक्षक, मंत्री तथा सभासद । मेगास्थनीज ने तीसरी जाति में अहीर, गडरिये तथा सभी प्रकार के चारण - चरवाहों की गणना की है । वह लिखता है कि - " ये लोग न तो नगरों में बसते हैं न ग्रामों में, बल्कि डेरे में रहते हैं । "[६५] ये चारण-चरवाहे ही बंजारों का आदिम रूप थे ।

(३) प्राचीन इतिहास ग्रंथों में " लमाण-मार्ग " का उल्लेख मिलता है । ईसापूर्व ६०० से ३५० तक बंजारा (लमाण) लोग बैलों और ऊँटों पर माल लादकर दूर दूर के प्रदेशों में व्यापार करने के लिए इन्हीं रास्तों से आया जाया करते थे ।[६६]

(४) भारत और भारत के बाहर के निम्नांकित प्रदेशों तक बंजारा लोगों का आवागमन होता था ।[६७]

(अ) ई.स.१८० में लिखित " पेरिप्लस ऑफ एरिथेरियन सी " ग्रंथ के आधार पर इनका मार्ग भरूकच्छ (वर्तमान भडोच) के किनारे के प्रदेश से नेलसेण्डा (वर्तमान नालंदा) तक निश्चित होता है ।

(ब) ई.स.१५७ में टालेमी द्वारा लिखित भूगोल के आधार पर ज्ञात होता है कि इनका आवागमन कुरूमंडल के किनारे के प्रदेश तक होता था ।

(स) ई.स.१ ली शती से ४ थी शती के बीच लिखे गए बौद्ध जातकों से ज्ञात होता है कि उत्तर भारत के गंगा नदी के उद्गम स्थान तक के लमाण मार्ग को तत्कालीन लोग जानते थे ।

(ड) उत्खनन से प्राप्त सातवाहन के शिलालेखों में, जो ईसा पूर्व २०० से १५० तक के हैं, इस मार्ग का महाराष्ट्र के पठार तक होने का उल्लेख मिलता है ।

(इ) कुशाण के शिलालेख (ई.स.२००) से पता चलता है कि भारत के वायव्य प्रदेश का मार्ग, जिसे ईसा पूर्व ३२३ में सिकंदर के मार्ग के रूप में माना जाता था, इसके अन्तर्गत आता है ।

(फ) साथ में जो नक्शा दियाजा रहा है, उसमें निर्दिष्ट लमाण-मार्ग ई.पू.२०० से ई. स. ४०० तक के कालखंड में प्रचलित लमाण मार्ग है ।

(५) दण्डी लिखित दशकुमार चरितम (११ वीं - १२ वीं शती) में बंजारों के तंबू (ताण्डे) में कुक्कुटों की लडाई का उल्लेख मिलता है। इसके आधार पर इलियट ने बंजारों का काल ई.पूर्व ४ थी शताब्दी माना है।[६८]

(६) बंजारा पूर्वजों की उत्पत्ति मनु से मानी गई है और मनु का काल ईसा पूर्व २५५० निश्चित किया गया है।[६९]

(७) रामायण के सुग्रीव को बंजारों का पूर्वज माना गया है। बेक्सर ने सुग्रीव का काल ई.पूर्व २४८० माना है।[७०]

(८) दंतकथा में परशुराम द्वारा बंजारा पूर्वजों को विंध्य प्रदान का उल्लेख है। परशुराम का काल ई.पू.१५८८ माना गया है।[७१]

(९) बंजारा पूर्वज मोला श्रीकृष्ण की चाकरी में था। श्रीकृष्ण का काल ई.पूर्व १२५१-११७५ माना जाता है।

(१०) बंजारों के धार्मिक तथा मांगलिक कार्यों में राजा भोज का उल्लेख होता है। इनका काल ई.पू. ४थी शताब्दी माना जाता है।[७२]

अनुच्छेद १ से १० के अन्तर्गत हमने बंजारों के काल निर्धारण के संबंध में उपलब्ध तथ्य रखे हैं। अनुच्छेद ६ से १० के तथ्य इतिहास पर आधारित न होकर पौराणिकता का आधार लिए हुए हैं, अतएव इन्हें विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। अब रह जाते हैं अनुच्छेद १ से ५ के अन्तर्गत प्रस्तुत तथ्य। इन्हें ही ग्राह्य माना जाएगा। अतएव बंजारों का काल ई.पूर्व ६०० से ई. स. की १ली शताब्दी तक माना जाना चाहिए।

बंजारा शब्द की व्युत्पत्ति

मुगलकालीन इतिहासकारों एवं अँग्रेज विद्वानों में " बंजारा " शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में मतभेद था। इस शब्द के ध्वन्यार्थ द्वारा ही इसका अर्थ प्रकट हो जाता है।

१. "बंजारा" शब्द का उद्गम संस्कृत " वाणिज्यं " से हुआ है। "वाणिज्यं " का अर्थ है व्यापार, उससे बना वणिज : अर्थात व्यापारी, बनिया।[७३] बनिया - संस्कृत वणिक् प्रा.वनिअ हिंदी बनिया।[७४] व्यापार करने वालों को " बंजारा " कहा गया। ये लोग बैलों की पीठ पर माल लाद कर ढोया करते थे - " जब लाद चले बंजारा।"[७५] संस्कृत " वणिज: " से ही विभिन्न भारतीय भाषाओं में जो रूप बने हैं, उनमें बहुत समानता है। उदाहरणार्थ - गुजराती -(वनजारा), राजस्थानी (बनजारा) मराठी (बंजारी या वंजारी)।

२. संस्कृत वाणिज्य " से प्राकृत " वनजारा " अर्थात व्यापारी बना।

३. वनचर - संस्कृत वन = जंगल, चर = घूमनेवाला । जंगलों में घूमने के कारण इन्हें "वंजारा" कहा गया ।[७६]

४. वन (सं.) = जंगल, अरि (सं.) = शत्रु । अर्थात जंगली प्राणियों का संहार करनेवाला । वन अरि वंजारी ।[७७]

५. बंजर (उर्दू) = खाक जमीन - जो संस्कृत " वंध्या " से निकला है ।[७८]

६. विरांजर = (फारसी) या बेरिंज - अरिंद = चावल का व्यापार करनेवाला - इससे " बंजारी " हुआ ।[७९]

७. बनज - (पंजाबी) - अर्थ व्यापार - व्यापार करनेवाले " बंजारे " कहलाए ।[८०]

८. वनचर बनजार वंजारा - प्राय: ये लोग जंगलों में ही निवास करके जीवन यापन करते थे ।[८१]

इस प्रकार हमने देखा कि " वंजारा " शब्द जाति या उपजाति का सूचक न होकर व्यवसाय सूचक है । जैसे सोने का काम करनेवाला सुनार, लोहे का काम करनेवाला लुहार, उसी तरह माल लाद कर यहाँ से वहाँ पहुँचानेवाला " बंजारा " । इनके इस व्यवसाय का उल्लेख कर्नल टॉड, एल्फिस्टन, हेग आदि इतिहासकारों ने बडे गौरव के साथ किया है । पुराने जमाने में माल या रसद ढोने के साधन बहुत सीमित थे । बैल आदि पशुओं के अतिरिक्त कोई चारा न था । ऐसे समय में अनाज, नमक आदि आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति करके बंजारों ने समाज की अभूतपूर्व सेवा की । मुगल सेना को रसद पहुँचाने का काम बंजारों ने ही किया था ।

वंजारा का पर्यायवाची शब्द : " लमाण "

" वंजारा " शब्द का पर्यायवाची है " लमाण " । लमाण की व्युत्पत्ति निम्नलिखित मानी जाती है --

१. संस्कृत " लवण: " = नमक । लवण: लमण । " लमण " से " लमाणी " विशेषण तैयार हुआ है ।"[८२]

२. उत्तर भारत में ये लोग दूर तक व्यापार के लिए घूमते थे, इसलिए हिंदी में इन्हें "लबाना" कहा गया । लबाना[८३] (क्रि.स.दे. - हि. - लम्बी + ना प्रत्यय) = लम्बा करना, दूर जाना ।[८४]

३. दक्षिण भारत में संस्कृत से जिन आधुनिक प्रादेशिक भाषाओं का उद्गम हुआ, उनकी उच्चारण-प्रक्रिया के फलस्वरूप लमाण से लम्बाडी, लबानी, लम्बाडा सादृश्यवाचक शब्द बने ।

इस प्रकार उच्चारण प्रक्रिया और प्रादेशिक भाषा प्रभाव के कारण मूल सं.

"लवण: " से लमाण, लमाणी,लम्बाडी, लम्बाडा, लबान,लवाना,लमान, लमाना,लवानी,लमानी जैसे समानार्थी शब्दों की उत्पत्ति हुई।

बंजारा बोली

इस देश की अन्य आदिम जातियों की बोलियों से पृथक् बंजारा बोली अपना अस्तित्व रखती है। इसकी कोई लिपि नहीं है और न ही लिखित साहित्य है। इस बोली में संस्कृत के बहुत से शब्द पाए जाते हैं। यह तथ्य इसकी पुरातनता को सिद्ध करता है।

बंजारा बोली पर प्रादेशिक तथा स्थानीय बोलियों का भी असर पडा है। जिन प्रदेशों में ये बंजारे व्यवसाय हेतु जाया करते थे अथवा जहाँ बस जाते थे वहाँ की भाषाओं एवं बोलियों को आत्मसात कर लिया करते थे। इनका प्रभाव उनकी अपनी बोली पर पडना स्वाभाविक ही था। इसलिए स्थान-भेद से इनकी बोलियों में कुछ बाह्य वैभिन्य भी आ गया है लेकिन आंतरिक रूप से देश की सभी बंजारों की बोली में एक रूपता है। इसी में वे एक दूसरे से वार्तालाप करते हैं। बोली के समान ही लोकगीतों में भी समानता है। एक सी भावनाएँ तथा एक ही धुन उनमें व्याप्त है।

कुछ भ्रांत धारणाएँ :

कतिपय विदेशी विद्वानों ने भ्रांतिवश बंजारा बोली को मिश्रित या "खिचडी बोली" मान लिया है।[६५] १९६१ की जनगणना रिपोर्ट में भी यही विचार प्रकट किया गया है।[६६]

इस प्रश्न पर भाषा-विज्ञान की दृष्टि से विचार करना चाहिए। आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं में १४ वें क्रमांक पर राजस्थानी भाषा है।" भाषा के तृतीय पर्व-काल में आधुनिक आर्य-भाषाएँ विकसित होने लगीं।" इसी काल में राजस्थानी ने अनेकों बोली,उपबोलियों को जन्म दिया जिनमें बंजारा-बोली भी एक है।"[६७]

बंजारा बोली और राजस्थानी भाषा

बंजारा बोली आधुनिक आर्य भाषा परिवार की भारतीय भाषा शाखा राजस्थानी - हिंदी की एक उपबोली है। सन १९६१ की जनगणना रिपोर्ट में " राजस्थान - हिंदी - की - बन्जारी, गूजरी,हाडौती, जयपुरी, खीचीवाडी,मालवी,मारवाडी, मेवाती,मेवाडी,उमटवाडी,निमाडी, राजस्थानी,सियारी तथा सौंधी नामक १४ उपबोलियों की गणना की गई है।[६८] " राजस्थान के निकट राज्य का जो भू-भाग है, उनमें बंजारी,गूजरी ... आदि बोलियों का उल्लेख है। ये बोलियाँ उन जनपदों की

द्योतक हैं, जहाँ इनने अपनी विशिष्टताएँ अर्जित की ।[९]

डा. ग्रियर्सन के अनुसार राजस्थान की मेवाती मालवी, मारवाडी, लमानी और जयपुरी आदि अनेक विभाषाएँ हैं ।[१०] राजस्थानी राजस्थान और माळवा की भाषा है । इसलिए बंजारा बोली भी राजस्थानी हिंदी ही सिद्ध होती है । कुछ विद्वानों ने राजस्थानी को हिन्दी से पृथक भाषा माना है ।[११] लेकिन जिस अपभ्रंश भाषा से भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हुआ,[१२] उसी गुर्जरी - अपभ्रंश से राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति हुई,[१३] और इस पश्चिमी राजस्थानी का संबंध हिंदी भाषा से है ।[१४] इसलिए बंजारी बोली राजस्थानी हिंदी की एक उपबोली मानी जानी चाहिए ।

राजस्थानी उपबोलियों का उल्लेख डा. गोवर्धन शर्मा ने इस प्रकार किया है - " राजस्थान की कतिपय और भाषाएँ हैं, जैसे भीली-उपभाषा समूह, पहाडी वर्ग की भाषाएँ, खानाबदोश जातियों की बोलियाँ आदि जिन्हें राजस्थानी में गृहीत किया जाता है । इनमें से ये प्रमुख हैं - बंजारी - यह राजस्थान के बाहर रहनेवाले बंजारों की भाषा है । स्थानानुसार इनके कई भेद हैं । ये राजस्थान के मूल निवासी थे और व्यापार के सिलसिले में माल लादकर दूर दूर पहुँचते थे ।[१५] डा. भोलानाथ तिवारी भी इसे राजस्थानी मालवी की एक उपबोली मानते हुए लिखते हैं - " बंजारी को लमानी, लबानी, लमाणी तथा लम्बाडी भी कहा जाता है । " अन्यत्र वे लिखते हैं - " बंजारी राजस्थान की एक बोली है - बंजारी सम्पूर्ण भारत में विविध नामों से कई बंजारा जातियाँ द्वारा बोली जाती है । इसका एक नाम लमानी भी है ।[१६]

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के डा. ग्रियर्सन द्वारा किए गए वर्गीकरण में राजस्थानी उपभाषाएँ ९ हैं । इसमें लमानी या बंजारी का क्रम ७ वाँ है । इसे ग्रियर्सन राजस्थानी की विभाषा के रूप में स्वीकार करते हुए कहते हैं -"लमानी या बंजारी पूरे भारत के पश्चिमी और दक्षिणी प्रदेश में संचार करनेवाले भ्रमणशील जाति की भाषा है । वे लमान के नाम से भी जाने जाते हैं । भारत के विभिन्न क्षेत्रों में, जहाँ इन्हें निवास करना पडता है, इसी प्रदेश की भाषा का प्रयोग करते हैं, लेकिन विदर्भ, बंबई, मध्यप्रांत, पंजाब, उत्तर प्रदेश और मध्यभारत एजेन्सी में इनकी अपनी निजी भाषा है, जिसका रूप स्थानीय प्रभावों के कारण बदलता रहता है ।"[१७] डा. ग्रियर्सन के अनुसार इनकी बोली पर प्रादेशिक तथा स्थानीय बोली - भाषाओं का प्रभाव है, लेकिन अपनी निजी बोली इन्होंने सुरक्षित एवं परंपरागत बना रखी है । वस्तुत: बंजारी बोली पर

राजस्थानी हिंदी के अतिरिक्त अरबी, फारसी, दक्खिनी-हिंदी, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं का प्रभाव पडा है।

इस प्रकार बंजारी बोली प्रादेशिक तथा स्थानीय बोलियों तथा भाषाओं के प्रभाव को अपनाकर भी अखंड तथा सुरक्षित रही है। संक्षेप में बंजारी बोली आधुनिक आर्य भारतीय भाषा परिवार की हिंदी शाखांतर्गत राजस्थानी की एक उपबोली भाषा है जिसका निकट संबंध राजस्थानी-मारवाडी तथा राजस्थानी मालवी से है।

बंजारा लिपि

बंजारा बोली की अपनी कोई लिपि नहीं है। यह राजस्थानी शाखा की मालवी की उपबोली है। मालवी के लिए महाजनी लिपि का प्रयोग व्यापारी लोग करते हैं, जो राजस्थानी लिपि मानी जाती है और देवनागरी से मिलती जुलती है। डा.मोतीलाल मनोरिया लिखते हैं - " राजस्थानी लिपि अधिकतर देवनागरी लिपि से मिलती है। कुछ अक्षरों की बनावट में अंतर अवश्य है, पर यह अंतर भी अब दिन दिन मिटता जा रहा है[98]। यह लिपि लकीर खींचकर घसीट रूप में लिखी जाती है। राजकीय अदालतों आदि में इसका विशुद्ध प्रयोग होता था परंतु महाजन लोग अपने बहीखातों में इसका शुद्ध प्रयोग नहीं करते। इस लिपि के संबंध में डा.ग्रियर्सन का मत है कि - " राजस्थानी साहित्य के लिए नागरी अक्षरों का काम करती है। ... यह महाजनी अथवा व्यापारी वर्ग की लिपि के नाम से प्रचलित है और लेखक के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति के लिए अत्यधिक अस्पष्ट है।[99] लिपिहीन बंजारी बोली के लिए यह महाजनी लिपि सर्वथा उपयुक्त रहेगी।

बंजारी : बोली या भाषा

भाषा विज्ञान के अनुसार - " भाषा उसे कहते हैं, जिसके द्वारा मनुष्य समाज के प्राणी परस्पर भावों और विचारों का आदान-प्रदान लिखकर या बोलकर करते हैं।"[100] इस मापदंड से बंजारा को " भाषा " ही कहना चाहिए। लिपि न होने पर भी मनुष्य समाज का एक विशिष्ट भाग इसके माध्यम से बोलकर अपने भावों एवं विचारों का आदान-प्रदान करता है। " बोली " का व्यवहार घर तक ही सीमित रहता है जब कि बंजारा बोलचाल तक ही सीमित न होकर व्यापक है। इसके बोलने वालो की संख्या भी कम नहीं है। इस प्रकार क्षेत्र-विस्तार, तद्भाषी जनसमुदाय, अभिव्यक्ति क्षमता, समृद्ध लोक-साहित्य एवं लोक-संस्कृति का सुदृढ आधार इन सभी बातों के आधार पर बंजारा निश्चित रूप से " भाषा " सिद्ध होती है।

बंजारा भाषा का हिंदी में स्थान

मौखिक साहित्य की अतुल सम्पदा से युक्त बंजारा भाषा को यदि महाजनी अथवा देवनागरी लिपि में अभिव्यक्त किया जाय तो हिंदी से निकटता के कारण वह हिंदी साहित्य के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण पद की अधिकारिणी हो सकती है। यदि अवधी, ब्रज, राजस्थानी, मैथिली आदि भाषाएँ हिंदी साहित्य के अन्तर्गत आदर के साथ समादृत हो सकती हैं तो बंजारा भाषा क्यों नहीं ?

हिंदी को आज पूरे देश की " सम्पर्क भाषा" का उत्तरदायित्व निभाना है। इस कार्य के लिए उसे प्रादेशिक भाषाओं के प्रभावों को भी आत्मसात करना होगा। यह समायोजन उसे अद्भुत शक्ति से युक्त करेगा। बंजारा भाषा स्वयं इस प्रकार के प्रभावों को पचाने की प्रक्रिया से गुजर चुकी है, अतएव उसे हिंदी के अन्तर्गत रखने से राष्ट्रीय एकता में वृद्धि के नए क्षितिज उद्घाटित होंगे। राष्ट्रभाषा को लोकभाषा का जीवंत-प्रवाह भी उपलब्ध हो सकेगा जो भारत जैसे देश की " सम्पर्क भाषा" के लिए निहायत जरूरी है।

बंजारा जनसंख्या

भारत के विभिन्न प्रदेशों के बंजारा समाज को सरकार ने ६ सूचियों में वर्गीकृत किया है - १. आदिम जाति (Scheduled Tribe),२. अनुसूचित जाति (Scheduled Castes) ३. विमुक्त जाति (Criminal Tribe) ४. घुमक्कड जाति (Nomedic Tribe) ५. अर्ध घुमक्कड जाति (Nomedic Tribe) और ६. अन्य पिछडी जाति (Other backward classes).

इन सूचियों तथा भारतीय जनगणना रिपोर्ट के अनुसार [१०१] पूरे देश में २७ उपनामों एवं १७ उपजातियों से युक्त बंजारों की संख्या करीब ५०-६० लाख तक होने का अनुमान है।[१०२] यदि बंजारा और जिप्सी (Gypsy) में कोई अंतर नहीं है तो पूरे विश्व में बंजारा जनसंख्या २० करोड के करीब होगी।"[१०३]

बंजारा और जिप्सी :

संसार के विभिन्न देशों में विभिन्न व्यवसाय हेतु बिखरे हुए बीस करोड जिप्सी लोगों का संबंध भारतीय आर्य-वंश से है। इतना ही नहीं बंजारों से भी इनका प्राचीनतम संबंध है।

सदियों से " अपराधी जाति "[104] का कलंक अपने माथे पर लगाए हुए उत्तर भारत तथा संसार के जिप्सी अपने परंपरागत सामाजिक, राजनैतिक, तथा आर्थिक उत्थान से बिलग होकर दर दर की ठोकरें खाते रहे हैं । इन्हें निकट से पहचानने की क्षमता आंग्ल काल के म्यूल्ये, लेमार चाण्ड, कनेडी गुन्थोप, हलिन्स, डली, नायडू, कौल, टॉमकिन्स और भार्गव आदि देशी विदेशी विद्वानों में नहीं थी । इसके विपरीत वे उनकी ओर शंकित जासूसों की तरह निहारा करते थे ।

शेरसिंग शेर तथा डा. मुजुमदार ने जिप्सियों को भारतीय आर्य वंश से संबंधित माना है । दोनों के बीच बडा घनिष्ठ संबंध - रक्त और मांस का संबंध है ।

शेरसिंग शेर के मतानुसार जिप्सी भारतीय आर्यों के वंशज हैं जो प्राचीन काल में उत्तर - पश्चिम से भारत में प्रविष्ट हुए । आगे वे इस तथ्य को भी स्वीकार करते हैं कि मुसलमान आक्रमणों, पारस्परिक संघर्षों तथा अकाल आदि के कारण पंजाब और राजस्थान से निर्वासित लोग भी जिप्सी बनने के लिए बाध्य हुए ।[105] विदेशी आक्रमणकारियों के उत्थान से, विशेषतः चितौड-पतन के बाद भारतीय जिप्सी (बंजारे) पूरे देश के विविध भागों में बिखर गए ।[106] अंग्रेज शासक भी इन बंजारों को जिप्सी का अभिधान प्रयुक्त करते रहे हैं ।[107] नृत्य-संगीत प्रियता तथा शारीरिक सुंदरता के कारण ये विदेशियों से, विशेषतः हंगेरियन जिप्सी से एकरूप हो गए ।[108]

अपनी घुमक्कडी वृत्ति के कारण ये बंजारे -जिप्सी सम्पूर्ण विश्व को रौंद चुके हैं । राजस्थान, पंजाब, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, गुजरात, बंबई, आंध्रप्रदेश और मद्रास में बसे हुए धाडी बंजारा (बंजारों की एक उप जाति) जिप्सी वंश के हैं ।

सिक्खों के सातवें गुरू हरगोविंदसिंह (ई. १५९५-१६४४) के काल में पंजाब में बसे हुए बंजारा, जो मुस्लिम नृशंसता के कारण वहाँ आए थे, सिक्ख धर्म के अनुयायी थे ।[109] शाहजहाँ के वजीर आसफजहाँ के नेतृत्व में ई. १६३० में से दक्षिण प्रदेश में आए ।[110] इस प्रकार ये अपने मूल निवास स्थान से उखडकर देश में चारों ओर बिखर गए ।

बंजारा - जिप्सी भाषा का मूल स्रोत : संस्कृत

बीम्स[111] के अनुसार यूरोप के जिप्सियों की भाषा का मूल स्रोत संस्कृत है । पॉट,[112] मिलर, अलेक्जेन्डर पास्पेटी, मिक्लोसीच, विशोकी, ओन्सोबा, को-पुनीची, बोजे पिशेल, बूलनर, मैकीफ, फिंक, क्हन, लिटमन, सैम्पसन, मैकेलिस्टर, अकर्ली तथा ग्रिफिथ स्मिथ आदि भाषा-वैज्ञानिकों ने इसी धारणा का समर्थन किया है । डा. भोलानाथ

तिवारी बंजारा भाषा को जिप्सी भाषा के लिए प्रयुक्त एक अन्य नाम मानते हैं। उनके मतानुसार " बंजारा भाषा भारत में तथा भारत के बाहर बोली जाती है।"[११३]

इन विद्वानों द्वारा समर्पित सिद्धांत से इस बात की प्रबल रूप में पुष्टि होती है कि विदेशी जिप्सी भारतीय आर्य - वंश के ही हैं। जिप्सी , हिंदी तथा बंजारी शब्दों की तुलना करने से भी इसका समर्थन होता है। यहाँ उदाहरणार्थ कुछ शब्दों की तुलना प्रस्तुत है --

जिप्सी	हिंदी	बंजारी
बाल	बाल	बाल
बल	बल	बल
अंदरे	अंदर	अंदर
अंगूलो	आगे	आगे

इस तुलना से यह भी सिद्ध होता है कि जिप्सी भाषा का मूल स्रोत आर्य भारतीय भाषा है और बंजारा तथा हिंदी भाषा के वह बहुत निकट है।

इन्होंने अपना स्थानांतरण कब किया ? इस संबंध में मिकोल सीच का मत है कि ये भारत के मध्य युग पूर्व - ई.१००० वर्षों के पूर्व ही यूरोप चले गए। फारस के कवि फिरदोसी ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ " शाहनामा" (रचना ई.४२०) में इनका उल्लेख किया है। फिरदोसी के ५० वर्षों बाद के अरबी इतिहासकार हमजा-इस्फान ने भी यही राय जाहिर की है। आगे चलकर सन १४३८ ई. के उपरांत पूरे यूरोप में इनका प्रसार हुआ।[११४]

आधुनिक नृवंश-शास्त्रियों[११५] ने इनके रक्त की जाँच करके इनका "हिंदुत्व" सिध्द किया है। हंगरी के जिप्सियों के संबंध में भी यही कहा जाता है।[११६] इस प्रकार जिप्सी राजस्थान के भारतीय हिंदू आर्यवंशी हैं और इनका रक्त संबंध बंजारों से है।

बंजारों का दक्षिण गमन

मध्यकाल में राजस्थान,पंजाब,उत्तर और मध्य भारत में विदेशी आक्रमणकारियों का अकांड-तांडव होता रहा। कालांतर में चितौड का पतन हुआ। राजपूतों का आसन डाँवाडोल हो गया तब बंजारे मुगलों की चाकरी करने लगे। ये मुगल फौजों को रसद

तथा युद्ध-सामग्री पहुँचाने का काम करने लगे। शाहजहाँ के काल में उनके वज़ीर आसफजहाँ के नेतृत्व में दक्षिण में बीजापुर की आदिलशाही पर आक्रमण करने के लिए मुगल फौजों के साथ सन १६३० ई. के लगभग ये बंजारे दक्षिण की ओर आए और कालांतर में यहीं बस गए।[११७]

इस काल में बंजारों के नेता जंगी और भंगी ने अपने १८ लाख बैलों की सहायता से निज़ाम के दरबार में बडा कार्य किया। आसफजहाँ ने खुश होकर उन्हें तांबे के सिक्के पर स्वर्णाक्षरों में लिखी हुई अधिकार - मुद्रा दी थी। यह मुद्रा आज भी हैदराबाद कोर्ट के प्रवेश द्वार पर " खिलात " - अधिकारपत्र के रूप में मौजूद है।[११८]

आगे चलकर मैसूर के अंग्रेज टीपू सुल्तान के बीच के तृतीय (सन १७८९-१७९२ ई.) एवं चतुर्थ (सन १७९९ ई.) युद्धों में इन बंजारों ने अंग्रेजों के विरुद्ध अपनी बहादुरी दिखाई।[११९] दक्षिण भारत में मुगलों के साथ ही मराठों के यहाँ भी ये लोग काम करते थे।[१२०]

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. नेहरू जवाहरलाल, विश्व इतिहास की झलक, पृ.१५ ।

२. त्रिवेदी हरिनिवास, मध्यभारत का इतिहास, प्रथम खंड,१९५६,पृ.२५

३. पाणिनी : अष्टाध्याय - सूत्र ४-१-१८ ।

४. Boas, F: General Anthropology,p.41.

५. Dr.Mujumdar, D.N.: Science and Culture, p.330.

६. Gillin, & Gillin : Cultural Sociology, p.292.

७. त्रिपाठी मंगुरत्न : भारतीय संस्कृति और समाज, किताबघर,पृ.४६ ।

८. Dr.S.Radhakrishnan : Hindu View of Tribe,1927, 1st Edition,p.93.

९. Col.Mackenzie : Berar Census Report, 1921, p.152.

१०. Report of the Criminal Tribes Act Enquiry Committee, 1949, Govt.of India, p.12.

११. Irvin : Army of Indian Mughals, p.192.

१२. Baines, Athlestane : Ethnography, 1912, p.60.

१३. Col. Tod, James : Letters on Mahrattas, Indian Office Tracts, (1798) ,p.67

१४. Nanjundayya, H.V. : The Mysore Tribes and Castes,Mysore (1928), Vol.II, p.136.

१५. The Constitution (Scheduled Tribes) Order, 1950.

१६. Report of All India Banjara Study Team, 1968, p.24.

१७. डा.राजेंद्र प्रसाद : अखिल भारतीय सांस्कृतिक सम्मेलन - १९५१-दिल्ली का उद्घाटन भाषण ।

१८. श्रीमती इंदिरा गांधी : अखिल भारतीय बंजारा सेवक शिबिर १९६६ उद्घाटन का भाषण ।

१९. मेहता अशोक : अखिल भारतीय बंजारा सेवक शिबिर १९६६,समारोहांत का भाषण ।

२० Ibbetson : Punjab castes and Tribes,Vol.II,p.62-63.

२१ Col.Mackenzie: Berar Census Report - 1881, p.152

२२ Syed Siraj - ul - Hassan : The Castes and Tribes of H.E.H. Nizam's Domination, Vol.I, Bombay 1920, p.17.

२३ Elliot, H.M., The races of North Westerna Provinces of India, Vol.I, London - 1869, p.53.

४५.

४६. हर्ष-चरितम्, बाण उच्छ्वास।

४७. डा.भार्गव व्ही.एन. : मध्यकालीन राजस्थान का इतिहास, पृ.१८१

४८. ओझा, गौरीशंकर हीराशंकर : राजपूतों का इतिहास,पृ.२५

४९. Dr.Grierson,Linguistic Survey of India,Vol.I,Part-I,p.169.

५०. Nanjundayya,H.V.Mysore Tribes and Castes,Vol.II,Mysore 1928, p.136.

५१. Ibbetson,D.J., The Punjab Castes and Tribes,Vol.II,p.62.

५२. Cowell,Academy,14th May,1870.

५३. Kilts,E.J., Report on the census of Berar,1881,p.115.

५४. Census of India, 1961, Report on the population estimate of India, p.98.

५५. Epigraphica Indica, Vol.XI,p.145.

56. "Banjara are derived from the Charan or Bhat casts of Rajputana"-Prasad Narmdeshwar: Land and People of Tribal Bihar and Ranchi, p.146.

57. Briggs John : Monograph on Banjara,Travancore Literary Society,Vol.I,1829, p.170.

58. Elliot, H.M.: The races of the N.W.P.of India, Vol.I, London,1869, p.229.

59. Dr.Mujumdar,D.N., Races and Culture of India, Bombay, 1958, p.366.

60. "Originally they were the Rajputs of Rajasthan."

-- Shersing Sher,The Sikligars of Punjab,Preface,p.9 and p.73.

61. Col.Tod, James: Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol.I, 1873, p.573.

61. --Hassan,S.S.,The Castes and Tribes of H.E.H.The Nizam's Dominion,Vol.I, Bombay 1920, p.17.

62. Thursten,E.,Castes and Tribes of Southern India,Vol.I, p.393.

63. Jackson,A.M.T.: Indian Antiquary,Vol.XI.

६४. कुलकर्णी, कृ.पा.: मराठी भाषा : उद्गम आणि विकास,पृ.१०१-२.

६५. मध्यभारत का इतिहास,प्रथम खण्ड,संचालक,सूचना विभाग,मध्य भारत,प्रथम संस्करण, १९५६, पृ.३९ ।

६६. Kanitkar S.R.: History of India, 1934.

६७. Report of All India Banjara Study Team, New Delhi, India, 1966, p.8.

६८. Banjara as nothing but the same ancient tribe which were in existence during 4th century B.C.residing in small tents and hiring out their bullocks for transport of food. --Elliot, H.M.: The Races of the N.W.Provinces of India, Vol.I,London, 1869, p.229.

६९. पुराण निस्तार, पृ.२७९ ।

७०. Webser, : Critical Notes on Ramayana, p.241.

७१. पुराण निस्तार : पृ.३६७.

७२. भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व ।

७३. Apte, V.S.: Sanskrit - English Dictionary, p.500

७४. कुलकर्णी,कृ.पा : मराठी व्युत्पत्ति कोश, पृ.२०६ ।

७५. डा.रामशंकर शुक्ल : भाषा शब्द कोश, पृ.१३५४ ।

७६. Hassan S.S. The Castes and Tribes of Nizam's Dominition, p.17.

७७. Bhimbhai Kriparam:Hindu of Gujrat,p.214.

७८ Do.

७९. Shakespeare's Dictionary and Elliot's Races of N.W.p.India, p.52.

८०. Temple R.C., Indian Antiquary,Vol.IX,foot note,p.205.

८१. बंजारों की दशा का मार्मिक वर्णन करनेवाला एक दोहा निम्नलिखित है -

"बनजारा बन में फिरे, लिए लकडिया साथ ।

टाँडा वहाँ लद गया, कोई संगी नहिं साथ ॥"

82. Apte,V.S.Sanskrit - English Dictionary,p.478.

83. Hassan S.S.: The Castes and Tribes of H.E.H.,p.16.

24. Sinclair : Caste in the Dekkan, Indian Antiquary, July, 1874, p.[illegible].

25. श्री गोवर्धन शर्मा : डिंगल साहित्य, पृ.२४०।

26. Col.Tod,James: Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol.II,London, 1950, p.[illegible].

27. Rose , H.A.: Tribes and Castes of Punjab and N.W.F. Provinces, Vol.II, Lahore - 1911, p.[illegible].

28. Prasad Narmadeswar : People of Tribal Bihar, Ranchi, The Tribal Research Institute, 19[illegible], p.146.

29. Baines, Athlestane: Ethnography, 19[illegible], p.[illegible].

30. Aiyappan, A Report on the Socio-Economic Condition of the Aboriginal Tribes of the Provinces of Madras, 1948, p.164.

31. Krishna Iyer,L.A.: Anthropology in India, p.56.

32. Kennedy, M : Criminal Classes of Bombay Presidency,p.3.

33. Nanjundayya,H.V., The Mysore Tribes and Castes,Vol.II, p.136.

34. "Northern India probably Marwar was their original home." The Provinces of Malwa and adjoining Districts,1922,p.98, para 50.

35. Sher, S.S.: Sikligars of Punjab - p.12.

36. Col.Tod, James : Anals and Antiquities of Rajasthan, Vol.I,p.602.

37. Smith,V.A.,India ,Vol.III-p.173-74.

38. Col.Tod,James,Annals and Antiquities of Rajasthan,Vol.I, Introduction, p.31.

39. Dr.Bhandarkar,D.R.,Wilson Philogical lectures,p.95.

40. Gurey,G.S.: Races and Castes of India,p.97.

51. Sinha,N.K., History of India, p.176.

42. Crooke,W.:Castes and Tribes of the N.W.Provinces and Outh,Vol.IV, 1896, p.167.

43. महाभारत ।

44. पाणिनि - सूत्र-४-२-४१ ।

८४. डा.शुक्ल रामशंकर, भाषा शब्दकोश, पृ.१३५४ ।

८५. Cumberlege, H.R.: Some account of the Banjarrah class, Bombay Education Press,1882, p.12.

८६. Their mother tongue is Banjara,mixed with Kannada, Telgu,Marathi and Tamil words.Census of India,1961,Vol.XI, p.9.

८७. डा.तिवारी उदयनारायण : हिंदी भाषा का उद्गम और विकास ,पृ.१६०।

८८. Census of India,1961, Mother Tongue,Vol.IX.

८९. द्विवेदी हरिहर निवास,मध्यभारत का इतिहास, प्रथम खंड,पृ.४२ ।

९०. Dr.Grierson,W.:L.S.of India,Vol.I,part I,p.172,and Antiquary (Indian),Apl.1931,Supplement,p.12.

९१. डा.श्यामसुंदरदास : हिंदी साहित्य का इतिहास,पृ.८६।

९२. डा.माहेश्वरी हीरालाल : राजस्थानी भाषा और साहित्य,पृ.३१।

९३. संपा.मनोहर प्रभाकर : राजस्थानी साहित्य और संस्कृति ,पृ.१०।

९४. Dr.Chatterji,S.K: Origin and Development of Bengali Language,p.29.31.

९५. डा.शर्मा गोवर्धन : डिंगल साहित्य, पृ.१२८ ।

९६. डा.तिवारी भोलानाथ : भाषा शब्द कोश, पृ.२०६-८ ।

९७. Dr.Grierson,W: Linguistic Survey of India,Vol.I,part I, Calcutta,1927, p.172.

९८. डा.मेनारिया मोतीलाल : राजस्थानी भाषा और साहित्य, संपा.मनोहर प्रभाकर,राजस्थानी साहित्य और संस्कृति,पृ.२०।

९९. Dr.Grierson,W: Linguestic Survey of India,Calcutta,Vol.I Part I,p.174.

१००. डा.तिवारी उदयनारायण : हिंदी भाषा का उद्गम और विकास,पृ.९८।

१०२. Govt.of India : The Scheduled Castes and Scheduled Tribes,Lists of Notification Order 1956,and Census Report of India 1961.

१०३. Shersing Sher : The Sikligars of Punjab,p.80.

१०४ Criminal Tribes Act, 1871, by British Rulers.

१०५ Shersing Sher : The Sikligars of Punjab, p.43.

१०६ Baines,Athlestane : Athnography,Strassburg,1912,p.60.

107. March of India, Vol.9, No.3, March 1957, p.35.

108 Baines,Athlestane: Ethnography,Strassburg,1912,p.60.

109. Rose H.A.: Tribes and Castes of Punjab,Lahore,1914, Vol.III,p.1.

110. Hassan S.S.: The Castes and Tribes of H.E.H.,p.20.

111. Beams,Jone : A Comparative Grammar of the Modern Aryan Language of India, p.237.

112. Mr.Pott: Die Zigeuner in Europa and Asien 1844-45 in two volumes.

113. डा.तिवारी भोलानाथ : हिंदी भाषा शब्द कोश,पृ.२०८।

114 Sher Sing Sher : The Sikligars of Punjab, p.76.

115 Hooten,E.A.: Up from the Ape,New York,1958,pp.548-50.

116 It has been known for some time that Gypsies of Hindu origin who have lived in Hungery for several hundred years, have the modern Hindu distribution of A.S.O. group." Race and Sanger : Blood Groups is Man, London 1958, p.12.

117. Thurston,E: Castes and Tribes of Southern India,Madras, 1909, Vol.IV , p.213.

118. Hassan,S.S.: The Castes and Tribes of H.E.H.p.20,

119 Briggs J.: Monograph on Punjarrah,p.192.

120 Wilks: South of India, Vol.II,p.209.

121 Col.Tod,J.: Letters on the Mahrattas,1798,Indian Office Tracts,p.67.

बं जा रा : लोक जीवन और लोक-संस्कृति

बंजारा : लोक जीवन और लोक - संस्कृति

बंजारा : सामाजिक संगठन

घुमक्कड व्यक्ति की कहानी जीवन यापन के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर निरंतर भटकते रहने की कहानी रही है। आदिम काल में मनुष्य घुमक्कड था, धीरे धीरे कृषि अवस्था में वह स्थिर हो गया लेकिन प्राकृतिक साधनों की खोज हेतु भटकने वाले मानव - समुदाय अब भी बने रहे। भारत की घुमक्कड जाति कृषि - व्यवसाय अथवा चरागाह के लिए ही नहीं, वरन् उद्यम एवं वस्तुओं के क्रय-विक्रय हेतु फिरती रही। विभिन्न ऋतुओं एवं पर्वों आदि के अवसर पर लोगों को लगने वाली वस्तुओं की पूर्ति कर ये बंजारे अपनी व्यापार कुशलता का परिचय देते आए हैं।

सदियों भ्रमणशील जीवन व्यतीत करते रहने पर भी इनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ रही। इसका कारण है इनका तांडा समुदाय, जिसमें इनके सामाजिक संगठन की सबसे बडी शक्ति केंद्रित हो गई है। घुमक्कड होने के कारण ये ग्रामों से भी बँध नही पाए। आज भी शहर निवासी कुछ बंजारों को छोड दें तो ये किसी एक स्थान पर बस कर रहना उचित नहीं समझते, बल्कि गाँव से कुछ दूर नई बस्ती बनाकर रहना विशेष पसंद करते हैं। इतने वर्षों बाद आज भी बंजारा जीवन में तांडा संगठन एवं उसमें तांडा नायक का महत्त्व पूर्ववत ही बने हुए हैं। कहीं कोई बदल नहीं हुआ है।

ताडा - संगठन में तांडा नायक का महत्त्व असाधारण है। यह पद वंशानुगत है। तांडा - नियमों का पालन लोग स्वेच्छा से करते हैं, हालांकि ये नियम बडे कठोर होते हैं। नियम पालन करवाने के लिए अदालत या पुलिस की कोई जरूरत नहीं पडती। जिस परिवार को जो काम सौंपा जाता है उसे वह पूर्ण निष्ठा के साथ करता है। इनमें सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना होती है। एक सदस्य के कार्य के लिए संपूर्ण समूह उत्तरदायी होता है। समूह के सदस्य एक दूसरे के सुख-दुख का पूरा ध्यान रखते हैं।

बंजारा : आर्थिक संगठन

बंजारा समाज की आर्थिक स्थिति भूमि,कृषि-कार्य,पशु धन एवं मजदूरी आदि पर निर्भर है। आर्थिक विषमता इनमें भी है। कुछ बहुत अमीर हैं और कुछ

बहुत गरीब है । हर परिवार के पास कम से कम एक बैल जोडी या गाय होती है । इनमें स्वर्ण-संग्रह की प्रवृति होने से उसे गिरवी रखकर ये कर्ज ले लिया करते हैं । बैल खरीदने के लिए सोना गिरवी रखकर महाजनों से ऋण प्राप्त कर लेते हैं, जो बाद में वापस कर दिया जाता है । इस प्रकार बंजारों का कर्ज सामाजिक न होकर व्यवसायिक ही अधिक होता है ।

धर्मभावना

बंजारों के धार्मिक विश्वास परंपरागत हिंदू धार्मिक विश्वासों से संबंधित हैं । धर्म, पूजा, व्रत, त्योहार, धार्मिक संस्कारों आदि पर यह प्रभाव दर्शनीय है । फिर भी कुछ पृथक परंपराएँ भी दीख पडती हैं । इनमें प्रकृति एवं अज्ञात के प्रति भय, विस्मय की आदिम भावना भी व्याप्त है, जिसका बाह्य रूप मंत्र-तंत्र, जादू टोना आदि के रूप में दिखाई देता है ।

इनमें अग्नि की पूजा लोक-कल्याण की कामना के लिए तथा पाप क्षालन के लिए की जाती है । अग्नि के साथ जल, जंगल, भूमि, नई फसल आदि की भी पूजा की जाती है । राम, कृष्ण, महादेव, बालाजी, तुलजा भवानी आदि इनके देवी-देवता हैं । बालाजी के निमित्त तांडे पर ध्वज फहराते और बैलों की पूजा करते हैं । किसी के बीमार पडने अथवा कोई विपत्ति आने पर बैलों का चरण-स्पर्श करते हैं ।

इनके अन्य देवी देवताओं में मरिअम्मा, मरताल, हिंगलजादेवी, शीतला देवी, लकड्या, वड्या, म्हसोबा, भैरोबा, दुर्गादेवी, वीर मास्तेमा आदि आते हैं । अनिष्टकारी शक्तियों के प्रति भय का भाव भी इनमें है । मृतात्माओं को भी संतुष्ट रखने के लिए उन्हें आहूत किया जाता है ।

सांसारिक बाधाओं, रोगों, शत्रुओं आदि से मुक्ति पाने के लिए तथा भूत-प्रतों से बचने के लिए जादूटोना, मंत्र-तंत्र आदि का सहारा इनमें लिया जाता है । देवी - देवाताओं को संतुष्ट करने के लिए " बलि" देने की प्रथा भी इनमें है । इसके अतिरिक्त बंजारा समाज जिन प्रदेशों में बस गया है वहाँ की धार्मिक रूढियों तथा परम्पराओं का भी उस पर प्रभाव पडा है ।

अंधश्रद्धाएँ -

आज के वैज्ञानिक-युग के प्रतिमानों से देखा जाय तो बंजारे अंधश्रद्धाग्रस्त तथा पिछडे हुए दिखाई पडेंगे । उनका विश्वास आधिभौतिक शक्तियों, भूत-प्रतों, दुष्टात्माओं

आदि में बहुत अधिक है। वे अपने सभी कष्टों के कारण इन्हें में खोजकर उन्हें संतुष्ट करने में जुट जाया करते हैं। वर्षा न होने, महामारी फैलने, बाढ आने, हिंस्र पशुओं के आतंक में वृद्धि होने, संतानोत्पत्ति न होने आदि दुखद घटनाओं के पीछे आत्माओं की छाया देखते हैं। अत: वे विशेष प्रकार की प्रक्रिया के द्वारा आत्माओं को प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं।

भारत के अन्य लोक-समूहों के समान बंजारों में भी धार्मिक अंधश्रद्धाएँ प्रचलित हैं। ये निम्नलिखित हैं -

१. सामन (अपशकुन)   २. सपनो (स्वप्न)

३. साखी (अद्भुतरम्य कथाएँ)।   ४. छू मंतर (जादू टोना)

<u>जीवन साथी का चुनाव</u>

बंजारा जाति में विवाह के लिए अन्तर्गोत्र निषिद्ध हैं। विवाह संबंध स्थापित करने के लिए निम्नलिखित तीन गोत्र टाले जाते हैं - अपना गोत्र, अपनी माता का गोत्र और अपने पिता की माँ का गोत्र। साथ ही कुछ गोत्रों को आपस में भाई माना गया है अतएव इनमें विवाह संबंध वर्ज्य हैं।

कोई बंजारा दो प्रकार से अपने जीवन साथी को प्राप्त कर सकता है - नियमित विवाह और नाता। नियमित विवाह में लडके के मामा या फूफा लडकी के बारे में सूचना देते हैं और गोत्र का मिलान करने पर लडके का पिता और उसके संबंधी लडकी को देखने जाते हैं। लडकी पसन्द आने पर लडके वाले लडकी की गोद में एक रुपया, नारियल तथा कुछ वस्त्र रखते हैं। दोनों ओर से बात पक्की होने पर विवाह का निश्चय किया जाता है। इसी समय वधू मूल्य की रकम भी तय कर ली जाती है। किसी ब्राह्मण या तांडा - नायक द्वारा विवाह की तिथि और मुहूर्त निश्चित कर लिए जाते हैं।

वरपक्ष तीन दिन पूर्व बारात लेकर कन्या पक्ष के यहाँ जाता है। इन दिनों के लिए भोजन की व्यवस्था बराती स्वयं करते हैं। विवाह का कर्मकांड कराने के लिए ब्राह्मण या तांडा परम्परागत व्यक्ति को बुलाया जाता है। विवाह में सात फेरे होते हैं। प्रथम चार फेरे वधू लगाती है और अंतिम तीन फेरे वर को लगाने पडते हैं। विवाह के पश्चात वधू-पक्ष की ओर से बरातियों को एक बार भोजन कराया जाता है। विवाह के बाद भी १०-१५ दिन बराती उस तांडे में पडे रहते हैं, जिसका प्रचलन आजकल कम होता जा रहा है।[१]

विधवा - विवाह

बंजारों का विश्वास है कि स्त्री का ब्याह जीवन में एक बार ही होता है, अनेक बार नहीं। विधवा विवाह होते हैं लेकिन पुनर्विवाहित नारी को "घूघरी चोटला" (कानों के सौभाग्य सूचक अलंकार) और "हासली" (गले का आभूषण) तथा भुजाओं आदि में सौभाग्य सूचक गहने आदि पहनने का अधिकार नहीं है।

देवर भाभी विवाह

बंजारों में बहुपत्नीत्व का प्रचलन अल्प मात्रा में ही है किंतु बहुपतित्व का प्रचलन नहीं है। इनके पूर्वज सुग्रीव ने अपनी भाभी तारा के साथ विवाह किया था। इसी का अनुकरण करते हुए पति की मृत्यु हो जाने पर वह स्त्री अपने देवर से विवाह कर सकती है।"[२]

बाल विवाह

बाल विवाह की प्रथा कई स्थानों पर बंजारों में विद्यमान है लेकिन प्रायः विवाह योग्य आयु में ही विवाह होते हैं।

विवाह - विच्छेद

बंजारा समाज में विवाह विच्छेद की प्रथा प्रचलित है। अयोग्यता, क्रूरता, सौमनस्य के अभाव, व्यभिचार आदि की अवस्थाओं में तलाक दिया जा सकता है। तांडे की पंचायत इसका निर्णय करती है। विशेष परिस्थितियों में तलाक देनेवालों को कुछ हर्जाना भी देना पड़ता है।"[३]

यौवनागमन समारोह

कन्या के रजस्वला होने पर कोई विशेष समारोह नहीं किया जाता। इस तथ्य को गोपन ही रहने दिया जाता है। कन्या को घर के एक कोने में बैठा दिया जाता है और उसके लिए अलग से भोजन आदि की व्यवस्था की जाती है। पाँचवे दिन रात्रि में या छटवें दिन प्रातःकाल स्नान कराके उसे शुद्ध किया जाता है।[४]

वेश भूषा

बंजारों की वेशभूषा काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और कच्छ से लेकर कलकत्ता तक एक ही है। इससे उनके परंपराप्रिय होने की सूचना मिलती है। वेशभूषा

के द्वारा देश के किसी भी भाग में बंजारों को अन्यों से पृथक पहचाना जा सकता है। वस्त्रों के रंग, रचना, सिलाई, कसीदाकारी आदि सभी में एकरूपता दिखाई देती है। बंजारा पुरुष हृष्ट-पुष्ट व सुदृढ होते हैं। उनकी कार्यक्षमता असीम होती है। इनकी स्त्रियाँ भी शारीरिक गठन में मजबूत होती है। बंजारा स्त्रियाँ सुंदर होती हैं तथा वस्त्र विन्यास की विशिष्टता के कारण उन्हें सहज ही पहचाना जा सकता है।[5] बंजारा स्त्रियों की पोशाक ऊनी या सूती कपडे की बनी होती है। कपडों की बनावट सज्जा, एवं कशीदाकारी एक विशिष्ट प्रकार की होती है। यह सारा काम बंजारा स्त्रियाँ स्वयं किया करती हैं। इस कला में वे कुशल हुआ करती हैं। काँच के टुकडों, कोडियों और कौडियों की मालाओं से वस्त्रों में साज सज्जा की जाती है। लाल रंग इन्हें प्रिय है। ऋतुओं के अनुसार इनके वस्त्र बदला नहीं करते। सभी ऋतुओं में ये अपरिवर्तित रहते हैं।

पुरुषों की पोशाक धोती, कुर्ता तथा पगडी होती है। स्त्रियाँ आभूषण प्रिय होती हैं। इनके आभूषण परम्परागत होते हैं। नाक में परंपरागत नथुनी, कानों में कर्णफूल तथा हाथों में हाथीदात की चूडियाँ, रहती हैं। थर्स्टन ने आठ से १० पौंड तक गहनों के बोझ का उल्लेख किया है।[6]

बंजारा स्त्रियों में कलाप्रियता बहुत अधिक होती है। सौंदर्य में उभार लाने के लिए वे अपने हाथों पर, माथे पर और नाक की दाहिनी ओर गोदने गोदवाती हैं। बंजारों की दृष्टि में इसका विशेष महत्त्व है।

स्त्रियों की वेशभूषा

विवाहित बंजारा स्त्रियों की वेशभूषा निम्नलिखित होती है --

१. फेटिया (लहंगा या घोघरा)

२. काचली (चोली जो पीठ पर अनावृत्त रहती है)

३. छाटिया या टुकरी (ओढनी)

४. छेवटिया (कमर की उपरनी)

५. दोरी - झालरो (दूल्हन का वस्त्र)

६. घूँघटो (घूँघट की उपरनी)

अविवाहित बंजारा (कुमारियों) लडकियों की वेशभूषा निम्नलिखित होती है। १. फेटिया (कौडियों से सजा हुआ लहँगा)

२. अंगिया ("काचली") के समान वक्ष वस्त्र)

३. फड्की (दुपट्टा)　　४. छेडा (उपरनी)

आभूषण

विवाहित बंजारा स्त्रियों के आभूषण निम्नलिखित हैं --

१. घुगरी- टोपली या घुगरी चोटला (माथे के दोनों ओर बालों को घंटियों के समान लटकाए हुए कानों के आभूषण का एक प्रकार। विधवाएँ इसे नहीं धारणा करती हैं।)
२. चूडो, बलिया या बोडालो (लडकों पर हाथीदांत की पट्टी मढे कंगन)
३. चूडर बलिया (सींगों की चूडियाँ)
४. कास,बंकडी या रकडी (पैर की पायल)
५. सेड - सांकली (चाँदी की घुंघरूदार पैंजनी)
६. राती (केशकलाप)
७. राती - चूंडो (केश - कलाप पर फँसाने का आभूषण)
८. मूरिया (सोने की नथुनी)
९. हास्ली (चांदी का कंठहार)
१०. मूँगार (लाल कौडियों का गलहार)
११. लाकडी (विविध रंगी कौडियों का हार)
१२. वैंगतीया फूला (अंगूठी)
१३. छल्की (अंगूठे की अंगूठी)
१४. चटकी (पैर की अनामिका उँगली की अंगूठी)
१५. अंगूटला या अंगघोला (अंगूठी जैसा एक गहना)

* येती, चूडो और च्योंडोला बालों में लगाए जानेवाले आभूषणों के विभिन्न प्रकार हैं जो गर्दन के पीछे पीठ पर पहने जाते हैं।

अविवाहित लडकियों के आभूषण निम्नलिखित होते हैं --

१. घुगरा या गरतनी) काली कौडियों की पैंजनियाँ)
२. टोकी (गले का हार)　　३. चूडी (कंगन)

हम देखते हैं कि विवाहित स्त्रियों एवं कुमारियों के आभूषणों तथा वेशभूषा में अंतर है --

(१) कुमारी " कांचली " (वक्षावस्त्र) नहीं पहनती है।

(२) कुमारियाँ पैरों में गरतनी (काली कौडियों की पैंजनी) पहनती है, जबकि विवाहिताएँ " कंकडी " (पायल) ।

(३) "चूडी " और " घुगरी " (हाथीदाँत के कंगन और बालों के आभूषण विवाहिताओं के लिए हैं, कुमारियों के लिए नहीं ।

पुरुषों की वेशभूषा और आभूषण

बंजारा पुरुषों की वेशभूषा निम्नलिखित होती है --

(१) गुडगी या गडकी जंग्या (धोती)

(२) बरकशी (बारह बंदों का अँगरखा) (३) झगला (कमीज)

(४) दौल्दा - धोती (बुजुर्ग लोगों की कमीज और धोती)

(५) फेरना - धोती (जवानों की कमीज - धोती)

(६) मोलिया (दूल्हे के वस्त्र)

बंजारा पुरुषों के आभूषण निम्नलिखित होते हैं --

१. कनादोरी या कनादोरो (कमर में बाँधने की सूत या चांदी की डोरी)

२. मारकी (कानों के बून्दे)

३. चोकडा - गोकरर (कानों पर लटकाय जानेवाला जंजीरनुमा गहना)

४. वीन्ती (अंगूठी)

५. च्योंगा (साफे में लटकाया जानेवाला एक सम्मान सूचक आभूषण)

६. कलडा (चांदी की कलाई में पहनने की जंजीर)

बंजारा पुरुषों की केशभूषा

बंजारा पुरुषों की केशभूषा निम्नलिखित प्रकार की होती है -

१. झालपा (झब्बेदार बाल रखना)

२. कंगोरा (कंघी से झाडे जा सकने लायक बाल रखना)

३. घेरो (वर्तुलाकार बाल कटवाना)

तांडे में बंजारों का अपना नाई होता है, जिसे परंपरागत केशभूषा की जानकारी रहती है ।

पंचायत प्रथा

बंजारों नें पंचायत की प्राचीन व्यवस्था है जिसे " गोर पंचायत " कहते हैं । इसमें निम्नलिखित ३ प्रकार के मुकदमों का फैसला किया जाता है --

१. नसाब : हत्या, आक्रमण, दुर्घटना आदि ।

२. हसाब : वित्तीय मामलों के दीवानी मुकदमे ।

३. मलावो: तांडे के आंतरिक अथवा दो तांडो के बीच के विवाद।

आज भी बंजारे इस पंचायत के निर्णयों को मान्य करते हैं और उन पर कड़ाई से अमल किया जाता है ।" गोर पंचायत " का प्राचीन रूप और महत्त्व आज भी कायम है ।

" गोर पंचायत " के कर्मचारी

पंचायत के प्रमुख कर्मचारियों में तांडा - नायक, कारभारी, नसाबी,हसाबी (पंच) और दायेसाने का समावेश होता है । इनकी सहायता के लिए घाडी, नावी (नाई) घाडिया और सिंगाडिया होते हैं । इन सहायकों के काम संबंधित लोगों को इकट्ठा करना,उनके निवास का प्रबंध करना तथा उनके भोजन की व्यवस्था करना आदि है । रसोई का प्रबंध सामान्यत: नाई के जिम्मे होता है ।

पंचायत की सजाएँ

अभियुक्त के अपराधी सिद्ध होने पर निम्नलिखित में से कोई एक सजा तजबीज की जाती है --

१. आर्थिक दंड अथवा दया दिखाना । २. सामाजिक भर्त्सना और अपमान ।

३. बहिष्कार ।

यह सच है कि पंचायत की सजाएँ कठोर होती हैं और उस पर नए कानून कायदों का कोई प्रभाव नहीं पडा है, लेकिन फिर भी बंजारों का इस पर दृढ विश्वास है । इसके प्रति वे आदर और श्रद्धा की भावना रखते हैं ।

परंपरागत वाद्य

बंजारों के नृत्यगान के अवसर पर उपयोग में लाए जानेवाले वाद्य परंपरागत होते हैं ।

गुरू और सेवामाया आदि वर्ग विशेष के संतों के भजनों के अवसर पर निम्नलिखित वाद्यों का प्रयोग किया जाता है -

१. तंतुवाद्य - इकतारा, तंबूरा आदि ।

२. शंख, सींग आदि मुँह से फूँक कर बजाए जानेवाले वाद्य ।

३. ढोलक, नगाडा, डफ, झाँझ, तबला आदि ताल के वाद्य।

नृत्य-गान के अवसर पर काम में लाए जानेवाले वाद्य निम्नलिखित हैं -

१. सींगी आदि फूँक कर बजाए जानेवाले वाद्य।

२. ढोलक, नगाडा, डफ आदि ताल वाद्य।

इन वाद्यों के साथ घरेलू बरतन, थाली, फूँकनी आदि वस्तुओं का भी उपयोग किया जाता है।

निरामिष खाद्य पदार्थ

बंजारा समाज में विभिन्न अवसरों पर विशेष खाद्य पदार्थ बनाए जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं --

१. गलवणी - (गुडमिश्रित खीर के समान एक खाद्य पदार्थ)

२. कडवो (गेहूँ का आटा और गुड मिश्रित एक पदार्थ)

३. कडाई - (गेहूँ का आटा और गुडमिश्रित एक पदार्थ)

४. घोटा - (एक मादक पदार्थ)

५. कुल्लर - (गेहूँ का आटा और गुड मिश्रित एक पदार्थ, पँजीरी की तरह प्रसाद के लिए इसका उपयोग किया जाता है।)

६. घामोली - (एक मीठा पदार्थ)

७. गुंजा - सुनवली (गुलाबजामुन जैसा एक खाद्य पदार्थ)

सामिष खाद्य पदार्थ

बंजारा समाज मांसाहारी है। दैनिक भोजन में भी मांस या मांस से बने खाद्य पदार्थ रहते हैं। विशेष अवसरों पर विशेष मांसाहारी व्यंजन बनाए जाते हैं। सामिष खाद्य पदार्थ निम्नलिखित हैं -

बोटी, बाटी, लगावन, नारेजा, सलोई, सुलरी-बोटी, घुंडीवालो, हडका आदि।

नारी का स्थान

बंजारा समाज में नारी का असाधारण महत्त्व प्राप्त है। उनकी ओर राजपूती वंश गौरव की दृष्टि से देखा जाता है। वह परिवार का केंद्रबिंदु होती है। पूरे घर को संभालने की नैतिक जिम्मेदारी उसपर होती है। सुंदरता में श्रेष्ठ होते हुए भी बंजारा नारी अथक परिश्रम कर अपने कर्तव्यों को वहन करती है। परिश्रम करने में वह पुरुषों से एक कदम भी पीछे नहीं होती है। गृहस्थी के साथ ही वह कृषि-कार्य भी करती है। अवकाश के क्षणों में वह वस्त्रों पर कसीदाकारी करती है।

बंजारा-स्त्री निर्भय होती है। घने जंगलों में भी वह निर्भय विचर सकती है।

अपनी साहसिकता एवं निडरता के कारण उसका पुरुषों पर स्वामित्व होता है।[7]

मेहमानों का आदर-सत्कार तो प्रत्येक बंजारा परिवार में होता है, लेकिन बंजारा स्त्री की ओर से वह बडे ही स्नेहल भाव से हुआ करता है।

" जन्तर-मन्तर " का प्रभाव

वैदिक कर्मकांडियों के लिए मंत्र टोने के रूप में एक शक्ति का काम करते थे। बाद में वैदिक भूमि त्यागकर मंत्रों ने सिद्धों की भूमि ग्रहण की, फिर नाथों से उनका संबंध हुआ। अब मंत्र शुद्ध टोने के रूप में हैं। मंत्रों का उद्देश्य अब बाधाओं - भूत प्रेत आदि की - को दूर करना ही है। मंत्रों का प्रयोग करनेवाला उनके शब्दों से ही परिचित होता है, अर्थ वह नहीं जानता। इन मंत्रों पर ध्यान देने से विदित होता है कि उनमें अर्थ जैसी कोई वस्तु नहीं होती है। साधारणत: मंत्र किसी योगी, सिद्ध या वीर की आन के रूप में होते हैं।[8] डा. राहुल सांस्कृत्यायन के अनुसार - " मंत्र कोई नई चीज नहीं है। मंत्र से मतलब उन शब्दों से है, जिनमें लोग मारण, मोहन, उच्चाटन आदि की अद्भुत शक्ति मानते हैं। यह वेदों में भी पाते हैं। " ओं वौषट् श्रौषट " आदि शब्द ऐसे ही हैं जिनका प्रयोग यज्ञों में आवश्यक माना जाता है। मंत्रों का इतिहास ढूंढिए तो आप इन्हें मनुष्य की सभ्यता परखने के साथ साथ तरक्की करते पाएँगे। बाबुल (बेबीलोन), असुर, मिश्र आदि देशों में भी मंत्र का अच्छा जोर था।[9]

मंत्र का टोने से घनिष्ठ संबंध है। धर्म का संबंध स्तुति से है और मंत्र का टोने से।[10]

मंत्रों के प्रयोगकर्ता को बंजारा समाज में " भगत या भूपा " कहते हैं। अपनी मंत्रशक्ति के कारण यह पूरे समाज को प्रभावित करता है। भूत - प्रेत की बाधा दूर करने, भय निवारण, किसी व्यक्ति को वश में करने अथवा उसे हानि पहुँचाने, विष उतारने आदि विभिन्न प्रयोजनों के लिए मंत्र शक्ति का प्रयोग किया जाता है।

सामाजिक रीति-रिवाज

भारत की अन्य जमातों द्वारा मनाए जानेवाले उत्सवों, समारोहों, धार्मिक तथा सामाजिक रीति-रिवाजों तथा बंजारों द्वारा मनाए जाने वाले समारोहों आदि में थोडी भिन्नता है। इनके रीतिरिवाज परंपरागत एवं सदियों पुराने हैं और ये अभी भी उनका पालन करते चले आ रहे हैं।

पुत्रोत्सव

तांडे के किसी परिवार में पुत्र जन्म होते ही ढोल बजाकर उसकी सूचना दी

जाती है। ढोल की आवाज सुनकर तांडे की प्रौढ स्त्रियाँ उस घर के आँगन में इकट्ठी होकर गाती हैं तथा नृत्य करती हैं। इस अवसर पर " वेकल्यो अथवा नायरो " गीत गाए जाते हैं।

पुत्र जन्म के तीसरे या पाँचवें दिन " दल्वा धोकेरो " (छठी की पूजा) मनाते हैं। इस अवसर पर घर के सामने एक छोटी सी खाई खो दी जाती है। पुत्र की माता अपने माथे पर जल से भरे सात कलश रखे हुए खाई तक आती है। साडी के आंचल में वह गेहूँ लिए रहती है जिसे मार्ग पर बोते हुए आती है। शेष गेहूँ वह खाई में गिरा देती है। सौभाग्यवती स्त्रिया सिर पर से कलशों को उतरवाने में उसकी मदद करती है। कुमारियों को सूतिका के पास नहीं आने दिया जाता। माथे पर से कलशों को उतारने के बाद सूतिका गुड मिश्रित गेहूँ के आटे का प्रसाद (कुल्लर) खाई को अर्पित कर हाथ जोडती है। अन्य स्त्रियाँ ज्वार के आटे के बने दीपकों से खाई की आरती उतारती हैं और छठी देवी की प्रार्थना गाती है। इसके बाद खाई में डाले हुए गाय के गोबर में सूतिका के बाएँ हाथ के अंगूठे को सात बार डुबाते हैं और कलशों का पानी आटे के दीपक खाई में छोडकर खाई को मूँद देते हैं। अब सूतिका घर लौटती है और तांडे के बच्चों को प्रसाद (कुल्लर) बाँटा जाता है।

नामकरण समारोह

पुत्र का नामकरण संस्कार होली के अवसर पर किया जाता है। इसे "छोरान धुंडेरो " कहते हैं। होली-पूजन के पूर्व नवजात शिशु का पिता ताण्डा नायक के घर जाकर उसे पुत्र प्राप्ति की खबर देता है और उसकी अनुमति लेकर अपने घर के आँगन में कंबल का तंबू बना देता है। तांडा - वासी यथाशक्ति उसे गेहूँ का आटा प्रदान करते हैं। सभी स्त्रियाँ मिलकर रात को भोजन बनाती हैं। दूसरे दिन नामकरण (बरही) संस्कार होने पर " सार्वजनिक भोजन " (घुंडेर खागु-बरही का भोजन) होता है।

नामकरण विधि बडी मनोरंजक होती है। जमीन पर चौक पूर कर उस पर पाँच पैसे रख दिए जाते हैं। उसके ऊपर बोरा बिछाकर लडके के माथे पर लाल रंग का वस्त्र बाँधकर उसे बोरे पर बैठा देते हैं। अब सब लोग बच्चे के चारों ओर घेर लेते हैं। एक बाँस बच्चे के माथे का स्पर्श करता हुआ पकडा जाता है। लोग अपने हाथों में छोटी लाठियाँ लिए होते हैं। वे लाठियों से बाँस पर हल्का प्रहार कर आवाज निकालते हुए बच्चे का नामकरण करते हैं। इस संस्कार में स्त्रियाँ भाग नहीं लेतीं।

केवल पुरुष ही रहते हैं।

संध्या समय स्त्रियाँ बच्चे को होली के करीब ले जाती हैं। अग्नि की प्रदक्षिणा कर, हाथ जोडकर - लडके के साथ घर वापस आती हैं। नामकरण संस्कार बंजारा लोग बडी घूमधाम से मनाते हैं।

मुंडन संस्कार

पुत्र के पाँच या सात महीने का हो जाने के बाद उसका मुंडन संस्कार किया जाता है, जिसे " लटूर लेरो " कहते हैं।

यदि कुल की कोई स्त्री सती हो गई हो तो उसकी स्मृति में सर्वप्रथम "कुल्लर" (प्रसाद) बनाकर समस्त तांडे को भोजन कराया जाता है और तब मुंडन संस्कार किया जाता है। यह संस्कार भी बडी घूमधाम से सम्पन्न किया जाता है। इस अवसर पर अतिथियों को भोजन कराकर आदरपूर्वक " नेग " दिया जाता है। दिन भर गीत नृत्य भी चलते रहते हैं।

कुछ बंजारे यह समारोह " चामड-पूजेरो " के रूप में करते हैं। पुत्र जन्म के दिन जूते घर में छिपाकर रख दिए जाते हैं और मुंडन संस्कार के दिन देव-पूजा के अवसर पर उन्हें निकाला जाता है। बाकी सारी विधियाँ उसी प्रकार होती हैं। इस प्रथा के पीछे यह अर्थ है कि जूते जिस तरह हिफाजत से रखे जाते हैं, उसी प्रकार लडके को भी हिफाजत से रखना चाहिए।

विवाह-समारोह -

बंजारा विवाह समारोह में भी वैशिष्ट्य होता है। प्राचीन काल में भावी वर को साल, छः महीने के लिए भावी ससुराल में रखा * जाता है। उसे पौष्टिक भोजन एवं विश्राम कीसुविधा देकर मजबूत किया जाता था। अब पूरे तांडे की कुमारियाँ तथा स्त्रियाँ बल आजमाने के लिए उस पर टूट पडती थीं। इस आक्रमण से अपनी रक्षा कर सुरक्षित चक्रव्यूह भेद पर भाग निकलने वाले लडके को " योग्य वर " मान लिया जाता था। सभी प्रदेशों में इस प्रथा का पालन अब नहीं किया जाता।

विवाह के लिए कोई विशेष समय,मुहूर्त आदि नहीं देखा जाता है। विवाह किसी भी दिन किंतु रात्रि के समय ही हो सकता है। इसका कारण महाराणा प्रताप एवं अकबर का युद्ध माना जाता है। इस युद्ध के बाद बंजारों पर मुगल सैनिकों की

स्थायी कोप दृष्टि रहने लगी । इनके बीवी बच्चों का अपहरण करना वे अपना धर्म समझाने लगे । मुगल सैनिकों से बचने के लिए विवाह समारोह रात्रि के समय किए जाने लगे और यह नियम अभी भी चला जा रहा है ।

शादी-योग्य उम्र का कोई बंधन नहीं होता । लड़की की उम्र लड़के से अधिक भी हो सकती है । तीज त्योहार के अवसर पर लड़के लड़कियाँ एक दूसरे को पसंद करते हैं । लड़के को लड़की पसन्द आ जाने पर तांडा नायक की अनुमति से ब्याह का निश्चय (सगाई या गोल पक्का होना) हो जाता है ।

इनके यहाँ " दहेज " की प्रथा नहीं है लेकिन शादी पक्की हो जाने पर "करार" के रूप में वर पक्ष वाले कन्या पक्ष को कुछ धन देते हैं । " करार " हो जाने के बाद ब्याह तय हो जाने की घोषणा करने के लिए वर पक्ष कन्या पक्ष के तांडा नायक को एक रुपया (शाकिया रजिआ) देता है । अब ब्याह तय होने में कोई संदेह नहीं रह जाता है ।

इस विधि के बाद भोजन के समय पीने के लिए भांग दी जाती है । भांग खाने के पूर्व निम्न घोषणा दी जाती है

" राधा मीठी घोडली रण मीठी तलवार ।
सेज मीठी कामिनी, सुरा मीठी भांग लो भाई भांग,लो भाई भांग ।"

रात्रि के समय भोजनोपरांत वर-वधू पक्ष के लोग एकत्र बैठकर एक दूसरे से प्रश्न करते हैं । प्रश्नों के पूर्व " पंच पंचात् राजा भोजेर सभा .... " कहकर अपने समाज के संबंध में चर्चा शुरू करते हैं ।

विवाह के समय वर पक्ष में पहला समारोह " साडी ताणेरो " (साडी पहनने का) और " गोल खायेन गेच " (तिलक लगाने का) का किया जाता है । बाजार जाकर साडी खरीदी (साडी ताणेन जायच) जाती है और कन्या को वर पक्ष के यहाँ बुलाया जाता है । कन्या को साडी पहनाने के बाद नारियल आदि से उसकी गोद भरी (पतारी मांडेयच) जाती है । इसके बाद ब्याह की तैयारी(सांज दाया बांधेरो) शुरू होती है । इस दौरान दूल्हे के लिए आशीर्वादात्मक और उपदेशात्मक "वडावो" गीत गाए जाते हैं ।

विवाह के बाद मेहमानों को शादी का भोजन (वेतडू गोट दिनो) कराया जाता है । वधू के घर में लोगों को भांग, घोटा (मादक पदार्थ) और "वाया,गोट" (मांसाहार) आदि दिया जाता है । ब्याह का समारोह तीन - चार दिन तक चलता

ही रहता है । तांडे की स्त्रियाँ गीत गाकर प्रसन्नता एवं चुहल भरी गतिविधियाँ करती हैं । विशेष वाद्यों के साथ समूह नृत्य भी होते हैं । मदिरा और मांसाहार निस्संकोच भाव से चलते हैं ।

दूल्हा (वेताड़ू या नवलेरी) और दूल्हन (गेरिणी या लेरिणी) की विशेष परंपरागत वेशभूषा रहती है ।

बंजारों की सत्ताइस उपनामीय एवं सत्रह उपजातियों में विवाह की यही विधि पाली जाती है । हिंदू विवाह पध्दति से इनकी पध्दति पृथक है ।

मृत्यु संस्कार

बंजारों के मृत्यु संस्कारों में भी वैशिष्ट्य है । मृतक को भूमि में खाई खोदकर दक्षिणोत्तर - सिर दक्षिण की ओर और पैर उत्तर की ओर - गाडा जाता है । कभी कभी उसका दाह संस्कार भी किया जाता है ।

शव यात्रा के आगे मृतक का लडका या कोई रिश्तेदार मिट्टी का घट हाथ में लेकर चलता है । परंपरागत वाद्यों को बजाते हुए शव-यात्रा नदी किनारे पहुँचती है । शव को संस्कार के साथ भूमि पर रखा जाता है । गाडना हो तो खाई खोदी जाती है और जलाना हो तो लकडियाँ, उपले आदि एकत्र किए जाते हैं । जलाए जाने पर शवयात्रा में आए हुए लोग हाथ में लाठी लेकर उससे मृतक के मस्तक का सात बार स्पर्श करते हैं और मृतात्मा से प्रार्थना करते हैं । शव पूर्णत: दग्ध हो जाने पर वे सब घर लौट कर अपने पैर धोते हैं । अर्थी ढोनेवाले स्नान करते हैं । सभी शव-यात्रियों के नखों पर पानी का सिंचन किया जाता है । मृतात्मा की शांति के लिए चावल की खीर आदि पदार्थ तांडे के बाहर रख दिए जाते हैं । इस दिन मृतक के घर भोजन नहीं बनाया जाता है । पडोसियों के यहाँ से रिश्तेदारों के लिए भोजन आता है ।

मृत्यु के तीसरे दिन मृतक का शोक मनाया जाता है । इस दिन तांडे के बाहर के कुआँ या नदी के किनारे चावल की खीर आदि बनाए जाते हैं । मृतक की राख एक घडे में इकठ्ठी कर ली जाती है । जहाँ मृतक को गाडा या जलाया गया है,वहाँ इस बात की खोज की जाती है कि भूमि पर किस प्राणी का पद-चिह्न अंकित हुआ है । यह विश्वास किया जाता है कि भूमि पर जिस प्राणी का पद चिह्न अंकित होता है, मृतात्मा उसी योनि में शरीर धारण करती है । दाह संस्कार स्थल से घर लौटने पर बकरा काटकर तांडे को खिलाया जाता है । मृत्यु के दसवें दिन मृतक की पत्नी अपने सौभाग्य सूचक गहने आदि उतार देती है ।

त्योहार -

बंजारों के वर्ष केवल ३ त्योहार आते हैं। दवाली (दीपावली) होलो या होली और तीज। किंतु इन तीनों त्योहारों पर उनके हृदय की प्रसन्नता एवं उल्लास छलके पड़ते हैं।

दीपावली (दवाली)

" दवाली " बंजारों का विशेषतः लडकियों का प्रमुख त्योहार है। लक्ष्मी पूजन का रिवाज इनमें नहीं है। इसके साथ ही अमावस्या के दिन कुमारी कन्याएँ एकत्रित होकर " मेरा करेरो " (आरती उतारने का) का उत्सव मनाती हैं। इस अमावस्या को " काली अमावस्या " कहते हैं। इस दिन मीठे पदार्थों के स्थान पर बकरा काटकर उसका मांस पकाया जाता है। प्रातः काल तांडे की कुमारियाँ गीत गाते हुए खेतों में जाती हैं और वहीसे विविध फूल तोडकर मेरा गीत गाते हुए घर वापस आती हैं। तांडे में वापस आकर सर्वप्रथम वे तांडा नायक के घर जाकर उसकी आरती उतारती हैं और बदले में दान लेती हैं। इसके बाद वे तांडे के प्रत्येक घर में जाकर उनके और उनके पूर्वजों के नाम लेकर उनकी स्तुति में गीत गाते हुए, उन्हें बधाई देते हुए आरती उतारती हैं। यही क्रम रात भर चलता है। इस उत्सव का उद्देश्य बडों के प्रति आदर भाव एवं छोटों के प्रति स्नेह ममत्व का विकास करना जान पडता है।

इसी दिन लडकियाँ गोबर की पाँच मूर्तियाँ बनाकर गीत गाते हुए गोवर्धनपूजा (गोदण पूजेरो) करती हैं। संध्या के समय गोबर की मूर्तियों की पूजा आरती उतारकर (मेरा करेरो) की जाती है। आरती के दीप रातभर जलते रहते हैं। रात्रि में इन लडकियों को तांडा नायक के यहाँ मीठा भोजन कराया जाता है।

दीपावली के दूसरे दिन विवाह योग्य लडकियाँ " डोक डोकरान धक्कारो" - पूर्वज पूजा करती हैं। इस अवसर पर गेहूँ, बाजरा आदि पदार्थों की लापसी तथा भात बनाकर चूल्हे की अग्नि को इन पदार्थों का भोग लगाते हैं और पूर्वजों की आत्मा को शांति प्रदान करते हैं। इसे " डोक डोकरान धक्कारो देरो " कहते हैं। दीवाली के तीसरे दिन भैया दूज मनाने की प्रथा इनमें नहीं है। इस प्रकार ये अपने विशिष्ट ढंग से केवल २ दिन दीवाली मनाते हैं।

होली

जिस दिन सब लोग होली जलाते हैं, उस दिन ये होली नहीं जलाते। फागुन

शुक्ल पक्ष की पूनम की रात को ये घास, लकडी उपले आदि एकत्र करते हैं। तांडे के करीब के गांव में जाकर जलाई हुई होलियों में से उपले ले आते हैं। प्रत्येक होली से पाँच उपले लेते हैं। होली के दूसरे दिन बहुत सबेरे ये होली जलाते हैं। इसे वे "काम पूजेरो " (काम पूजा) कहते हैं। होली के चारों ओर स्त्री और पुरूष हर्ष और उल्लास के साथ " लेंगी नृत्य " करते हैं।" गेरिया "(अविवाहित लडके) और " गेरानी " (अविवाहित लडकियाँ) विशिष्ट वाद्यों के साथ " लेंगी नृत्य " अथवा " वंजाणा नृत्य " करते हैं। नृत्य गीत के बाद एक दूसरे पर रंग डालते हैं। देवर - भाभी के रिश्तों में छेड छाड भी चलती है।

होली जलाने के पूर्व दो " गेरिया " पाँच हाथ लंबा एरंडी का पौधा जड से उखाडकर लाते हैं। उस पौधे से एक वस्त्र में पूरियाँ बाँध कर उसे होली के मध्य में गाड देते हैं। होली में अग्नि प्रज्ज्वलित करने के बाद एरंडी के पौधे को उखाडकर पास के नाले में फेंक देते हैं और वस्त्र तथा पूरियाँ निकालकर होली के पास आते हैं। भीगे हुए वस्त्र के पानी से होली का सिंचन करते हैं तथा पूरियाँ का अर्घ्य उसे अर्पित करके सात बार प्रदक्षिणा करते हैं। यह क्रिया होली की तृषा शांत करने के लिए है।

इसके बाद दो जवान लडके उस वस्त्र (छाटिया) को अपने माथे पर बांध लेते हैं ये होली के सम्माननीय जवान (गेरिया दांडो काढे बाल) माने जाते हैं। दिन भर नृत्य गीतों के साथ होली का त्योहार मनाया जाता है। संध्या के समय होली की राख मुठ्ठी में भरकर गीत गाते हुए लोग अपने तांडे की ओर लौटते हैं। तांडे के देवताओं को होली की राख का तिलक लगाकर उनके दर्शन करते हैं। इसके बाद तांडा नायक और बुजुर्ग लोगों के माथे पर टीका लगा कर उन्हें प्रणाम करते हुए पूरे तांडे में घूमते हैं। अंत में अपने अपने घर जाकर स्नान करते हैं।

स्नान के बाद " छोरान घूंडेरो " (नामकरण या बरही) समारोह मनाने के लिए लडके के घर पर एकत्र होते हैं। इस समारोह का वर्णन हम पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं। इस अवसर पर जब पुरूष गीत गाते हैं तब स्त्रियाँ उन्हें मारती भी हैं।

बरही - समारोह के उपरान्त डेरे के सामने के आँगन में दो खंभों पर लटकाए गए लपसी के बर्तन के पास स्त्री-पुरूष इकठ्ठे होते हैं। पुरूष इस बरतन को प्राप्त करने की कोशिश करते हैं, जब कि स्त्रियाँ उन्हें आगे जाने से रोकती है। पुरूषों को स्त्रियाँ मार मारकर पीछे की ओर ढकेलती हैं। अंत में पुरूषों की जीत होती है। यह जीत वीरता का चिह्न मानी जाती है। इसे " खेला ककडेरो " कहते हैं।

इसके उपरांत स्त्रियाँ अपने हाथों में गेहूँ के आटे से बने " गुंजा " बलपूर्वक पकड लेती हैं। उन्हें छीनने के लिए पुरूष कोशिश करते हैं। पुरूष उसे छीन कर खा लेते हैं।

इस प्रकार हर्ष और उल्लास के साथ यह समारोह संध्या तक चलता रहता है। संध्या में तांडे का सामूहिक भोजन होता है। इसके दूसरे दिन दीवाली के अवसर पर मनाया जानेवाला " पितृपूजा" (पूर्वजों की पूजा) का समारोह किया जाता है। तीसरे दिन " गेर धूंडेरो " (होली का सम्माननीय युवक) के निर्णय का समारोह होता है। इस समारोह के अवसर पर सभी स्त्री-पुरूष शृंगारिक गीत गाते हुए तन्मय होकर " लेंगी नृत्य " करते हैं। होली के अवसर पर गाए जानेवाले गीत प्राय: शृंगारिक होते हैं। कई गीतों में अश्लीलता और वीभत्सता का भी पुट होता है।

रंगोत्सव फाग

बंजारे होली के तीसरे दिन " फाग " मनाते हैं। तांडे के तमाम स्त्री-पुरूष एक दूसरों पर रंग उडाते हुए " फागेर " गीत गाते हैं और " फागेर नृत्य " करते हैं। कहीं कहीं रंग के बदले गोबर के घोल से खेलते हैं। होली और फाग में आसपास के छोटे छोटे तांडों से भी लोग आकर हिस्सा लेते हैं। फाग के बाद " होली र पोस" (होली की खुशी) माँगने के लिए थाली लेकर आसपास के तांडों में घूमकर पैसे एकत्र किए जाते हैं और उन पैसों से बकरा, शराब, ताडी आदि खरीदते हैं। तांडे के हर घर में कटे हुए बकरे के हिस्से भेजते हैं। इसे " गेर करेरो " कहते हैं।" गेर करेरो " के साथ होली उत्सव की समाप्ति हो जाती है।

तीज

बंजारे "तीज " का त्योहार सावन या भादों में मनाते हैं, लेकिन नियमित रूप से प्रतिवर्ष नहीं। जब आर्थिक दशा अच्छी होती है और प्रसन्नता का वातावरण रहता है तभी यह त्यौहार मनाया जाता है। त्यौहार मनाने के लिए तांडा नायक और पंचों की अनुमति लेनी पडती है। अनुमति मिलने पर जोरशोर से तैयारियाँ शुरू की जाती हैं।

यह त्यौहार दस दिन तक चलता ही रहता है। इस अवसर पर विवाह योग्य कुमारियों को विवाहयोग्य कुमारों की ओर से भेंट दी जाती है। भेंट को अनुरक्ति का चिह्न माना जाता है। अपनी प्रिय लडकी को ही लडका भेंट देता है। यदि लडकी

भेंट स्वीकार कर ले तो उनकी शादी उसी वर्ष हो जाती है।

इसी अवसर पर कुमारियाँ अन्य त्यौहारों, उत्सवों तथा समारोहों के समय गाने के लिए मनोरंजक गीत, नृत्य, वीरों की साहस कथाएँ, पहेलियाँ आदि सांस्कृतिक बातें प्रौढ स्त्रियों से सीखती हैं। लडके भी गीत, वाद्य और नृत्य सीखते हैं।

तीज के पहले दिन लडकियाँ गमले में बाँबी की मिट्टी भरकर उसमें गेहूँ के दाने बो देती है। सात दिन तक नियमित रूप से पौधों के विकसित होने के लिए जल सिंचन किया जाता है। सातवें दिन " घामोली " उत्सव मनाया जाता है और नवमें दिन लडके और लडकियाँ मिलकर बांबी की मिट्टी से " गणगोर " (मिट्टी की गुडिया) बनाते हैं और उन गुडियों को बंजारा समाज में प्रचलित किस्म के वस्त्र पहनाए जाते हैं। हरे भरे पौधों से युक्त गमले के चारों ओर गुडियों को सजाकर रख दिया जाता है। लडकियाँ रात भर गीत गा गा कर वर्तुलाकार नृत्य करती हैं।

इस त्यौहार के दसवें दिन को " तीज " कहते हैं। इस दिन गेहूँ के पौधे उखाडकर कर तांडे के प्रौढ लोगों को आदर भाव एवं प्रेम प्रतीक के रूप में पौधों की एक दो गड्डियाँ दी जाती हैं। इस भेंट को प्रौढ जन आगामी तीज तक सुरक्षित रखते हैं। दसवें दिन संध्या को " गणगौर " पास के नाले या जलाशय में विसर्जित कर दी जाती है। इसके बाद लडके लडकियाँ शक्ति परीक्षा का एक खेल खेलती हैं, जिसे " पीडिया खास्येरो " कहते हैं। दस दिन तक हर्ष उल्लास के साथ यह समारोह चलता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. बनजारा : अखिल भा.बंजारा सम्मेलन के अवसर पर प्रस्तुत अंक,१९६३, उदयपुर,राजस्थान, पृ.१४-९५।

२. Thurstone,E: The Castes and Tribes of Southern India, Vol.N.pp.225-26.

३. Hassan,S.S.: The Castes and Tribes of H.E.H.p.24.

४. Census of India, 1961, Vol.II, Andhra Pradesh,Part VI, pp.23-24.

५. March of India, Vol.9, No.3, March,1957, p.36.

६. Thursten E.: The Castes and Tribes of Southern India, Madras,1909, Madras,Vol.IV, p.236.

७. To day I passed through another Banjara hamlet - were I was mostly honoured by a Banjara woman",-Dr.Ball : Jungle life in India, p.514.

८. डा.सत्येन्द्र : लोक साहित्य विज्ञान,पृ.३९६ ।

९. डा.सांकृत्यायन राहुल: गंगापुरातत्वांक,पृ.२९४ ।

10. Frazer, J.C. : Golden Bough, P. 52.

: बंजारा : लोकगीत और लोकगीतों का वर्गीकरण :

बंजारा : लोकगीत और लोकगीतों का वर्गीकरण

विषय प्रवेश

लोकगीत लोकजीवन तथा लोक संस्कृति का दर्पण होते हैं। लोकगीतों का मूल स्रोत लोकमानस में होने के कारण सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास लोकगीतों में ही प्राप्त होता है। साहित्य की रचना सुख-दुख के झूले पर निरंतर आन्दोलित होते रहनेवाले मन को सांत्वना देने के लिए की जाती है। लोकगीत उस समूह विशेष के सुख दुख के साथी होते हैं। सभ्यता की प्रगति, विज्ञान की चकाचौंध एवं आधुनिकता के आगमन से भी लोक गीत मिट नहीं पाए हैं। इनकी परंपरा मौखिक होती है। पिता से पुत्र, माँ से बेटी तथा सास से बहू को यह परंपरा हस्तांतरित की जाती है। इसके रचयिता अज्ञात हैं। इनकी भाषा सरल, सुबोध, रससिक्त एवं प्रवाहमयी होती है। इसमें रचयिताओं की अनुभूतियाँ निश्छल भाव से व्यक्त हुई हैं।

बंजारा लोकगीत जीवन के प्रत्येक पक्ष का स्पर्श करते हैं। इनके अनुशीलन के द्वारा हम उनके जीवन के बहुत निकट से दर्शन कर सकते हैं। इन गीतों को प्रमुख रूप से निम्नलिखित वर्गों में रखा जा सकता है --

१. संस्कारों के गीत। २. पारिवारिक जीवन के गीत।
३. व्यवसाय संबंधी तथा श्रम-परिहार के गीत।
४. शृंगार और भक्ति तथा विविध विषयों के गीत।

१. संस्कारों की दृष्टि से बंजारा लोकगीतों का वर्गीकरण

हमारे यहाँ के जन-जीवन में संस्कारों का मूल स्रोत धर्म रहा है। मनुष्य के जन्म से मृत्यु तक की सारी विधियाँ परंपरागत एवं शास्त्र सम्मत षोडश-संस्कारों से सन्निविष्ट होती हैं। गर्भाधान, पुंसवन, पुत्र-जन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह, गौना एवं मृत्यु मानव-जीवन के उल्लेखनीय तथा महत्वपूर्ण संस्कार हैं। इन विविध प्रसंगों पर उनके अनुरूप भावभंगियों के साथ स्त्रियाँ कोमल कंठों से मधुर गीत गाती हैं। जन्म-विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर हर्ष प्रसन्नतायुक्त मांगलिक गीत गाए जाते हैं, किन्तु मृत्यु के हृदय-विदारक प्रसंग पर शोकपूर्ण करुण गीत गाए जाते हैं।

संस्कार गीतों को निम्न प्रमुख वर्गों में रख सकते हैं -

१. पुत्र जन्म के गीत। २. विवाह के गीत। ३. मृत्यु - गीत।

पुत्र जन्म के गीतों को अन्य उप वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है --

(अ) सोहरगीत (पेदोवेयेती आंग गीद)

(ब) पुत्रजन्मोत्सव गीत (केकल्यों अथवा नाथरो गीद)

(स) छठी माता के गीत (दळ्वा घोकेरो गीद)

(ड) बरही गीत (छोरान् घूंडेरो गीद)

(इ) मुण्डन के गीत (लटलेरो गीद)

अब इनमें से प्रत्येक के संबंध में संक्षिप्त जानकारी दी जाएगी, ताकि आगे विस्तृत अनुशीलन में सहायता मिल सके --

(अ) सोहर गीत: (पेदोवेयेती आंग गीद)

सोहर गीत पुत्र जन्म के पूर्व से उसके बाद तक गाए जाते हैं। इन गीतों में भारतीय नारी की संतान संबंधी विभिन्न आशा-आकांक्षाओं की बडी मार्मिक व्यंजना मिलती है। घुमन्तू जाति होने के कारण बंजारों को उत्कट आनंद के प्रसंग बहुत कम प्राप्त होते हैं। अतएव पुत्र-प्राप्ति का प्रसंग उनके लिए सर्वाधिक सुखद है। इस अवसर पर गीत के साथ नृत्य भी होते हैं।

(ब) पुत्र जन्मोत्सव गीत (केकल्यो अथवा नाथरो गीद)

शिशु का जन्म परमानंद प्राप्ति का कारण होता है। इस अवसर पर पुंसवन विधि की जाती है जिसका उद्देश्य यह कामना प्रकट करना है कि स्त्री पुत्र को जन्म दे, पुत्री को नहीं। पुत्र पैदा होने पर बंजारा टाँडे में ढोल बजाया जाता है, जिससे पुत्र-जन्म की मौन घोषणा हो जाती है। पुत्री के जन्म पर ढोल नहीं बजाया जाता। ढोल ध्वनि सुनकर तांडे की स्त्रियाँ सूतिका के घरके आँगन में इकट्ठा होती हैं, तथा जन्मोत्सव के गीत गाकर नृत्य करती हैं।

(क) छठी माता के गीत : (दळ्वा घोकेरो गीद)

उत्तर भारत में कार्तिक शुक्ल षष्ठी के दिन छठ पूजा होती है। इसका उद्देश्य पुत्र प्राप्ति एवं उसके दीर्घायुष्य की कामना प्रकट करना है। वंध्या स्त्री भी पुत्र-प्राप्ति की कामना से भगवान सूर्यनारायण की प्रार्थना करती है।[1]

इस दिन छठी माता के चित्र के साथ अन्य देवी देवताओंकी प्रतिमाएँ भी दीवार पर चित्रित की जाती हैं। दुष्टात्माओं से रक्षा हेतु रात भर दीपक जलाकर जागरण किया जाता है।

बंजारों में पुत्र जन्म के तीसरे या पांचवें दिन यह संस्कार किया जाता है। इसे " जळ्वा घोकेरो " कहते हैं। इस संस्कार के बाद सूतिका पवित्र हो जाती है और

घर का काम करने लग सकती है।

इस अवसर पर सूतिका के घर तांडे के स्त्री-पुरुषों, बच्चों - बूढों सभी को आमंत्रित किया जाता है और सामूहिक भोजन कराया जाता है जिसे "छटीर खाणू " (छठी देवी का भोजन) कहते हैं। भोजन के उपरांत तांडा नायक की पत्नी एवं अन्य महिलाएँ विशेषत: वृध्दाएँ वेमला माता की प्रार्थना करती हैं।

(ड) बरही नामकरण के गीत (छोरान धूंडेरो गीद)

बंजारा - समाज में पुत्र का बरही संस्कार होली-पूजन के अवसर पर किया जाता है, जिसे " छोरान - धूंडेरो " कहते हैं। होली पूजन के उपरांत तांडे में बरही-भोजन (धुंडेर खाणू) होता है। संध्या समय पुत्र को होली के पास ले जाकर उसकी प्रदक्षिणा करते हुए गीत गाए जाते हैं।

(इ) मुण्डन के गीत (लटटलेरो गीद)

मुंडन या चूडा कर्म संस्कार षोडश संस्कारों में से एक है एवं महत्त्वपूर्ण है। जन्म के बाद से इस अवसर पर सर्वप्रथम बालक के केश काटे जाते हैं। यह संस्कार किसी पवित्र तीर्थस्थान, देवस्थान या नदी किनारे किया जाता है।

बंजारों में " मुंडन " को " लटू लेरो " कहते हैं जो जन्म के पांचवें या सातवें महीने में किया जाता है। भूतकाल में यदि इस अवसर पर कुल की कोई स्त्री सती हो गई हो तो उसकी स्मृति में प्रसाद बनाकर समस्त तांडे में वितरित किया जाता है। साथ ही गीत नृत्य के साथ हर्षोल्लास प्रकट किया जाता है।

विवाह के गीत

विवाह की पवित्रता तथा सामाजिकता सिद्ध करने के लिए इस अवसर पर विविध शास्त्रीय एवं परंपरागत विधानों की व्यवस्था की गई है। स्थान भेद से इनमें अनेक रूपता भी मिलती है।

जैसा हम पहले लिख आए हैं कि घूमन्तु जाति होने के कारण हर्षोल्लास के अवसर बंजारों के जीवन में बहुत कम होते हैं। अतएव ब्याह-समारोह को आनन्दोत्सव के रूप में मनाकर हार्दिक प्रसन्नता को प्राप्त किया जाता है। पहले यह समारोह आठ दिन से लेकर तीन महीनों तक चला करता था किन्तु आज तीन दिनों में ही इसे समाप्त कर दिया जाता है। ब्याह रात में होते हैं।

कन्या एवं वर दोनों के यहाँ इस अवसर पर गीत गाए जाते हैं। प्राय: दोनों

पक्षों के गीत समान होते हैं लेकिन वर पक्ष के गीतों में आनंद एवं प्रसन्नता की मात्रा अधिक होती है जबकि कन्या पक्ष के गीतों में करुणा की मंदाकिनी प्रवाहित होती है। इस अवसर पर तांडे की अनुभवी स्त्रियाँ भावी वधू को " धवलो गीद " (शोक तथा वियोग के गीत) गाने की विधि सिखाती हैं। यह प्रशिक्षण विवाह के पूर्व से शुरू होकर कन्या की विदाई के पूर्व तक चलता रहता है। " धवलो " एवं " हवेली" गीत बड़े ही भावात्मक एवं करुण होते हैं, जिनमें दुल्हन की व्यथा, नेहर-प्रेम तथा माता-पिता के प्रति कृतज्ञता के भावों की निश्छल अभिव्यक्ति होती है। बंजारा ब्याह-गीतों में करुणा का स्वर अधिक तीव्र होता है।

ब्याह के गीतों को दो वर्गों में रखा जा सकता है --

(क) वर पक्ष के गीत :

(१) तिलक या सगुन के गीत (सगाई या गोल गीद)

(२) पराती गीत (परभाती टीको गीद)

(३) विवाह के सामान्य गीत (वडाई डाग गीद, नकता गीद)

(४) वर-बिदाई के गीत (वेतूड रे तांडो गीद)

(ख) कन्या पक्ष के गीत

(१) तिलक या लगुन के गीत (परभाती टीका लगाऊ गीद)

(२) हलदी के गीत (हलदी लगाऊ गीद)

(३) नहछू नहान के गीत (हंगुळी गीद)

(४) माडो गाडने के गीत (मांद जनार गीद)

(५) मेंहदी के गीत (मेंदी जनार गीद)

(६) चूडी पहनने के गीत (चूडो तीय जनारो गीद)

(७) वस्त्र परिधान के गीत (साडी ताणेरो गीद)

(८) द्वारचार या अगवानी गीत (वेतडू रे गीद)

ब्याह के परिहास गीत (हास गीद)

(१०) भाँवर के गीत (फेरो गीद)

(११) कन्या की बिदाई के गीत (ढावलो, हवेली, मलालो)

के गीत

मृत्यु हो जाने पर शोक, पीडा एवं करुणा की अभि व्यक्ति गीतों के माध्यम से की जाती है। इन गीतों में आध्यात्मिक भाव भी निहित रहता है।

बंजारों मे मृतक यदि बूढा हो तो उसे गाडा जाता है तथा वह यदि युवक हो तो उसे जलाया जाता है । मृत्यु के तीसरे दिन " श्राद्ध " की जाती है जिसे " कोड्या" कहते हैं । इनका विश्वास है कि मृतक देवता में विलीन हो जाता है, इसलिए ये मृतात्मा की प्रार्थना करते है ।

(२) व्रत-त्योहार, अनुष्ठानों केगीत

भारतीय लोक-जीवन में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसकी वजह से विभिन्न व्रत, उत्सव, अनुष्ठान, त्यौहार आदि मनाए जाते हैं । इन व्रत - अनुष्ठानों से संबंधित बंजारा-गीतों को निम्न वर्गों में रख सकते हैं -

(अ) देवी - देवताओं के गीत । (ब) व्रत-उपासना संबंधी गीत ।

(स) उत्सव पर्व संबंधी गीत ।

(अ) देवी देवताओं के गीत

बंजारे शिव-पार्वती, राम-सीता, कृष्ण, गणेश, भैरव, हनुमान, भवानी माता एवं दुर्गादेवी के साथ ही मरिअम्मा, दुर्गम्मा, वीर मास्तेम्मा, मसूर भवानी, मंथराल भवानी, बागी भवानी आदि देवी देवताओं की उपासना करते हैं । इस उपासना के पीछे मनोकामना पूर्ति की लालसा तथा भय का मिला जुला भाव कार्य करता है । इन देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिए परंपरागत गीत विभिन्न अवसरों पर गाए जाते हैं ।

(ब) व्रत उपासना संबंधी गीत

छठी माता, तीज, पिडिया आदि के अवसरों पर जो गीत गाए जाते है, उन्हें इस वर्ग में रखा जाएगा ।

(स) उत्सव पर्व संबंधी गीत

जीवन की एकरसता एवं थकान को उतारने के लिए लोक-जीवन में त्यौहारों का विधान किया गया है । भारत में हिंदू लोग मुख्यत: दीवाली, दशहरा एवं होली का त्यौहार घूमधाम के साथ मनाते हैं । बंजारा त्यौहारों की संख्या सीमित है । (दीपावली),होली,फाग आदि इनके त्यौहार हैं । इन सीमित त्यौहारों को वे असीमित हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं ।

(३) पारिवारिक जीवन के गीत

मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण परिवार में रहकर ही होता है । परिवार में स्नेहपूर्ण अनेकों संबंध होते हैं । इन संबंधों से जुडी भावनाओं को प्रकट करनेवाले गीतों

को इस वर्ग में रखा जाएगा । पारिवारिक जीवन की गाथा का गायन इन गीतों का उद्देश्य होता है । पर के आकर्षण का केन्द्र नवजात शिशु होता है । उसे सुलाने के लिए " लोरी" और पालने के गीत गाए जाते हैं ।

पति-पत्नी की मान-मनोबल,छेडछाड आदि को भी गीतों में प्रकट किया गया है । एक विशेष बात यह है कि बंजारा प्रणय-गीतों में अवैध प्रणय को कोई महत्व नहीं दिया गया है, जो उनके स्वस्थ यौन संबंधों एवं उच्च नैतिक मूल्यों का द्योतक है ।

(४) धार्मिक गीत

बंजारा समाज भारतीय आध्यात्मिक मूल्यों से जुडा होने के कारण उसके जीवन में भी उच्च स्तरीय शिखर हैं । गुरु की महिमा, आध्यात्मिक चिंतन तथा ईश्वरीय प्रेम के गीत भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं ।

(५) व्यवसाय तथा श्रम-परिहार के गीत

व्यवसाय के संबंध में गाए जानेवाले गीत व्यवसाय गीत कहलाते हैं । प्रत्येक जाति के व्यवसाय भिन्न भिन्न होने के कारण इन गीतों में भी भिन्नता होती है । कार्य करते समय श्रम परिहार हेतु भी गीत गाए जाते हैं । प्राचीन काल में बंजारों के वाणिज्य कर्म से संबंधित होने के कारण व्यवसाय संबंधी गीतों में पर्याप्त वैविध्य दीख पडता है । इन गीतों को पाँच उपवर्गों में विभाजित कर सकते हैं -

(अ) जँतसार के गीत

गेहूँ या किसी भी अनाज को पीसने के समय जो गीत गाए जाते हैं, उन्हें जँतसार के गीत कहते हैं । इनका उद्देश्य श्रम परिहार ही है । इन गीतों में नववधू की विरहव्यथा विधवा का करुण क्रंदन तथा पुत्र-स्नेह की भावनाएँ अभिव्यक्त होती हैं । करुणा का स्वर सभी में व्याप्त होता है ।

(ब) कृषि-कार्य विषयक गीत

विविध कृषि कार्यों - धान रोपना,फसल काटना,घास निराना,मिर्च तोडना - के अवसर पर गाए जानेवाले इन गीतों में दाम्पत्य प्रेम की व्यंजना होती है ।

(क) श्रम-परिहार के विविध गीत

साहूकारों की चपेट में बंजारा समाज भी आता रहा है । उनके प्रति रोष एवं घृणा का होना स्वाभाविक है । इन गीतों में शोषण की निंदा तथा सूदखोरों पर कटाक्ष किए गए हैं । मानसिक यातना के चित्रण के साथ ही कर्ज की ओर न जाने की चेतावनी भी मिलती है ।

(इ) हास्य और व्यंग्य के गीत

विचित्र वेशभूषा, आचरण आदि को हास्य का आलंबन माना जाता है। हास परिहास उत्पन्न कर जीवन को सुखमय बनानेवाले ऐसे गीतों की संख्या भी कम नहीं है।

(६) शृंगार और भक्ति तथा विविध विषयों के गीत

ऊपर हम जिन विषयों की चर्चा कर आए हैं, उनके अतिरिक्त भी ऐसे कई पक्ष हैं जिनसे संबंधित गीत उपलब्ध हैं। उन्हें सुविधा के लिए निम्न उप-विभागों में रख सकते हैं।

(अ) आधुनिक सामाजिक एवं राष्ट्रीय विचारधारा के गीत

सामाजिक एवं राष्ट्रीय परिवर्तनों से लोकगीत भी बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं। बंजारा लोकगीतों पर भी इनका प्रभाव परिलक्षित होता है। इन गीतों में गांधी, नेहरू आदि नेताओं का गौरव के साथ उल्लेख किया गया है।

(ब) मदिरापान संबंधी गीत

प्रत्येक समाज में कुछ दुर्गुण होते हैं जिज्ञासा-पूर्ति एवं क्षणिक सुख की लालसा से अपनाए गए कुछ व्यसन जीवन को नष्ट कर देते हैं। बंजारा समाज में यह दुर्गुण आम है। इन गीतों में इस बुराई से विरक्त करने की चेष्टा दिखाई पडती है।

(क) शिकार संबंधी गीत

शिकार जैसे प्रसंगों संबंधी भी गीत बंजारा लोक साहित्य में प्राप्त होते हैं।

(ड) ज्ञान विज्ञान का महत्त्व संबंधी गीत

ज्ञान-विज्ञान के संबंध में प्रशंसात्मक उद्गारों के गीत इनमें सम्मिलित हैं।

(इ) हास्य-गीत

परिश्रमी बंजारा समाज के जीवन में विशिष्ट अवसरों पर हास, परिहास, व्यंग्य-विनोद के द्वारा हास्य रस-धारा इन गीतों के माध्यम से प्रवाहित होती है।

प्रथम खंड

संस्कार गीत

बंजारा : संस्कार - गीत

बंजारा संस्कृति भारतीय संस्कृति की विशेषताओं को परंपरा से अपनाती हुई चली आ रही है । भारतीय संस्कृति में धर्म का स्थान प्रमुख है । धर्म ही लोक जीवन का प्राण है । धर्ममय जीवन में विविध संस्कारों का बड़ा ही महत्त्व है । जन्म से लेकर मृत्यु तक हमारा सम्पूर्ण जीवन संस्कारमय है । मनुष्य जीवन के विकास का प्रथम सोपान है संस्कार । संस्कार का साधारण अर्थ है किसी वस्तु को ऐसा रूप देना, जिसके द्वारा वह अधिक उपयोगी बन जाए।[1] मनु-याज्ञवल्क्य और धर्मसूत्रकार विष्णु के अनुसार गर्भाधान से अन्त्येष्ठि तक सोलह संस्कार हैं । गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तो-न्नयन, विष्णु बलि, जात कर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन, चार वेदव्रत, समावर्तन और विवाह - इस प्रकार धर्मशास्त्रों में संस्कारों की संख्या बहुमत से सोलह मानी गई है । जन्म के पूर्व भी संस्कारों की स्थापना कर भारतीय मनीषियों ने अपनी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है ।

बंजारा लोकगीतों में संस्कार संबंधी गीतों की संख्या ही सबसे अधिक है । घुमन्तू जाति होने के कारण तथा नगरों के बाहर ही डेरा डालकर रहने के कारण नगर निवासियों की अपेक्षा इस पर धार्मिक भावनाओं का प्राधान्य एवं प्राबल्य है । इसके साथ ही इनकी अधिकता एवं प्राधान्य का कारण इनका लोक मानस के उत्साह एवं आनंद से परिपूर्ण होना है ।

सोहर के गीत (तांडेरी गीद)

मनुष्य जीवन में जन्म सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रसंग होता है । पुत्रेच्छा तथा पुत्र प्राप्ति लोक-जीवन में एक स्वाभाविक इच्छा है । भारतीय जनमानस में पुत्र प्राप्ति को एक महत्त्वपूर्ण पवित्र तथा धार्मिक विधान मानाजाता है । "आत्मावै जायेते पुत्रः " के अनुसार मनुष्य स्वयं पुत्र रूप में उत्पन्न होता है ।"[2]

भारतीय संस्कृति में नारी जीवन की महत्ता तथा पूर्णता मातृत्व भाव में निहित है । माता बनकर कुल का उज्ज्वल करनेवाले पुत्र को जन्म देकर वह स्वयं को भाग्य विधात्री मानती है । इसीलिए भारतीय जन-जीवन ने गर्भाधान से लेकर पुत्र जन्म तक विविध गीतों एवं समारोहों की योजना कर इसकी महत्ता को स्वीकार किया है । इन गीतों में नारी मन की विभिन्न आकांक्षाओं, स्वप्नों तथा अभिलाषाओं की यथावत् अभिव्यक्ति हुई है ।

पुत्र जन्मोत्सव के अवसर पर गाए जानेवाले गीतों को सोहर के गीत कहते हैं। इन गीतों के अन्तर्गत मानव जीवन के विविध भाव व्यापार आ जाते हैं। स्त्री-पुरुष के मिलन-प्रसंग से लेकर पुत्रोत्पत्ति तथा उसके उपरांत के विविध प्रसंग इन गीतों में निहित हैं।

गर्भाधान -

सोहर गीतों का प्रारंभ गर्भाधान या पुंसवन विधि से होता है। बंजारा जाति राजपूत-वंशी होनेके कारण युद्ध के लिए उपयोगी पुत्र को जन्म देनेवाली माता की प्रतिष्ठा समाज में बहुत ऊँची थी। यही आशा की जाती थी कि प्रत्येक स्त्री पुत्र को जन्म देगी, पुत्री को नही।[3] इसी परंपरा के अनुसार बंजारा स्त्रियां "वेमता" माता से विनती करती हैं --

" धरती रो मांडण मेलीया। वंशे रे मांडण सूत।
तनेरी मांडण तरीया। बापू री मांडण पूत।
जलम देस माता। सामंत सूर वीर।
नितो रीजो माता बांझाडी। मत गमाव जो मरवला रो नूर
वीर देस माता संमत सूर। परमुल खोपर काम स्धारे
तारो नाम राजा घरेस।"

(पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए मेघ जिस प्रकार से शोभा देते हैं, उसी प्रकार कुलश्रेष्ठ पुत्र वंश को शोभा देता है। हे आर्ये! ऐसा ही आदर्श पुत्र प्रदान कर जो शूर वीर सामंत हो।)

दोहद

गर्भाधान के पश्चात प्रत्येक स्त्री के मन में अनेक प्रकार की इच्छाएँ जाग्रत होती हैं इस अवसर पर बंजारा समाज में जो गीत गाए जाते हैं, उनमें यह मानकर चला जाता है कि पुत्र का जन्म हो गया है। ये गीत प्रश्नोत्तर अथवा संवाद-शैली में होते हैं --

पुरुष : कागदडियों किम गोतो, हाटेन कांई लायो।
झांजा, टोपी, केरसाइ, मोतीबाई साइ।

(अरे हे कागडियों, तू कहाँ गया था, बाजार में ? बाजार से क्या लाया ? टोपी ? किसके लिए ? मोतीबाई के लिए ? मोतीबाई को क्या हुआ ? लड़का ? इत्यादि)

स्त्री : मोरी बाई, रो बाळा हयोचये ।
घडी घडी मारो बवे बाईच ।
योई बाळान मोरची वेगीचये ।
जेरे सासरो वूणो ळागोच बाईच ।
(मेरी बहन को पुत्र हुआ है । वह घडी घडी रोता है । उसे नजर लगी है । किसी ज्ञानी को बुलाओ जो नजर झार दे ।)

इन गीतों में बंजारा जीवन की सरलता एवं स्वच्छंदता प्रकट हुई है । इन गीतों का रंग भडकीला नहीं है ।

पुत्र जन्मोत्सव -

बंजारा तांडे में किसी के यहाँ पुत्र पैदा होने पर जोर जोर से ढोल बजाकर पुत्र-जन्म की घोषणा की जाती है । यह वाद्य उद्घोष स्पष्ट कर देता है कि नवजात शिशु पुत्र ही है, पुत्री नहीं । आसपडोस की सभी प्रौढ स्त्रियाँ सूतिका-गृह के सामने आंगन में एकत्रित होकर पुत्र जन्मोत्सव समारोह (केकल्पो अथवा नाथरो) उमंग भरे गीत नृत्यों के साथ मनाती हैं ।

सुहागन स्त्रियाँ बालक को आशिषा देते हुए गाती हैं -

दीय मडोये नायरे धरती रो लेशाये,
जले रोये जायते जी अणादव दाव्य ।
तीन मडोये नारी धरती रो ळेशाये,जाल्ते जी अण दव दाव्ये ।
चार मडोये नाये धरती रो लेशाये, जाल्ते जी अणादवदाव्ये ।
पांच मडोये नाये धरतीरो लशाये, जाल्ते जी अणादवदाव्ये ।
(हे नूतन बालक ! दिन दिन तू बढता जा । तेरी कीर्ति निरंतर चारों ओर बढे । सब मिलकर इसकी आरती उतारो ।)

पुत्र जन्म के अवसर पर आनंद बधाइयों के साथ तांडे के लोग उल्लास प्रकट करते हैं । यदि पिता कहीं परदेश गया हो तो उसे संदेश भेजने की भी प्रथा है । तांडे का नाई (धाडी) यह शुभ-संदेश तुरंत उसके पास पहुँचा देता है । कहीं पुत्र के स्थान पर अगर पुत्री का जन्म हो जाय तो माता तथा तांडे के अन्य लोगों के मुख पर विषाद की गहरी रेखाएँ दिखाई देती हैं ।

छठी माता के गीत (दळ्वा धोकेयेरो गीद)

छठी देवी का संस्कार बंजारों में पुत्र-जन्म के तीसरे या पांचवे दिन मनाया जाता

है। यह उत्सव बडा ही महत्त्वपूर्ण होता है और इस " दळ्वा धोक्येरो " या " जलवा धोकेरो" कहते हैं। इस संस्कार के पश्चात माता पवित्र हो जाती है।

इस अवसर पर तांडे के आँगन में एक छोटी सी खाई खोदी जाती है। अपने सिर पर जल से भरे हुए सात कलश रखकर आँचल में गेहूँ के दाने भरे हुए उन्हें जमीन पर छींटते हुए बच्चे की माता घर की देहली से खाई तक जाती है और वहाँ पहुँचने पर बचे हुए गेहूँ के दाने खाई में डाल देती है। विवाहित स्त्रियाँ जच्चा के माथे पर से कलश उतारती हैं। इस समय कुमारियों को नवप्रसूता के पास नहीं आने दिया जाता। नवप्रसूता गुडमिश्रित गेहूँ के आटे का प्रसाद (कुल्लर) खाई में अर्पित करके प्रणाम करती है। अन्य स्त्रियाँ ज्वार के आटे से बने दीपकों से खाई की आरती उतारती हैं। इस अवसर पर स्त्रियाँ छठी माता का गीत गाती है --

वेमता हंसत हंसत आयेस, रोते रोते जायेस।
लेयो लावण लेन पर आयेस, सुवो सुतली लेन आयेस।
वेमता हालन फूलनर काडेस, सण ढेरो के आयेस
वेमता सुई डोरा लेन पारा जायेस।
सन सुतली सुवो लेन आयेस।

(हे वेमता माता ! इस अवसर पर हँसते हँसते पधारना और रोते हुए जाना। सुई और डोरा साथ लेकर यहाँ से जा और दुबारा आते समय सुंदर सुतली लाना न भूलना।)

इसके बाद खाई में डाले हुए गाय के गोबर में प्रसूति का बाँया अंगूठा सात बार डुबाकर कलशों का जल और आरती के दीपक खाई में डाल कर खाई मूँद दी जाती प्रसूति का पुन: अपने माथे पर कलश रखती है। जवान पुरुष इसमें उसकी सहायता करते हैं। प्रसूतिका के घर पहुँच ने पर छठी माता का प्रसाद (कुल्लर) बच्चों में वितरित करते हैं।

संध्या के समय समस्त तांडे के कुटुंबियों को आमंत्रित किया जाता है, विशेषत: पाँच लडकों को छठी माई का भोजन (चटीर खाणु) खिलाया जाता है। यदि लडका पैदा हुआ हो तो आगामी होली पूजन के दिन उसका नामकरण संस्कार किया जाता है। लडकी का नामकरण संस्कार कभी भी हो सकता है।

सामूहिक भोजन (चटीर खाणु) के बाद तॉडा नायक की पत्नी एवं अन्य महिलाएँ " वेमता माता " - छठी माता - की पूजा करती हैं। भारत में इस पूजा

की प्राचीन परंपरा है।"[8] इस अवसर पर गाए जानेवाले गीत में छठी माता की प्रार्थना रहती है --

वेमता सुई - डोरा लेन घारा जायेस।

सन सुतळी सुवो लेन घारा जायेस।

(हे वेमता माता, अभी तू कपास की डोरी एवं सुई के साथ विदा हो जा, जब तू फिर आएगी तब हम सब मिलकर सुतली- डोरा से तेरा स्वागत करेंगे।

इस गीत में लक्षणात्मक अर्थ यह है कि अगली बार प्रसूतिका को पुत्र हो, पुत्री नहीं, यह वर दे।

नामकरण - बरही के गीत (छोरान घुंडेरो गीद)

सोहर गीतों (तांडेरी गीद) के अन्तर्गत ही बरही के गीतों का अन्तर्भाव होता है, जो पुत्र-जन्म से लेकर इस संस्कार तक विविध प्रसंगों पर गाए जाते हैं।

बंजारा समाज में पुत्र का बरही संस्करण होली पूजन के अवसर पर किया जाता है, जिसे " छोरान घुंडेरो " कहते हैं।

बंजारों में बरही-संस्कार बडे ही मनोरंजक ढंग से किया जाता है। होली पूजन के पूर्व ही लडके का पिता बरही समारोह के संबंध में तांडा नायक के घर जाकर उसे सूचना देता है और उसकी अनुमति प्राप्त करके निश्चित समय पर घर के सामने कंबल का डेरा लगा देता है। इस अवसर पर लोग यथाशक्ति गेहूँ का आटा आदि देते हैं। रात के समय तांडे की समस्त स्त्रियाँ इकट्ठा होकर रसोई बनाती हैं। दूसरे दिन बरही समारोह के बाद सामुहिक भोज का विधान किया जाता है, जिसे " घुंडेर खाणु "कहते हैं।

नामकरण विधि हेतु जमीन पर वर्तुलाकार रंगोली (चोको पुरेरो) सजाकर प्रथम उस पर पाँच दस पैसे रख देते हैं और उस पर बोरा बिछाकर उस पर शिशु को बिठाते हैं। शिशु के माथे पर लाल रंग का वस्त्र बांधते हैं। बच्चे के चारों ओर उसे घेर कर पुरूष उसके माथे पर आडा बाँस पकड कर उस पर लाठी से मारकर आवाज निकालते हुए " वाझाणा गीत गाते हैं। इस संस्कार में प्रधानत: पुरूष ही भाग लेते हैं। यहाँ हम बांझाणा गीतों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं --

अन भाई रे ऽ ऽ ऽ वरसन दियाडो होली माता आई रे।

होलीन मांगी रे रूडो सणगार। वजियन मांगी रे रंगीला री लोवडी।

वजियन मांगी रे गुंजा पापड चारजो। वजियन मांगी रे बालक्या से तेवार जो

करजांन करजा बाळक्या रे तेवार जा । होलीन दवाली दोनु सबी मेन्दे।

(आइयों, वर्षा में एक बार होली आई है । वह क्या मांगती है ? वह शृंगार, रंगीन पूडियाँ और मीठी लापसी माँगती है और लडके का पालने में नामकरण करने को कहती है । दिवाली और होली ये दोनों बहनें हैं । दिवाली होली में बची हुई बासी लापसी माँगकर गोधन की पूजा करने के लिए कहती है ।)

तांडे के नायक को संबोधित कर होली और बरही के लिए भेंट मांगने का बांझणा गीत भी दृष्टव्य है --

अन् भाई रेऽऽऽ आये आयेन हुवे नायक तारे दरबारन ।
अन नायकन दिनो रापिया पांचन । अन् पांचन दिनों पचास कर मान्हि
अन् वजियन दिनो मंदिरी पांधर चारन । अन् मंदिरा रो छक्को --
-- गेरिया धगतो कर ।....

(हे तांडे के मुखिया हम सब तेरे घर भेंट माँगने आए हैं, खुशी खुशी पचास रुपए हमें दे दे । यदि तू पाँच रुपए भी देगा तो हम उसे पचास ही मानेंगे । तेरा वंश गूलर और बट वृक्ष की शाखाओं की तरह बढे ।)

बाँस पर लाठी मारते हुए गाए जानेवाले गीत का नमूना निम्नलिखित है --

चरीक चरिया चंपा ढोल । पेला बेटा नाई की कर ।
दूसरो बेटा कारभारी कर । वटवट रे पिया सासर जो ।
सासरती आग वाडी जो । आगवाडी पचवाडी जो ।
बेटी सासु पान खराब । बेटो ससरा हो का दरावे ।
व्हरग दडिया गाळ दगाव । उदरीवर फाग आयेर होळी ।
आई होळी, बाजे टाळी, छोरा आवडो वेगो ।

(जोर जोर से ढोल बजाओ । पहला लडका नायक बनेगा तो दूसरा लडका कारबार करेगा । अरे उठ रे लडके ससुराल जा ,जहाँ तेरी सास बैठी होगी, जो तुझे पान खिलाएगी । ससुर बैठा होगा जो तुझे हुक्का पिलाएगा

संध्या के समय स्त्रियाँ शिशु को होली के पास ले जाती हैं । होली की परिक्रमा करते हुए प्रार्थना गीत गाती हैं -

गड-बंदरा गड बंदरा पाळे तणाई होली ।
हुशी बंदरा त्रियान बलाय होली ।
खेली बंदरा चेल कराई होली ।

हुशी बंदरा बालान् जन्माई होली ।

खेल बंदरा, होली दवाली मेने ।

(गड बंदर में होलीके अवसर पर बरही मनाने के लिए डेरा पडा हुआ है । होली ने हमारे एक नए भाई को जन्म दिया है और हमारे लिए हर्ष-उत्साह का वातावरण निर्मित किया है ।)

मुंडन के गीत : (लटूलेरो गीद)

मुडन या चूडाकर्म षोडश-सस्कारों में एक महत्त्वपूर्ण संस्कार ह । इस अवसर पर सर्वप्रथम बालक का केशकर्तन किया जाता है । यह संस्कार बालक की तीन, पाँच अथवा सात साल की विषम आयु में ही करते हैं । प्राचीन काल में इसे " गोदान-विधि" कहते थे ।[5] इसे पवित्र-स्थान, देवस्थान या नदी किनारे सम्पन्न किया जाता है । माँ बच्चे को गोद में लेकर बैठती है और नाऊ बच्चे की लट काटता है । इस समय गाया जाता है --

गंगा रे गोरा पारबती और गोदेमाँ बेटो गणपती ।

ओन बाऊ अदबती इन्द्रदेवरे जती ।

(गंगा और गोदा के बीच में पार्वती माता गोद में गणपती को लेकर बैठी हैं । इनके चारों ओर इन्द्र के गणों की सभा जुडी है ।)

बंजारों में यह संस्कार बालक के पाँचवें या सातवें महीने में किया जाता है, जिसे " लटूलेरो " कहते हैं । कुल में यदि कोई स्त्री सती हो गई हो तो इस अवसर पर उसकी स्मृति में प्रसाद (कुल्लर) बनाकर तांडे के अतिथियों को वितरित किया जाता है ।

कुछ लोग यह काकुल समारोह चमडे की पूजा (चामड पूजेरो) के साथ मनाते हैं । पुत्र-जन्म के दिन जूते छिपाकर रखे जाते हैं और काकुल समारोह के अवसर पर पूजा के समय उन्हें निकालते हैं । संभवत: इसके पीछे यह विश्वास काम कर रहा है कि जिस प्रका जूतों को यत्नपूर्वक संभाला जाता है, उसी प्रकारपुत्र को भी संभालना चाहिए । इस अवसर पर गाए जानेवाले गीत का एक उदाहरण प्रस्तुत है --

अंबा कटाटू गदरी अबेलीर, हिंडोलो, हिंडोलो ।

मेरी माया जग जोलो रे ।

ए मा बेसरे तुळजाभवानी र, हिंडोलो हिंडोलो ।

मेरी माया जग जोलो रे ।

एमा बेसरे गूंदी मखलिर, हिंडोलो हिंडोलो ।

`` ``

(हे माता, तेरे लिए झूला बनाया है। तुझे झूले पर झुलाते झुलाते
मैं कृतार्थ हो जाऊँ। इस झूले पर गूंदी मावलो व सप्तमातृकाओं को बिठाकर
झुलाऊँ।)

विवाह के गीत

वैदिक धारणा के अनुसार गृहस्थ-जीवन के लिए विवाह आवश्यक है।[6] समाज की इकाई है परिवार और परिवार की नींव है वैवाहिक जीवन। विवाह का मुख्य उद्देश्य वंश परंपरा को अबाधित अक्षुण्ण रखना है।

बंजारों का विवाह-विधान बडा ही मनोरंजक होता है। इनमें सगाई से लेकर वधू की विदाई तक के विभिन्न प्रसंगों के गीत प्रचलित हैं। ये गीत वैविध्य पूर्ण हैं तथा प्रेम, वात्सल्य,करुणा वैराग्य आदि मनोविकारों से रंजित हैं।

सामान्यत: विवाह का संस्कार वर और वधू के चुनाव से प्रारंभ होता है, जिसे " मँगनी" या " सगाई " कहा जाता है। योग्य वधू केवल पति की ही नहीं ,अपितु सारे कुटुम्ब एवं कुल की प्रतिष्ठा का कारण होती है।[7] मंगनी के अवसर पर कन्या - पक्ष वाले वर को वस्त्रादि उपहार देते हैं,जिससे विवाह की बात पक्की मानी जाती है इस वाग्दान-समारोह को " तिलक" कहा जाता है। इस अवसर पर गाए जानेवाले गीतों में हास्य,व्यंग्य, विनोद एवं शृंगार की धारा प्रवाहित होती है।

पहले लडके को साल छ: महीने भावी ससुराल में रखा जाता था। इस काल में उसे दूध, मलाई,मेवा आदि पौष्टिक पदार्थ खिलाकर खूब स्वस्थ बनाया जाता था। उसके खूब तगडे हो जाने पर तांडे की कुमारियाँ और स्त्रियाँ उसकी शक्ति परीक्षा लेती थीं। वे उस पर टूट पडती थीं और मारपीट करती थीं। यदि लडका उन्हें छका कर उनकी बाँहों का घेरा तोडकर निकल जाता तो उसे ब्याह के उपयुक्त समझा लिया जाता था।इसका प्रचलन अब कम होता जा रहा है।

कहीं कहीं इनमें विवाह-विधि के लिए कोई विशेष मुहूर्त नहीं देखा जाता। किसी भी दिन आयोजन कर दिया जाता है। बंजारों में ब्याह रात के समय होता है कहा जाता है कि इसका कारण मुगलों से शत्रुता थी। मुगल सेनाएं दिन में कन्या का अपहरण कर सकती थीं। अतएव सुरक्षा के लिए रात का समय उपयुक्त समझा गया।

शादी के लिए लडका - लडकी की उम्र की समानता नहीं देखी जाती। कभी कभी वधू की उम्र वर से अधिक भी होती है। मुख्य बात है वर द्वारा वधू की पसन्दगी तीज त्योहार के समय जवान लडके और लडकियाँ एक दूसरे को पसन्द करते हैं। लडके द्वारा पसन्द की गई लडकी के साथ तांडा नायक की अनुमति से शादी का निश्चय

(मँगनी) " सगाई " या " गोल" पक्का हो जाता है ।

शादी में देहज की प्रथा विशेष रूप में प्रचलित नहीं है लेकिन शादी पक्की हो जाने के करार के लिए लडकी वाओं को कुछ धन देना पडता है । प्राचीन काल में एक जोडी बैल और गाय कन्या के पिता को देने की प्रथा थी । " सगाई " को जाहिर करने के लिए वर पक्ष के लोग वधू पक्ष के तांडा-नायक को एक रुपया (शकियारपिआ) देते हैं । इसके साथ ही मँगनी पक्की हो जाती है ।

वर एवं वधू दोनों के घरों में विवाह के अवसर पर गीत गाए जाते हैं । प्राय: दोनों पक्षों के गीत समान ही होते हैं । वरपक्ष के गीतों में आनंद उल्लास की मात्रा अधिक रहती है, जबकि वधू पक्ष के गीतों में करुणा एवं वेदना का स्वर भी मिला होता है ।

<u>वरपक्ष के विवाह गीत</u> : तिलक या लगुन के गीत (सगाई गीद)

केला रे बागेमा बेटीचं हदाई । करदीचं सगाई । खादे जरा खारेच गोळ मटाई ।
(केले के वन में बेटी की मँगनी पक्की हो गई है । इस शुभ अवसर पर तुम सब अपना मुँह मीठा कर लो ।)

संध्या के समय भोजन से पूर्व सबको भाँग पीने के लिए दी जाती है । भाँग पीते समय लोग एक दूसरे को प्रणाम कर निम्न घोषणा करते हैं --

राधा मीठी घोडली, रण मीठी तलवार ।
सेज मीठी कामिनी, सुरा मीठी सांग । लो भाई भाँग,लो भाई भाँग ।
(पराक्रमी पुरुषों को घोडी प्रिय होती है, रणक्षेत्र में वीरों को तलवार प्रिय होती है । सेज पर कामिनी प्रिय होती है और शिकार के समय बर्छी प्रिय होती है ।)

रात में भोजन के लिए अतिथियों से विनयपूर्ण अभ्यर्थना की जाती है --

" पंच पंच्यात राजा भोजेर सभा । लाखन सव्वालाख भाईर आनंद सगेर कुसल । भाई आपण आनंद । सगा आपण सकल । तलवी पातळ घ्यान । है तो कोटी खोलू घ्यान । नहिं तो पंचों में भगवान । तळवी है संसार में भातमात के लोक । सबसे हलमल चलिए तो नंदी नाम संयोग । मेवा सगाने मेवा करिये येवा नंदी नीर । धापो धापा सिंग स्यिा जो जूर चढे सीत । येवा सगाने येवा न जये येवा च सिंगोडा टाकी लोग । परमळा म्याळे दुधाळा । एक एकटा सुपारिया रंग कुसुंब हांय । भाइ बगर रंग दुओ हाय । एकमुक्य सुपारिया रंग सगा बगर दुओ न होय ।" इत्यादि ।

(" पंच लोगों की पंचायत जैसे राजा भोज की सभा । इस सभा के हम सब लोग सदस्य हैं । लाख सवा लाख मोल के माइयों आप सब आनंद से तो है न ? पंच ही परमेश्वर है । नदियों के संगम के समान ही हमारे दिलों का मिलन हुआ है और नदी के जल के समान ही हमारे मन सरल और स्वच्छ हैं । हम एक दूसरे के साथ मिल जुल कर रहेंगे तो मस्तक की पगडी में जडे रत्नों के समान सुशोभित हो जाएँगे । कुल की शोभा मेहमान है । जिस तरह आकाश में पतंग डोर की सहायता से हिलता डुलता है वैसे ही हम सब उच्च स्थान पर सुशोभित हो जाएँ । समुद्र में जैसे मछलियाँ सुख से रहती हैं, वैसे ही हम सब मिल जुल कर रहेंगे । जिस तरह बीच में पहाड आ जाने से दो वस्तुएँ अलग होती हैं, उसी प्रकार अब तक हम एक दूसरे से विलग थे लेकिन अब इस मँगनी से रिश्ता जुड जाने से हीरे की खान प्राप्त हो गई है । " इत्यादि)

अब वर वधू के घरों में विवाह की तैयारियाँ शुरू हो जाती है । वर पक्ष के लोग वर के साथ गुड, पान - सुपारी, हुक्का और रंग लेकर वधू के घर जाते हैं । वधू पक्ष के लोग उन्हें पान-सुपारी देकर तथा रंग डालकर उनका स्वागत करते हैं । इसी दिन विचार-विमर्श द्वारा विवाह का दिन निश्चित हो जाता है ।

दिन तय हो जाने पर दूल्हे के घर साडी पहनाने की रस्म होती है । इस दिन वर पक्ष के लोग साडी खरीदने के लिए (साडी ताणेन जायच्च) बाजार जाते हैं । वधू को साडी पहनाने के बाद उसके आँचल में नारियल,पान-सुपारी और कुछ रूपये डालकर उसकी गोद भरी (पतारी मांडेय्च्च) जाती है । इसके बाद वर की " मुंडे वडो " रस्म की जाती है ।इस अवसर पर वर (वेतडू) दूल्हे की पोशाक पहनकर अपने मित्रों के साथ (लेरिया)चिलम पीते हुए घर आवे मेहमानों को " राम राम " करता है और उनका आलिंगन करता है । " वेतडू " और " लेरिया " अपने कानों पर रेशमी डोरी पहन लेते हैं जिसे पतीरोडोरा। कहते हैं । इस समय अतिथियों का भाँग, मंदिरा एवं भोजन देकर खुशी मनाई जाती है । इस अवसर पर स्त्रियाँ भाँग घोटते हुए निम्न गीत गाती हैं --

काली मिर्च वेंतायले , धीनी मिर्च वेतायले ।
अछो घोटा गुडायले , मुंगा भोले कायले ।
जेना संदरा नवायलं, अछोमेल बंदायले ।

(हे दूल्हे । काली मिर्च और गुड खरीदकर भांग बनाना,इससे तेरा वैवाहिक जीवन सुखी होगा ।)

विवाह - संस्कार के गीत : (वेतडू व्दाई गीद)

दूसरे दिन वर के घर के आंगन में वर्तुलाकार मंडप बनाया जाता है, जिसे " मुंडेवडा" कहते हैं। इस मंडप के सामने चटाई पर " वेतडू " और उसका छोटा भाई बैठ जाते हैं। दोनों की बाँहों पर गुरु गोसाई बाबा की स्मृति में अग्नि से दागा जाता है, जिसे " व्दाई दाग " कहते हैं। इस अवसर पर व्दाई दाग गीत गाए जाते हैं --

जने व्दा दायरो, मुगेव्दा दायरो ।
बाजरी व्दा दायरो, रागीव्दा दायरो ।
गोसाई बाबा स्दा, स्दा ।
चण्णा व्दा दायरो, व्दा व्दा दायरो ।
मेथे व्दा दायरो ।
गोसाई बाबा स्दा, स्दा ।

(ज्वार के दाने, चने के दाने, बजरी के दाने, रागी के दाने और मेथी के दाने ये सब गुरु गोसाई बाबा को अर्पित।)

उक्त समारोह के बाद " वेतडू " और उसके छोटे भाई को खाने के लिए सात कटोरे भरकर चावल की मीठी खीर दी जाती है। अब लग्न मंडप के बीच में चाँदी के सिक्के पर जल से भरा मिट्टी का कलश रखा जाता है और उसके चारों ओर तांबे के सिक्के रखे जाते हैं। मँगनी के समय कन्या के घर प्राप्त रुपए को कलश में डाल कर कलश का मुँह बंद कर दिया जाता है। फिर दूसरे दिन संध्या के समय मंडप के सामने " वेतडू" को मध्यासन पर बिठाकर भाँग बनाते समय तांडे की स्त्रियाँ हँसी-खुशी के साथ गीत गाती हैं। बारात के प्रस्थान के पूर्व वे दूल्हे से कहती हैं - " यह भाँग हमने अपने हाथों से बनाई है, कृपया इसे पी लो।" इस पर सभी लोग भाँग पीते हैं।

वर के वधू के घर के लिए प्रस्थान के समय तांडे की जवान लड़कियाँ उससे हास परिहास करते हुए कहती हैं --

ढुंबी झुंबी रो झाझा ।
तारी ढुंबी झुंबी चाली रे झा झा ।
तारी बापूर मेल छोड रे झा झा ।
तारी याडीर मेल छोडी रे झा झा ।
तारे सासरेरे मेल दिडा झा झा ।
ढुंबी झुंबी रो झा झा, तारी ढुंबी झुंबी ।

(दूल्हे ! बडे सज-धज के ससुराल चले हो । क्या शान है ? क्या रुआब है ? क्या थाट - बाट है ? अरे हाँ, बडी अकड के साथ तो ससुराल जा रहे हो, लेकिन अपनी पत्नी के लिए कीमती कपडे और गहने ले जा रहे हो या नहीं ?)

शुभ मुहूर्त में ही दूल्हा ससुराल जाता है । तांडे के पंच लोग मुहूर्त देखकर ही विदा की अनुमति देते हैं । अशुभ की सूचना मिलते ही प्रस्थान रुक जाता है --

तू सोमळ वेतडू वाग बोलो ।
तेरे हरीभरी नंगरीपर वाग बोलो ।
तारी भरी एक चेरी पर वाग बोलो ।
तू सामळ नायेक वाग बोलो ।
तारे जमणो भजा बाग बोलो ।

(तेरी समृद्धि नगरी में पंछी की आवाज सुनाई पडी है । पंच लोगों के सामने पंछी की आवाज आई है । तू शादी के लिए प्रयाण मत कर । कुछ क्षण के लिए रुक जा ।)

दूल्हे को विदा करने के लिए उसके साथ तांडे के नर-नारी सीमांत तक जाते हैं । स्त्रियाँ आशीर्वादात्मक गीत गाती रहती हैं --

ताडे चले चतुरे - मारा यामिन्शिा ।
गोरी जमाये वालमीया - मारा यामिन्शिा ।

(हे दूल्हे ! दुल्हन के घर शादी करने के लिए जा रहा है तो हँसी खुशी और संतोष के साथ जा । तेरे प्रति हमारी सदिच्छाएँ हैं ।)

वे दूल्हे को भावी जीवन के उत्तरदायित्वों के प्रति सजग रखने की चेतावनी देना नहीं भूलती हैं --

बामणा रे, ताडे ताडे चाल ।
मर तामणारे घाली विसजी दुणियाजि ।
चाल रे बामणा रे लडका । ताडे ताडे चाल ।
तारी डोली विराजी तारी ।
तारी डोली सजियारी ।
चाल रे बामणा रे लडका, ताडे ताडे चाल ।

उसे पिता के समान कीर्तिमान तथा समाजप्रिय होने के लिए भी कहती हैं --

तांडो छोड चलो रे, बापूर गोद छोडे रे ।
बापरो शिक केली, पानी लाद चलो रे ।

डंबी डंबो लांडी रे, झुनकडी पामणो लाद चलो रे।

नीगरी री शिकलेलो हे दुला, लाद चलो रे।

शादी के अवसर पर कोई झगडा - बखेडा करके तांडे को कलंकित न करने की चेतावनी भी दी जाती है --

वेथोडो, लेरिया, घुमजानो छो कारजेना।

वधाछा एककोरी, एकवंटी, एक झांगड ।

एक नाडी एक राछा, इकोई, इकोडवथ ।

कामयो वो न तुम को नयन गले जान ।

इकानेरा वो काम कारलेयो, मारा थाने नवजोन।

(वहाँ तुम जो भी सुनना उसे बांये कान से सुनकर दांये कान से निकाल देना। क्रोधित न होना।)

भावी जीवन की जिम्मेदारियों से चिंतित दूल्हे को धैर्य भी ये गीत प्रदान करते हैं --

तारे सेरिकी सासुवर वेतडू, छाती मत फाड भरके भोदू।

तारे सेरिक तारे भाई भेव, तू मत बमेक, सेरिक वेतडू ।

तारे सेरिकी तारी याडी बीच, गुजराणी सरिकी बीज।

ओढणी सरिकी साली बीच, बामणो सेरिक सारे भाई बीच।

(हे दूल्हे! तू दुल्हिन के घर जा रहा है। वहाँ तेरी सास तुझे सहारा देगी। इसलिए तू धीरज के साथ जा - छाती मत फाड ले। तुझे सहारा देने के लिए तेरे बलवान भाई हैं, इसलिए तू छाती मत फाड ले। धीरज देनेवाली तेरी माँ यहाँ उपस्थि है।)

तांडे के सीमांत तक आ जाने पर तांडा नायक एवं अन्य लोग लौटने वाले हैं। दूल्हा उनसे प्रार्थना करता है कि वे उसके घर एवं संपत्ति पर ध्यान रखें --

बापू धयमानो हम जाना कारजेना।

घरचा, बरचा, वालवा धयमाना।

घालवा नीगामाने रखवाधीयो।

इस प्रकार वर पक्ष के गीतों का भांडार विविधता से युक्त है।

कन्या पक्ष के गीत

कन्या पक्ष के गीतों की संख्या वर पक्ष के गीतों की तुलना में अधिक है। ये

प्राय: स्त्रियों के द्वारा ही गाए जाते हैं। इनमें तिलक,हल्दी, नहकू, नहावन,माडो गाडना, मेहंदी, चूडी,पहनाना, वस्त्र परिधान, द्वारचार, कन्यादान, सप्तपदी,हास परिहास, विदाई आदि विविध प्रसंग अनुस्यूत हैं।

तिलक या लगुन के गीत : (परमाती टीको लगाऊ गीद)

कन्या के घर में प्रभाती से गीतों की शुरूआत होती है, जिसमें वधू के लिए आशीर्वाद एवं कुशल मंगल की कामना रहती है। इन गीतों में विविध विषयों की अभिव्यंजना होती है। कुछ राम-सीता,कृष्ण-राधा आदि देवी-देवताओं से संबंधित होते हैं --

असी धरती पर रामव, लक्ष्मण उनके बीच चलेरे धनिया।
उसी धरती पर देवस्थान असगे, उनके बीच चलेरे धनिया।
बीच चले रे सरपरती,अस धरती पर आपण बणिया बसओ।
उसके बीच चले रे दुनिया, घर धरती भाई भाई।

(इस धरती पर राम और लक्ष्मण कर्तव्य के नाते वन में चले गए, जिनके साथ सीताभाई भी थी। इस संसार में सभी प्रकार के लोग बस गए हैं, जो भ्रातृभाव से चलते हैं।)

कुछ गीतों में वधू की निरीहता एवं करुणा की व्यंजना है --

मन येजेना छाजे भावजोये।
जा तेरे गरेरो टीको भयन छाजे भावे जो।
जाते रे घरेरो टीको भवन छाजे भियाव।
मत जो लगाडे, मियावोरे।
जा तेरे घरे री हूँदी, सांदी हल्दी।
अपने घरेरो बांदणो रोरे।
टीको भयन छाजे भियाव।

(हे भैया, हे माँजी। पराये घर का तिलक मुझे मत लगाओ। उससे मेरी शोभा नहीं बढेगी। मेरे माथे पर पराये घर की हल्दी भी मत लगाओ। अपने घर की हल्दी और तिलक से ही मेरा शरीर सुशोभित होगा।)

कन्या को शादी संकट के समान दिखाई पडती है। क्योंकि बाबुल का घर उसे छोडना पडेगा -

कागदे री पुडी कर खिसेमा झाकले मिया।
सिंगे छडी हातेमा झालेवर मिया ।

मोरे लार पामणो चाल रे मिया ।

तू न घाल रे पोरोशी कलडीम ।

काढू तीज त्येवर दियाडा ।

(हे भैया, तू जिस तरह तमाकू की पुडिया बाँधकर अपनी जेब में हिफाजत के साथ रख देता है, वैसे ही मुझे अपने स्नेहरूपी पुडिया में बाँधकर रख ले । हे भैया,मुझे घर में रखकर किवाड बंद कर लो और तीज त्योंहार के समय ही बाहर निकालो ।)

माडो गाडने के समय का गीत (मांद जनार गीद)

बहन सारी तैयारियों को देखकर परेशान है । वह चाहती है कि सारे काम विलम्ब से हों, जिससे बाबुल के घर से विछोह की घडी जल्दी न आए:

अतरी चपलाई, मत करो वीरा ।एक घडी लागं,तो सं घडी लगाडी ।

मत बाँधो बाह्रा विवाह मारो वीरा ।

(हे प्यारे भैया, जिस काम को करने में तुझे एक पल लगता है, उसे करने में तू सौ पल क्यों नहीं लगा देता ?)

भाई माडो गाडने के लिए गड्ढा खोद रहा है । बहन को वह खाई के रूप में दिखाई देता है जो उन दोनों को जुदा कर देगी । इस गीत में मानवीय करुणा की बडी स्वाभाविक व्यंजना हुई है -

मत खोदो वीरा, आकोला ढोकाला रे खोड ।

तम ज खोदीयो तो तमारी --

मेन्ड वराणी दिसे वीरा ।

भाई को टस से मस न होते हुए देखकर कन्या माँ से याचना करने लगती है कि वही उसे छिपाले --

नायकण याडी रे, आवाक घूळी री,

हाय लेरी घणो लाण याडी ।

नायकण याडी रे, तारे लाकिया

चुल्हीन घालान गो केले याडी ।

कोई भी बेचारी की ओर ध्यान नहीं देता और बारात द्वारा तक आ जाती है ।

द्वारचार या अगवानी गीत

बारात के दरवाजे पर आते ही द्वारचार के गीत प्रारंभ होते हैं । स्त्रियाँ वर

देखने के लिए बहुत उत्सुक रहती हैं। वह काला है या गोरा ? काना, बहरा आदि तो नहीं है ? इधर कन्या के मन में भी तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न होती है लेकिन लोक मर्यादा का ख्याल कर वह स्वयं को रोके रहती है। कुछ लडकियाँ ढीठ होती हैं। ऐसी ही एक लड़की की तीव्र उत्कंठा निम्न शब्दों में व्यक्त हुई है --

काळोन कोळा काळो रे भूरिया लावावेरो।
रणजावे भूरिया ससियावे वटजाऊँ।
हंणी ने कूद जाऊँ।

(हे माँ, मैं दूल्हे को देखने के लिए हिरन और खरगोश के समान छलाँग मारकर मिलने जाऊँगी।)

दूल्हन को उसकी सहेलियाँ छेडती हैं और फब्तियाँ कसती हैं -

घोळे घोळे हाँसले बाळिये तणे कुणे बुलावा।
लटके हासलो लाडी लाडी लोडी बाळिये।

(अरी सखी, तुझे कोई बुला रहा है, इसलिए तू सज-धजकर उसी के सामने जा और मीठी हँसी हँस।)

चुटकी लेते हुए वे तांडे की स्त्रियां उसे कहती हैं --

बामणा रे वोची साडीलो,ताणवायान या चोचो।
बामणा रे वोची साडीली,चो चो।

(अजी दामाद जी, शादी करने तो बडी अकड के साथ आए हो लेकिन अपनी पत्नी के लिए साडी चोली लाए हो या नहीं ?)

इस अवसर पर वर-वधू को संक्षिप्त भेंट का अवसर प्रदान करने के प्रसंगों की भी उद्भावना की जाती है। वधू पानी भरने के बहाने नदी या कुएँ पर जाती है और प्रियतम की प्रतीक्षा में खडी रहती है --

पाणी भरती वाटडी, जोर झाझा लबे खडी।
लुंबी झुंबीरा पेला, जायर झाझा लबे खडी।

(हे प्रिय ! कुएँ पर पानी भरते भरते मैं यहाँ तेरी राह देखती कब से खडी हूँ।)

वर वधू को सांत्वना देता है कि वह उसके लिए एक से एक सुंदर आभूषण लाएगा —

तारे सारू चयना लायेवे सुवाली। घर चाले बाई तो न चैन दरादुये।
बाई तारे चयनारी मजकुरिये। घर चाले बाई, तून हाँसले दराऊँये।
बाई तारे हासलेरये मजकुरीए। घर चाले बाई, तोन भूरिया दराऊए।

(पैंजनियाँ, कंठहार,नथुनी, वाकिया (बाजूबंद) जो भी चाहे ले लेना,लेकिन घर चल, रूठ मत।)

मेहंदी के गीत (मेदो लगाऊ गीद)

ब्याह की पूर्व तैयारी के रूप में कन्या के शरीर में हल्दी, तेल, उबटन, आदि लगाया जाता है ताकि भावी वधू अधिक कांतिमय दिखाई दे। उसे मेहंदी भी लगाई जाती है। मेहंदी पीसते वक्त स्त्रियों को गीत गाने के अवसर प्राप्त होते हैं --

मेदी पिसे कोण ? पिसावे कोण ? आडे भींत वलांडे कोण ?
पलूटी कर सलूटी फर लाडी, तारो ससरो बलायो लाडी।
सोला परेरी सोला हाथ साडी आधो ढूंगा कडिये लाडी।

(मेहंदी पीसता है कौन और पिसवा कौन रहा है ? कौन आडी दीवाल पर चढ रहा है ? बिटिया, तुझे तेरा ससुर बुला रहा है। सोलह हाथ की सोलापुरी साडी में अपने शरीर को आधा ही लपेटे नखरा न कर मेरी लाडो।)

मेहंदी लगाते समय सहेलियाँ वधू को तंग करने से बाज नहीं आती हैं --

छोरी वेतेती, बडाई मारतीती, चल छोरिये मेंदो पिटी।
चल छोरीये वेतडू गोदी मा जा बेटी।
छोरी वेतेती बडाई करतीती, चल छोरिये वेतडू खोळ वोढ बेटी।
चल छोरिये वेतडू खोळ वोढ बेटी।

(अरी छोरी, विवाह के पूर्व कहती थी मैं शादी हरगिज नहीं करूँगी लेकिन अब मेहंदी लगाकर शादी के लिए सज धज कर बैठी है। शादी के पूर्व बहुत नखरा करती थी, अब वर की गोद में बैठने के लिए उत्सुक है।)

चूडी पहनने के गीत : (चूडोतीय जनारो गीद)

चूडी पहनते समय जो गीत गाए जाते हैं, उनमें प्रसन्नता के स्थान पर करुणा का स्वर ही प्रबल है --

मत घेजे काडो याडी इये। मरि जे याडी योरे हातेरी।
सरेरी सराई टोपली, या-हि-याँ।
मत काडे जो भावे जो ये। मारे जो बापे री हातो रो।
सरेरो सेरायो मूटिया, या-हि-माँ।
मत जे न छाजे मावे जो ये। जा तरे घरेरी ये।
खंद केरी विणी चूणी घूघरी, या-हि-याँ।
मन जे वा छाजे जावेणो ये। जा तेरे घरेरी य।
पिणो चूणो चूडलो, - या हि - याँ।

(हे मेरी प्यारी माँ, मेरे हाथों में की ये चूडियाँ निकालकर मुझे नई चूडियाँ मत पहनाओ। हे भाभी, मेरी माता के द्वारा मेरे हाथों में पहनाई गई ये चूडियाँ और प्रेम से सजाई गई बालों की " टोपली" - एक प्रकार का कर्णालंकार - मत उतारो पराए घर से लाई गई यह "घूघरी" (कर्णालंकार) मुझे शोभित नहीं करती। हे सखियों, ये सब चूडियाँ" पराये घर की होने के कारण मुझे शोभा नहीं देतीं।)

हल्दी के गीत : (हळदी लगाऊँ जनेर गीद)

कन्या को हल्दी लगाते हुए उसकी माता एवं अन्य स्त्रियाँ इस अवसर पर जो गीत गाती हैं, उन्हें हल्दी के गीत कहते हैं। यथा --

गंगा उतर पाणी वारी मेने। पाणी उजाला पाणी भर लेना --
हळदी लगाई मेरी। गंगा, -- हळदी लगाई मेरे चांदन बाई।
हळदी लगाई मेरे गुळबाई। गंगा उतर पाणी वारी मेजे।
पाणी उजाला पाणी भर लेना।

इन गीतों में कन्या के हृदय की बिछोह पीडा की टीस बडे अच्छे ढंग से उभारी गई है --

मत लगाई वीरा, हल्दी पर घर की हल्दी।
बाप घर चंदन रोटी को मत लगाई वीरा हल्दी।
बाप घर का चंदन रोटी को लगाई हल्दी वीरा।
मत लगाई वीरा हल्दी पर घर की हल्दी।

(हे भैया, मुझे पराए घर की हल्दी मत लगाओ, अपने ही घर का चंदन लगाने से भी मैं सुखी हो जाऊँगी।)

वर को हल्दी लगाते समय उसके घर की स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं उनमें बहन को इस बात की पीडा है कि भाई पराई स्त्री के जाल में फँस गया है --

हळदी रे जालामा सुरिया पडो रे वीरा।
घाल सरदार वीरा, कोणीन् सरदार नु बाई।

इस प्रकार हल्दी के गीतों में पराए घर जाने की व्यथा एवं बाबुल से बिछोह की करुणा साकार हो उठी है।

नहछू - नहान के गीत (हंगुळीर गीद)

विवाह के मंडप में कन्या के स्नान की तैयारी की जाती है और इस अवसर पर कन्या अपने भाई और माता से प्रार्थना करती है कि उसके मंगल स्नान के लिए सभी

रिश्तेदारों को आमंत्रित किया जाय --

मेरा हुशी वीरा,मङावो बलाल ले वीरा ।

मारी नायकण याडी, कुलर बलाल्ये या ।

तारी डुलरेरी अगी झुल्लुए या झु......... ।

दूल्हे को स्नान कराते समय जो गीत गाए जाते हैं, उनमें हास - परिहास की छटा के दर्शन होते हैं --

सरको आव्ये - सोनेरी काटोटी पर । घाटो आव्ये सासुरी काटोटी

कोई मांग्ये सासुरी काटोटी पर ।

कडा तोडा मांग्ये सासुरी काटोरी पर ।

लाकीट मांग्ये सोनेरी काटोटी पर ।

घड़याल मांग्ये चांदीरी काटोटी पर ।

(हे दूल्हे - ! स्नान-मंच पर बैठने के लिए बडे ही उत्साह से दौडते हुए आये हो तो सास से क्या माँगना चाहते हो ? सोने की लाकिट और चाँदी की घडी ? ससुर से सूट-बूट माँगना चाहते हो ?)

दूल्हे को नीचा दिखाने के लिए स्त्रियाँ अनेक बहाने ढूँढती हैं --

चांग चंगोळीय, चंगोळीय तोरा मेनोई ।

कलडा - तोडा मांग च तोरा मेनोई ।।

(हे बेटी, हमारा बहनोई हमसे गहने आदि माँग रहा है । वह जो कुछ भी माँगे वह उसे देकर उसका हठ पूरा कर दो ।)

वर वधू से स्नान द्वारा पवित्र होकर शृंगार करने के लिए कहा जाता है --

नायल्ला लाडा नायल्ला लाडा ।

तारं पगला हटं गगा वेई जा ।

नायल्ले छाटा नायल्ले छाटा ।

तारे पाटिया हटे पगल्या गंगा वेई जा ।

(---अपने घुंघराले काले बालों को सुखा कर सुगंधित तेल लगाकर माँग सँवारो ।)

स्नानरत वर-वधू पर मंगलकामनाओं एवं आशिषों की वृष्टि कर उनके भावी जीवन के पथ को उजला बनाने का प्रयत्न किया जाता है --

पांची भाई बसे गे, डोरन् बांधेगे । बाधी बच्ची बेटी दिव्ली सरीकी ।

क्वी क्वी बेटा चांदी सरी की । कुं छुटे लाडी डोरेन तारे ।

दादी हाथीर डोरन् रो । कुं छूटे लाड डोरन् ।

(हे बेटी, तेरे सामने पंच - मंडल बैठा है और बड़े हर्ष से तेरी शादी रचा दी है। तेरा ब्याह अब होगा क्योंकि तेरे माँ - बाप तेरी कलाइयों पर सौभाग्य - सूत्र बाँध रहे हैं।)

वस्त्र परिधान के गीत -

स्नान के उपरांत दूल्हा-दुल्हन को वस्त्र पहनाए जाते हैं। इसे "साडी ताणेरो" अथवा " हात घाळ जनारो " कहते हैं। इस समय दूल्हा - दुल्हन को वस्त्राभूषण का नेग भी दिया जाता है। दूल्हा किसी बात पर अड जाता है --

पनडो मांगी भूरिया, तो पनडा मांग तोडा ।
सोनेरी अंगूठी मंगळगीर, माळ पनहान ।
पनडी मांगी भूरिया । तो पनडा मांग तोडा ।

(लडकी अपने लिए नथुनी माँगती है तो दूल्हा अपने लिए हाथ का तोडा सोने की अंगूठी और गले में पहनने के लिए " मंगळगीर" की माला माँगता है।)

दूल्हे के रूठ जाने पर सास उसकी मनौती करती है --

खुणीया मा वेतडू रीसारोच । वोरो सोजाण सासु मनाएरिज ।

(हे दूल्हे ! नेग के लिए हम पर रोष नहीं करना, आगे चलकर हम तुमको खुशी से देंगे।)

साडी बदलते समय पुन: बेटी का हृदय पीडा में डूब जाता है --

मत लावो साडी याडी पराय जातेर ।
पराय सीमेरी, पराय गोते रे । फिकी साडी मत लावो वीरा ।

(हे माँ, पराए मुल्क, गोत्र और जात की साडी मेरे लिए मत लाओ और मुझे मत पहनाओ । हे भाई यह फीकी साडी मेरे लिए क्यों लाई है ?)

मंगलसूत्र के गीत

विवाह के प्रधान संस्कार के लिए वर-वधू को पवित्र कच्चे सूत्र के घेरे में बिठाया जाता है। वर पक्ष की स्त्रियाँ दूल्हे के गौरव-गीत गाती हैं -

मीया मारो शिद्दी, होटो फरन दिद्दी ।
काही बोल्या नारी, ब्रह्माचारेरी घडी ।
काका मारो शिद्दी, होटो फरन दिद्दी ।
याडी मारो शिद्दी, नगरीन दिद्दी,
काही बोल्या नारी, ब्रह्माचारीरी छडी ।

(मेरे भाई ने सीटी मारी तो लाखों लडकियाँ मुडकर देखती हैं । अपने भाई का मैं कितना वर्णन करूँ ? मेरे चाचा के सीटी मारने पर पूरा गाँव खिंच जाता है। मेरी माँ की आवाज पर सारी स्त्रियाँ दौडी आती हैं ।

कन्यादान और भाँवर के गीत (फेरो गीद)

विवाह में कन्यादान का प्रसंग बडा कारुणिक होता है । अपनी सम्पत्ति देते हुए किसका हृदय नहीं विदीर्ण होगा ? कन्या माँ-बाप के हृदय का एक अंश होती है लेकिन " प्रजापत्य व्रत" हेतु सब सहन कर लेना पडता है । वर आगे एवं कन्या पीछे इस प्रकार दोनों अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं । मानो छ: भाँवरों तक वर वधू को जबरदस्ती खींचते हुए परिक्रमा करता है --

तेरो मेरो होये लाडी, एकत पेरो फर लो लाडी ।
तीन पेरा हाये लाडी, तु थी हमारी लाड ।
तु थी हमारी लाड, पांचो पेरा होयस लाडी ।
छे पेरा होय लाडी, सात पेरा होये लाडी ।
सात पेरा भी होय तुमारी,सात पेरा पर लिया ।

(हे लडकी,अब तू मेरी हो चुकी है । एक भाँवर पूरी हुई तो तू मेरी हो गई। दो भाँवरें पूरी हुई तब तू मेरी हो गई । तीन,चार,पाँच और छ: भाँवरे पूरी होने के कारण तू मेरी हो गई लेकिन सातवीं भाँवरे के बाद मैं तुम्हारा हो गया हूँ ।)

इस समय कन्या की सहेलियाँ उस पर व्यंग्य बाणों का प्रहार करती हैं और उसे लज्जित करना चाहती हैं -

चल छोरिया बढाई मारती ती,कोलिआ खाव बेटी ।
छोरी बेतीती,दान्तीया मसीया लेगाडतीती ।

(शादी के पूर्व " शादी" का नाम लेते ही क्रोधित हो जानेवाली अब भाँवर क्यों नहीं देती ? माथे पर घूँघट काढ लिया न ? तो अब भाँवर दे दो ।)

कोहबर के गीत

विवाह के बाद वर-वधू को एक कोठरी में ले जाकर बैठाते हैं । वहाँ वधू- का भाई और अन्य स्त्रियाँ लडके से लडकी का नाम लेने का अनुरोध करते हैं । हास परिहास के लिए वर की गालीनुमा चुटकियाँ ली जाती हैं ।

तारा याडिनी का नाई पेराने ? देता वेगानिया । अत्ये कसने आये ?
तारी कलान्कि नाई पेरोने ? देता वेगानिया । अत्ये कस्ने आये ?

(हे दूल्हे ! तूने अपनी माता के साथ क्यों शादी नहीं की ? तूने अपनी बुआ के साथ शादी क्यों नहीं की ?)

हास-परिहास के बीच दूल्हे को आँगन में लाया जाता है। वहाँ जवान स्त्रियाँ अपनी ओढनियाँ उसके गले में लपेट कर उसे आगे खींचकर जमीन पर गिरा देती हैं और गाती हैं --

लालाजी छेड खादो । तू हेते पडो लालाजी ।

जोगलू पेरे तुम कंचली पेरो । तुना काया किदर ये,लालाजी ?

तुमना पेरे तुम पेटिया पेरो । तुमना क्या किदर ये,लालाजी ?

(हे लालाजी ! तुम्हें क्या हो गया ? आप तो पुरूषों की पोशाक पहने थे। अब लहँगा पहन लो और माथे पर ओढनी ओढ लो।)

बिदाई के गीत : (ढावलो गीद)

कन्या की विदाई का प्रसंग बडा ही करूण होता है। माता,पिता,भाई,बहन, रिश्तेदारों, सखियों तथा अन्य पडोसियों की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है। इस अवसर पर बंजारों में एक विशिष्ट शैली का गीत गाया जाता है, जिसे " ढावलो" कहते हैं। "ढावलो" का अर्थ है विवाह के पूर्वार्ध से उतरार्ध तक के विभिन्न प्रसंगों पर रोने की ब्याही लडकी को मिलनेवाली शास्त्रीय शिक्षा।

बंजारों के हर तांडे में दो चार प्रौढ स्त्रियाँ (दाई - सानी) होती हैं जिनके पास गीतों का खजाना रहता है। ये " नवलेरी"(दुल्हन) को मन की विविध शोकभरी भावनाएँ व्यक्त करने का तरीका एवं रोने की विविध विधियाँ सिखा देती हैं। दुल्हन को " ढावलो" सिखाने का उपक्रम "नकता" (वाग्दान) के दिन से शुरू होता है और पुत्री की बिदाई के दिन तक चलता ही रहता है।

मन की विविध शोक भावनाएँ व्यक्त करने के लिए" ढावलो" के निम्नांकित तीन प्रकार हैं --

(१) ढावलो -- शोक का प्रकटीकरण ।

(२) हवेली -- प्रार्थना या सदिच्छा का प्रकटीकरण

(३) मलालो -- प्रतिज्ञा का प्रकटीकरण ।

एक दर्दभरे " ढावलो-गीद" का उदाहरण प्रस्तुत है --

" मीया मोरे तमारो नानक्या से पेटे माँ घाल गोकलो भीया --

या - हि - यों, या - हि - यॉं ।

बापू रे तमारे नानकी सी बेटीन,पागडी माँ घाल गोखला र ..
या - हि -- यॉं - या - हि ... यॉं । ....

(हे भैया, अपनी प्यारी बहन को अपने छोटे से पेट में रखकर छिपा लो ना । हे बापू ! अपनी छोटी बेटी को अपनी पगडी में रखकर छिपा लो ना । हे भैया,सिर्फ एक घंटे के लिए अपनी पैरण की जेब में रखकर छिपा लो ना ।)

गीत के अंतिम चरणों में -- " या - हि - याँ !" के रूप में करुण हिचकियाँ ली जाती हैं जिन्हें " ठणाको " कहते हैं । एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है --

" भीया योरे तारी भेनेन, कागदेरी पूड ।
करन तारे झारे मरी या खीसेन ।
घडी एक घाउ गोकले मीया --
या - हि - याँ, या - हि - याँ ।
केलन केवडो रो, मुंडे जसे आपणो झुंड भीया वोरे ।....

(हे भैया,कागज की पुडिया बनाकर अपनी बहन को एक घडी के लिए छिपा लो न । हे भैया ! केले और केवडे के समूह के समान ही अपना भी झुंड है, इससे मुझे विलग क्यों करते हो ?)

वियोग की कल्पना मात्र असहनीय होने के कारण दुल्हिन स्वयं को जाल में फँसी हिरनी के समान मानती है --

जंगलेरी हरणी कुं फंदेमास पडाई । जूं तारी बेटी सपडाई बापू ।
खाळीयारी मछली कुं जाळेमास,सपडाई .. तूं ताई बेटी सपडाई बापू ।
सरकारे कायदे जसों सासु सादेरो कायदो । बुंदग्यारी बंदगी जसो सासु सरोखी बंदगी --

(जंगल की हिरनी क्यों फंदे में फँस गई ? जंगल की हिरनी के समान ही हे बापू तेरी बेटी जाल में फंस गयी है । पानी की मछली क्यों जाल में फँस गयी ? इस मछली की तरह ही तुम्हारी बेटी शादी के जाल में फँस गई है । सरकारी के समान ही सास-ससुर के कानून बडे कठोर होते हैं, अब उन कानूनों को मुझे मानना पडेगा ।

विदाई की करुणा की चरम सीमा तब आती है जब दुल्हन ससुराल जाने के लिए मजबूरन " देजू " (सजा हुआ बैल,जिसपर बहू ससुराल जाती है) तक पहुँचती है । " ढावला की चरमावस्था " हवेली" है । "हवेली " दुल्हन के द्वारा एकाकी स्वर में गाया जानेवाला करुण गीत है । वह अपने माँ - बाप, भाई - बहनों, रिश्तेदार। एवं तांडे के निवासियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए ईश्वर से उनकी भलाई की कामना करती है । यथा --

येया, कोणा, पालो कोणा पोसो,कोणा भोगा,स्कराज हियाँ ।

येमा याडी पाली, बाप पोसो, सासु भोगा स्कराज हिया ।

(हे माता मुझे किसने पाला ? किसने मेरी परवरिश की ? कौन मेरी सेवाओं का लाभ उठाएगा ? हे माँ तूने तुझे पाला और बापू ने मरी परवरिश की । लेकिन जब सास ही मुझ से सेवा कराएगी ।)

बंजारा जाति घुमन्तू होने के कारण ससुराल जाने के बाद कन्या की माँ - बाप से पुन: भेंट असंभवही रहती है --

सुतो को जागो रे बा ।

मर वाय के बापू खिडकी, जो खोल रे वो ।

तारी डोली रे विराजी रे, बाप रे भूके बेटा ।

(हे माता ! हे पिता ! अपनी लडकी की याद अवश्य मन में रखना । अब मैं आपकी कन्या नहीं रही - पराधीन बन गई । .....

कन्या की वास्तविक विदाई " हवेली गीद " के शुरू होने पर होती है । " नवलेरी" (दुल्हन) " देवू" (बैल) की पीठ पर तांडे की ओर मुँह करके खडी होती है ।" तंगडी" (भेंट में मिली वस्तुओं की थैली) भी बैल की पीठ पर रखी जाती है । अब कन्या हवेली गीत गाते हुए चारों ओर मुँह फेर कर सभी को प्रणाम करती है । इसके बाद उसे बैल की पीठ पर से उतार दिया जाता है । पूरे तांडे के लोग उसको घेर कर इकट्ठा हो जाते हैं और करुणा की धारा प्रवाहित होने लगती है । माता-पिता, भाई बहनों एवं सखियों की दशा बडी दयनीय होती है । रोती हुई कन्या जाते जाते भी तांडे के प्रति ईश्वर से आशीर्वाद ही माँगती है --

मारी बापूरी नंगरी,

मारी नाइकेरी नंगरी,हळी भरी रखाडेस ।

धुलर - सु बदेस, लिमडा - सु लेय देस ।

मारी बापूरी नगरी,हळी भरी खाडेस ।

(हे भगवान । मेरे माता-पिता और नायक के इस तांडे को समृद्ध रखना । यहाँ के गूलर और नीम के पेड हमेशा हरे भरे और फल-फूलों से लदे रहें ।

प्रत्येक माता - पिता की यह इच्छा होती है कि उनकी पुत्री उत्तम गृहिणी बनकर ससुराल में सुखी रहे । बंजारा कन्या

माता पिता की कीर्ति को उज्ज्वल करने का आश्वासन देती है --

रंगो जुनावा,जुनावीयु । रूपो जुनापा जुनापीयु ।

नाके भाईन निकाल्यु । तो भी तमन्ना वोलमो अये को नीहु ।

मेरा नायक बापू । हवेली या - हि - यॉं ।

(मैं पति-गृह में अच्छा आचरण करूँगी । हमेशा बडों की आज्ञा मानूँगी । वहाँ में कष्ट के साथ जीवन बिताऊँगी,जैसे चाँदी भट्टी की आग में तपकर शुद्ध होती है, वैसे ही मैं भी कष्टों में उज्ज्वल होऊँगी । सुई की नाक की डोरी की तरह बडों की आज्ञा में रहूँगी ।)

"मलाला" या " मलालो" करुणा की तीसरी एवं अंतिम अवस्था है ।"मलालो" का अर्थ है शुभ कामना या सौगंध-गीत । इन गीतों में कन्या अपने परिवार तथा तांडे के प्रति शुभकामना व्यक्त करती है तथा ससुराल में अनुशासन,सच्चरित्रता तथा मर्यादा के अनुसार रहने की प्रतिज्ञा करती है । ये गीत गाते समय दुल्हन तांडे के छोटे छोटे रोते बिलखते बच्चों को अपने हृदय से लगा लेती है तथा उनके मुँह, माथे तथा पीठ पर हाथ फेरकर उनका माथा चूमती है ।

मृत्यु -संस्कार के गीत :(मुंडोमाण्डो गीद)

मृत्यु ध्रुव-सत्य है । बंजारोंमें मृत्युगीत दो प्रकार के होते हैं -- प्रथम-मृत व्यक्ति के गुणों का वर्णन करने वाले तथा द्वितीय - उसकी मृत्यु से उत्पन्न पीडा एवं व्यथा की अभिव्यक्ति करनेवाले । बालक की मृत्यु हो जाने पर उसकी सुंदरता,कोमलता आदि का भी विशद वर्णन किया जाता है ।

(इन) मृत्युगीतों में प्रधानत: मृतक के अभाव से उत्पन्न कष्टों केवर्णन की होती है । स्त्रियों के संतप्त हृदय में जो भाव अनायास आ जाते हैं, वे गीतों द्वारा प्रकट होते हैं । इनमें से कुछ गीत पूरे नहीं होते बल्कि मृतक की जो बातें याद आती हैं,उनके संबंध में एक या दो कडी ही गा दी जाती हैं ।

पति की मृत्यु पर पत्नी अपनी निराधारता का कथन करती है --

मने जे कांई केगो सायेबा रे रे - या - हि - यॉं ।
तारे बाळ बच्चे रो रखवाली --
केन करेगो सायेबा - या - हि - यॉं ।

(बिना कुछ कहे तुम चले गए । अब तुम्हारे बाल बच्चों की रखवाली कौन करेगा ? उन्हें किसके सहारे पर छोडकर गए हो ?)

पत्नी की मृत्यु पर पति का विलाप भी इसी प्रकार का होता है --

मन कांई के गीये । ई ऽ ई ऽ ऽ ई ऽ ऽ ऽ। बाटी करण कूण घालिये ।
तार घच्चा पळंर कूण सेवा करोये । बाल बच्चा भो कांई वेला चालगी

(कौन रोटियाँ बनाकर देगा ? बाल बच्चों को कौन देखेगा ?)

पुत्र की मृत्यु पर माता द्वारा किया गया विलाप अत्यधिक हृदय-विदारक होता है। थोडे शब्दों में ही हृदय की व्यथा की तीव्रता प्रकट होती है --

तारी येजे याडीन कांई हिकैगो लेंइये कारो - आ-हि-यौं

मणजे कुणसी बाते रे अकेले घाल गो लडे का ...

(हे बेटे तू मुझ से कुछ कह कर क्यों नहीं गया ? मुझ से होशियारी की बाते क्यों नहीं करके गया ? हाय ! मेरा अकेला बेटा भी चल बसा ।)

पिता के पुत्र-शोक की अभिव्यक्ति निम्न शब्दों में हुई है --

स्वार दोऊ माँ कूण जाये बेटा। तारे बापन कांई के गो बेटा।

कुणसी बातें अक्ल घाल गो बेटा। अब कोई कऊ बेटा, अब कोई कऊ बेटा।

(अब सुबह होते ही खेत में चराने के लिए जानवरों को कौन लेकर जाएगा ? अब तेरे बिना मैं क्या करूँ रे बेटे ?)

किसी वृद्ध या वृद्धा की मृत्यु होने पर उसकी आत्मा की शांति हेतु भक्ति तथा वैराग्य के भजनयुक्त गीत गाए जाते हैं। इन गीतों में बंजारा संत सेवालाल आदि की महिमा का वर्णन होता है।

: व्रत - अनुष्ठानों के गीत :

- बंजारा : व्रत - उत्सव , पर्व - त्यौहारों के गीत -

भारतीय जन-जीवन में विभिन्न प्रकार के धार्मिक एवं सांस्कृतिक उत्सव-पर्वो का बडा ही महत्त्व है। मनोरंजन एवं सांस्कृतिक परंपरा के निर्वाह की दृष्टि से ये पर्वोत्सव एवं ऋतु-उत्सव लोक-जीवन तथा लोक मानस के अनिवार्य अंग बन गए हैं।

विविध ऋतुओं के आगमन पर और उससे संबंध रखनेवाले उत्सवों पर बंजारा लोक-मानस में उत्साह, उल्लास एवं अनुराग की लहरें नर्तन करने लगती हैं। व्रत,उत्सव, पर्व तथा विविध त्यौहारों से संबंधित गीतों का अमित भंडार बंजारा लोक-साहित्य में भरा पडा है।

व्रत-उपासनाएँ -

किसी सम्यक् संकल्पन-सिद्ध भाव से किया जानेवाला क्रिया विशेष रूप ही व्रत कहलाता है।[6] " वरण " अर्थ में प्रयुक्त व्रत का प्रयोग भक्षणभेद, पुण्य साधन तथा उपवासादि नियमभेद में होता है।[7] व्रत आत्मशुद्धि ,परमात्म चिंतन तथा आध्यात्मि उन्नति का साधन है। भारतीय लोक जीवन में व्रत उपवास का अद्वितीय स्थान है इसलि प्राचीन काल से इसकी परंपरा चली आ रही है। मनोजनित कामनाओं की पूर्ति तथा पारिवारिक जीवन में सुख-शांति की प्राप्ति ही व्रत पालन का उद्देश्य होता है।

बंजारा स्त्रियों का विश्वास है कि इन व्रत-अनुष्ठानों से मनुष्य भौतिक एवं आधिभौतिक बाधाओं से मुक्त होता है। इसी कारण स्त्रियाँ इन अवसरो पर भक्ति तथा श्रद्धापूर्वक गीत गाया करती हैं।

नागपंचमी -

श्रावण शुक्ला पंचमी के दिन " नागपंचमी" का त्यौहार आता है। इस दिन प्रत्येक घर में नाग पूजा की जाती है। प्रात:काल घर की बाहरी दीवाल को गोबर से लीपा जाता है। घर के मुख्यद्वार पर गोबर से दो सर्पाकृतियाँ अंकित की जाती हैं। दूध और लापसी से भरा पात्र नाग के निमित्त किसी एकांत स्थल में रख दिया जाता है। इन लोगों का विश्वास है कि इस दिन नागपूजा करने से सर्प-दंश का भय समाप्त हो जाता है। इस अवसर पर नागदेवता के और गार्हस्थ्य-जीवन के विविध प्रसंगों के गीत गाए जाते हैं। इन गीतों में सुख-दुख के रंगों से मानव जीवन की अनेक भावात्मक स्थितियों का चित्रांकन होता है।

पारिवारिक जीवन में भाई-बहन का संबंध पवित्रता एवं स्नेह से युक्त होता है।

बहन भाई के प्रति वही निश्छल मंगलकामना का भाव रखता है जो माता का अपने पुत्र के प्रति होता है। जो भाई आपत्तियों एवं आततायियों से अपनी बहन की रक्षा न कर सके उस " बीरन " पर किस बहन को अभिमान होगा ? किंतु सभी भाई इस निर्मल स्नेह का पालन नहीं कर पाते --

नागर पंचमी री सन आयो... मेनेन बलायेन भीया गेव गेच बाईए।
भेनेन बलान भीया लायो बाईए। याडी आट देखरीच बाईए।
बंडा पटकन मेनेन मारोच मिया। मन्का केकोनी लासरीया वीरा।
मारो डाग तोन देती मुंडोती मांगो कोनी मर मारे तू मरगो पातळ्या वीरा।
गुजरीया वीरा तू मांगो बेतोती म देती मन मारो करण बंडा लायो वीरा।
बंडा लेती नाग निकलो वीरा। मियान एकड लियो नाथ,भेणारोय।
मन्का के कोनी लासरीया वीरा मारी डाग लो देती तोन वीरा।

नागपंचमी के अवसर पर एक भाई अपनी बहिन को उसके पतिगृह से विदा कराकर ला रहा है। मार्ग में वे दोनों एक स्थान पर भोजन के लिए रुकते हैं। भोजन करने के बाद बहिन को झपकी आ गई। उसके गहने देखकर भाई पाप ग्रस्त हो उठा। अपनी बहन की हत्या करने के लिए वह एक पत्थर उठाता है तभी एक सर्प आकर उस पापी का काम तमाम कर देता है। जागने पर अपने भाई के दुष्कृत्य पर बहन शोकविह्वल हो जाती है। क्या वह अपने गहने स्वेच्छा से भाई को नहीं दे सकती थी ? यही करुण विलाप उक्त गीत में भरा हुआ है। बहन की पवित्र भावविह्वलता का मार्मिक चित्र उतर आया है।

गणगार

बंजारा स्त्रियाँ सावन या भादों के महीने में " गणगौर " का त्यौहार मनाती हैं। इसे तीज,गौरीपूजा,पिडिया लगाना के नामों से भी जाना जाता है।

बंजारों में गणगौर का अनुष्ठान दस दिनों तक बनाया जाता है। इस अवसर पर टाँडे की समस्त कुँवारियां एकत्र होकर बन में जाकर बाँबी की मिट्टी लाती हैं और उसे एक गमले में भरकर उसमें गेहूँ बो देती हैं। सात दिनों तक नियमित रूप से सींचने से पौधे बड़े हो जाते हैं। नवमे दिन लड़के-लड़कियाँ-भाई - बहनें मिलकर गमले की वल्मीक की मिट्टी से " गुडियाँ " बनाती हैं, जिन्हें " गणगौर " कहा जाता है। इन गुडियो का शृंगार किया जाता है, वस्त्राभूषणों से सजाया जाता है। अनंतर इन सजी-धजी गुडियों को गेहूँ के गमले के चारों ओर वर्तुलाकार रखा जाता है। फिर लड़कियाँ हाथो

में हाथ दिए गोल घेरा बनाकर गमले के चारों ओर आत्मविभोर होकर गीत गाते हुए रात भर नृत्य करती हैं। गीतों के स्वर में एक विशेष कोमलता रहती है। कुंवारियाँ अपनी रसीली तानों से जब वातावरण में सुधा बरसाने लगती हैं तो मनभावनी सावन की सुहानी रात में स्वरों का एक समाँ बँध जाता है। इस अनुष्ठान का उद्देश्य भाई बहन में प्रेम की अभिवृद्धि तथा सुयोग्य जीवन साथी की माँग हेतु प्रार्थना होती है। कई गीतों में प्रकृति तथा राधा-कृष्ण की प्रणय लीलाओं का वर्णन भी अंकित होता है। इस दृष्टि से निम्नांकित गीत द्रष्टव्य है --

। सोळशो शेली तारी रे कसन जी,साळशो शेळी तारी रे।। टेक.
शेलीन तीज बोराया रे कसनजी। शेली भूरीया बाळी रे कसन जी।
शेली लडकी बाळी रे कसनजी। शेळी हाँसली बाळी रे कसन जी।
अबदा नंगरी सारी रे कसन जी। गोकुळ नंगरी तारी रे कसन जी।

स्वाभाविकता,सरलता तथा मधुर प्रेम का सामंजस्य एवं उच्च भावों का प्रकटीकरण ये " गणगौर " के गीतों की विशेषताएँ हैं। ये गीत रसात्मक अनुभूति और आनंदोपलब्धि का साधारणीकरण कराते हैं। अतएव इन गीतों की रसीली स्वरलहरी श्रोताओं के मन को मोहाविष्ट-सा कर देती है।

बंजारा लोक गीतों में प्रेमी-प्रेमिका की छेड़छाड, प्रेम का उत्तेजित विलास आदि नायिका-भेद के रीतिकालीन रूप तो नहीं मिलते परंतु स्वाभाविक रूप से किया गया शृंगार वर्णन दिखाई देता है। परकीया के स्थान पर स्वकीया नायिका का प्राधान्य है। इसका कारण धार्मिक तथा सामाजिक वातावरण का प्रभाव हो सकता है। घुमक्कड जाति होने के कारण प्रेम-व्यापार को इनके समाज तथा लोकगीतों में कोई स्थान नहीं दिया गया है। प्रेमी - प्रेमिका के रूप में पति-पत्नी को ही प्रस्तुत किया गया है

छोरा तू तो भेटेरा छळाऊटे।
लाला लासरीयान् खेळी गुजरिया।
छोरा तू तो भूरीया केन गेतो रे। लाला
छोरा तू तो लान बतायो रमणान। लाला

पति पत्नी के बीच की अलबेली छेडछाड के साथ ही पत्नी की ओर से प्रियतमा से विभिन्न आभूषणों की माँग का भी वर्णन है।

"गणगौर " समारोह के दसवें दिन, जिसे " तीज" कहते हैं, कुँवारियाँ गेहूँ के पौधों को उखाडकर टाँडे के प्रौढ लोगों को आदर एवं प्रेम के प्रतीक के रूप में भेंट देती हैं इस भेंट को प्रौढ लोग आगामी वर्ष तक सुरक्षित रखते हैं। दसवें दिन संध्या के समय

गुडियों को किसी नाले में विसर्जित किया जाता है। इसके उपरांत लड़कियाँ " पीडिया खालायेरो " नामक खेल खेलते हैं, जिनमें उनकी शक्ति की परीक्षा होती है।

इन दस दिनों के अवसर पर विवाहेच्छु नवयुवक विवाह योग्य नव युवतियों को "भेंट " देते हैं। नवयुवक की भेंट का अर्थ यह है कि वह भेंट पात्र उसे पसंद है और वह उस पर अनुरक्त है। भेंट स्वीकार का अर्थ कन्या की मौन सम्मति लगाया जाता है। उसी वर्ष उन दोनों की शादी हो जाती है।

"गणगौर" के समारोह के माध्यम से कुमारी युवतियाँ चतुर प्रौढ स्त्रियों से उत्सव पर्वों के गीत, नृत्य, शौर्यकथाएँ तथा पहेलियाँ आदि सीख लेती हैं। इसी प्रकार नवयुवक भी गीतों एवं वाद्यों की शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं।

दीपदान व्रत

कार्तिकी अमावस्या को " दीपदान" (मेरा करेरो) - आरती उतारने का व्रत मनाया जाता है। दीपावली के दिन लक्ष्मी पूजन के अतिरिक्त इस अनुष्ठान की प्रथा बंजारा कुमारियों में प्रचलित है। इस अवसर पर टाँडे की अविवाहित युवतियाँ प्रातःकाल गीत गाते हुए खेत में जाती हैं। वहाँ विभिन्न मनोविनोद करते हुए फूल तोड़ती हैं और फिर गाते हुए ही वापस लौटती हैं। प्रभात वेला में उनकी स्वर-लहरियाँ एक अद्भुत समाँ बाँध देती हैं। वापस आकर वे सर्वप्रथम टाँडा-नायक के घर जाती हैं और --

" वर से दादेर कोट दवाली
याडी तोना मेरा, बापू तोना मेरा।"

का गीत (जिसे " मेरा" गीत कहते हैं) गाते हुए उसकी आरती उतारती हैं। टाँडा नायक उन्हें उपहार देता है। अब वे प्रत्येक घर में जाकर उस घर के पूर्वजों के नाम ले लेकर, उनकी स्तुति करते हुए उन्हें बधाई देते हुए आरती उतारती हैं।

सांध्य-वेला में भी यह " दीपदान" समारोह चलता है। कुमारियाँ आरती उतारते हुए गीत गाती हैं --

लेवाड़या मेवाड़या बांड़या कुव्वा,
सुरी पुजाडिरो।
मो-या माते रो न्यांऊन स्याऊन
घण घण देस दिवाळी माता।

रात भर आरती का दीप प्रज्वलित रखा जाता है। रात्रि के समय टांडा नायक अपने घर में इन कुमारियों को एक भोज देता है।

"दीपदान " के पीछे टांडे के प्रत्येक वयस्क व्यक्ति के प्रति आदर एवं छोटों के प्रति प्यार की अभिव्यक्ति का उद्देश्य निहित है ।

" दीपदान" के " मेरा " गीतों की मधुरिमा अद्वितीय है । मधुर रस में सने हुए इन गीतों को सुनकर मानों प्रकृति सुंदरी अपनी सुधि-बुधि खो देती है । इन गीतों के रसीले स्वर-पंछी एक कंठ से दूसरे कंठ तक कुँवारियों के समूह में उडते फिरते हैं । क्वार की प्रसन्नता और रंगीन भावनाओं का अनोखा सौंदर्य इस गीत शैली की अभिव्यक्ति में ताने बाने का काम करते हैं । संगीत की धुन के साथ साथ उनके पैर भी थिरक उठते हैं और नृत्यु-गान की छटा बिखर जाती है --

धमधम गंदाव मिया केवडोर । सिसीयाम गंधाव मियाकेवडोर

मिया रे घरे आंग केवडोरे, आने तोड मत लिजो ।

खुंदो खुंदायो मिया केवडोरे, ओ न तोड मत लिजो ।

यदि हम " गणगौर" गीतों को बंजारा लोक साहित्य - निर्झरिणी का मधुर नाद कलरव कहें तो " मेरा" गीतों को विविध भावों का अभिसार कहना पडेगा । मेरा गीत गाने की एक विशिष्ट लय होती है जो बडी मनमोहक होती है ।

गोधन

कार्तिकी अमावस्या के " दीपदान" व्रत के साथ ही साथ कृष्ण अमावस्या (काली अमावस्या ,कालीमास) के दिन टांडे की लडकियाँ " गोधन" मनाती हैं ।

घर के आंगन में गोबर से बनाई हुई पांच मूर्तियों की टांडे की कुमारियाँ आरती उतारती हैं और परिक्रमा करते हुए " गोदण" (गोधन) करोरो " के गीत गाती हैं --

गावा पूजे न चाल गौरी, गवा पूजे न चाल ।

गौरी चालिए आडो दडिया दे चाळी ।

गौरी चालिए, गवा पूजे न चाळ ।

बंजारा लडकियाँ गोधन की पूजा करते समय और गायों की आरती उतारते समय उनकी स्तुति के रूप में गीत गाती हैं--

हम पुंजीया बाई गुरूरी गोदण ।

हम पुंजीयाँ बाई गवळी रो वाडा ।

हम पुंजीया बाई सनारवाडा । हम...

कठोर परिश्रम तथा जीवन की विषम परिस्थितियों के बीच भी बंजारों के पर मधुर मुस्कान झलकती है । इन पर्वों के अवसर पर बंजारा लडकियों के चेहरों पर

हर्षोल्लास की अमित झाँकी दिखाई देती है। गोधन पर्व का उद्देश्य भाई बहन में प्रेम-भाव की वृद्धि भी है।

दीपावली :(दवाळी)

दीपावली भारत का अत्यंत प्राचीन सांस्कृतिक पर्व है। बंजारों में दीवाली को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। " दवाली लडकियों का त्यौहार होने के कारण और अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। धन्तेरस,नरक चौदस एवं लक्ष्मीपूजन की प्रथा बंजारों में नहीं है। कार्तिकी अमावस्या के दिन टाँडे की कुमारियाँ लक्ष्मी पूजन के बदले एकत्र होकर " दीपदान (मेरा करेरो) का उत्सव धूमधाम से मनाया जाता है। इस अमावस्या को " काळी अमावस्या" या " काली मास " कहते हैं। लड्डू,गुझिया,जेलबी जैसे पक्वान बनाने के बदले बंजारा घरों में बकरा काटकर भोज का आयोजन किया जाता है। इसी दिन टाँडे की लडकियाँ गोधन की पूजा करती हैं।

दीवाळी (दीपदान) के दूसरे दिन पूर्वजों की पूजा की जाती है। पितरों को पानी देकर उनका श्राद्ध किया जाता है, जिसे " डोक डोकरान धबकारो " कहते हैं। इस अवसर पर घर की पूरी सफाई और चूल्हे की पोताई की जाती है। गेहूँ-बाजरे की लपसी , चावल आदि पदार्थ चूल्हे की अग्नि को अर्पित कर पितरों को संतुष्ट किया जाता है।

कार्तिक शुक्ल द्वितीया के दिन बंजारे " भैयादूज" नहीं मनाते। इस प्रकार वे दीवाळी केवल दो दिन मनाते हैं लेकिन धूमधाम और उत्साह के साथ।

होली :

होली का वासंती पर्व भारतीय सांस्कृतिक परंपरा का सबसे अधिक व्यापक,उदात्त एवं उल्लासमय उत्सव है। सम्पूर्ण भारत में यह बडी धूमधाम एवं अत्यधिक हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। फाल्गुन में होलिकोत्सव के अवसर पर गाए जानेवाले गीतों को " होली गीत " या " फगुआ" कहते हैं।

बंजारों में वसंतोत्सव का उल्लास होली के रूप में फूट पडता है। इस उत्साह एवं उमंग के पर्व को बंजारे बडी धूमधाम से मनाते हैं। इनकी होली फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा की रात को नहीं जलाई जाती। इस समय ये लोग घास-फूस,खेतों का झाड-झंखाड, लकडियाँ एवं उपले आदि एकत्रित करते हैं। टाँडे के करीब के गांवों में जाकर जहाँ होली जलाई गई है, वहाँ से पाँच-पाँच उपले माँग लाते हैं। पूर्णिमा के दूसरे दिन प्रात:काल ये होलिका-दहन करते हैं। इसे वे " काम पूजेरे "(कामदेव की पूजा) मानते

हैं । इस प्रज्वलित अग्नि के चारों ओर बंजारा स्त्री-पुरुष एक दूसरे का हाथ पकडकर वर्तुलाकार होकर " लेंगी नृत्य " करते हैं । इसे बनरा नृत्य " भी कहते हैं । इस मादक वातावरण के अवसर पर " गेरिया" (अविवाहित लडके) और " गेरानी " (अविवा लडकियाँ) अपने विशिष्ट वाद्यों के साथ गीत गाते हुए " लेंगी " अथवा " विंजाना" नृत्य करते हैं तथा एक दूसरे पर रंग उडाते हुए आनंदविभोर हो जाते हैं । वे आपस में छेडछाड और मारपीट भी करते हैं । इस कृत्य में गोपी कृष्ण लीलाओं का प्रतिबिम्ब दिखाई पडता है । गोकुल में होलिकोत्सव के अवसर पर स्त्री-पुरुषों में छेडछाड होती थी । आज भी बरसाने में स्त्रियाँ पुरुषों को बाँसों से मारती हैं । सूरदास ने भी इस उल्लेख किया है ।[10]

होलिका दहन के समय दो " गेरिया" एरंड का पाँच हाथ लंबा पौधा मूल से उखाडकर लाते हैं और उस पौधे में वस्त्र तथा पांच - छः पूडियाँ बांधकर उसे होली के मध्य में रख देते हैं । होली जल जाने के बाद पौधे को निकालकर वस्त्र और पूडियाँ अलग कर लेते हैं तथा पौधे को नाले में फेंक देते हैं । " गेरिया" फिर होली के पास जाकर भीगे हुए वस्त्र के जल को छिडककर पूडियाँ होली को चढाते हैं और होली की सात बार परिक्रमा करते हैं । अन्न एवं जल द्वारा अग्नि को शांत किया जाता है ।

इसके बाद उक्त वस्त्र को, जिसे" छाटिया" कहते हैं, ये " गेरिया" अपने माथे पर बाँध लेते हैं । ऐसा करनेवाले लडकों को " गेरिया दाण्डो काढे बाळ " (होली के सम्मानित जवान लडके) कहा जाता है । दिन भर नृत्य गीतादि के साथ होली का समारोह चलता ही रहता है । इन गीतों में अन्य गीतों की अपेक्षा गेयता की मात्रा कम दीख पडती है, लेकिन अनुभावों का सुंदर चित्रण होता है । इसके अतिरिक्त इनके संवाद बडे ही संक्षिप्त तथा मार्मिक होते हैं । कहीं कहीं हास्य का पुट भी रहता है । "वांझणा" गीत का एक नमूना प्रस्तुत है --

अन् भाई रे अन् भोजीयान जलमीरे काळी रातरो ।असोत जलमीर काळी अमावस्या
मायरो हटको, भोजिया नाही मानो । बापेरो हटको, भोजिया नहीं मानो ।
अन् निलडीन भिड तूरक छिक तडाक्कीय । अन् छिकेरो हटको रक भोजिया मानो
- कोनी ।...

होली के अवसर पर गाए जानेवाले इन"बांझणा" गीतों की गति उनकी भाषा का बंध और स्वरों का योग अत्यंत ओजस्वी एवं मीठा होता है । प्रेम ,करुणा, वैराग्य आदि विविध मनोभावों से रंजित इन गीतों में विश्व मानवता के निराशापूर्ण हृदय को आल्हादित करने की अनूठी क्षमता है ।

इसी प्रकार होली के अवसर पर पुरुषों द्वारा किए जानेवाले " ढेंगी नृत्य " के साथ गाए जानेवाले गीत मनोरंजनार्थ होते हैं --

झीणी झीणी रेतीम बेस साळा सोंविया ।.....

इन गीतों की मधुर गूँज इनके श्रमशील जीवन में सरसता का संचार करती हुई बरबस मनको मोह लेती है । सांस्कृतिक प्रसंगों के साथ ही इन गीतों में जन-जीवन की झाँकी भी मिलती है । जीवन के सभी क्षेत्रों का स्पर्श ये करते हैं । होली के अवसर पर जहाँ एक ओर अबीर और गुलाल बाह्य वातावरण को रंगीन बनाते हैं, वहीं इन लोकगीतों की सरसता हृदयों को रस-प्लावित कर देती है । इनमें उनके भोले तथा सुकुमार हृदयों की मधुर झाँकी मिलती है । इनके रंगीले मस्तीभरे जीवन की अमिट छा इन गीतों पर अंकित है ।

संध्या के समय स्त्री-पुरुष होली की राख मुठ्ठी में भरकर गीत गाते हुए अपने टाँडे की ओर वापस आते हैं और उसका टीका टाँडे के देवताओं को लगाते हैं । फिर टांडे के नायक तथा अन्य बुजुर्गों के माथे पर उसका टीका लगाकर उनसे अभिवादन करते हैं और निम्नलिखित गीत गाते हैं --

नागा परेरो नागर स्वामी
स्वामीच अवधूत रे ।
अब्बे आयो तांडेर माई --
लगाऊ रो बभूत रे ।

गीत गाते हुए उस राख का टीका एक दूसरे के मस्तक पर लगाते हैं । इस समारोह के बाद सभी स्त्री-पुरुष घर जाकर स्नान करते हैं ।

फिर ये लोग दोपहर चार बजे तक संस्कार गीतों में वर्णित "छोरान घुंडेरो " (बरड़ी समारोह) मनाते के लिए लड़के के घर के आँगन में एकत्र होते हैं । इसी प्रकार आमोद-प्रमोद के साथ संध्या तक यह समारोह चलता रहता है । संध्या में टांडे के सामूहिक भोजन के बाद समारोह समाप्त होता है ।

दूसरे दिन दीवाली के अवसर पर की जानेवाली " पितृ-पूजा" का आयोजन होता है । तीसरे दिन" गेर घुंडेरो " (होली का सम्मानित युवक) निश्चित करने का समारोह होता है । इस समारोह में स्त्री-पुरुष शृंगारिक गीत गाते गाते बेहोश होक लेंगी नृत्य " करते हैं ।

२

रंगोत्सव (फाग)

होली के त्यौहार से " फाग " भी जुडा रहता है । उत्तर भारत में होली के

दूसरे दिन तथा महाराष्ट्र में पांचवे दिन " रंगपंचमी " को " फाग " मनाया जाता है। बंजारों में " फाग " तीसरे दिन मनाया जाता है। इस अवसर पर समस्त टाँडे के स्त्री-पुरुष एक दूसरे पर रंग उडाते हुए " फागेर गीत" के साथ फागेर नृत्य करते हैं। कई स्थानों पर रंग के बदले पानी में गोबर और कोचड मिलाकर उसे फेंकते हैं --

फागणाम भाई भाई रे
झाड कसेरो हाल, फागणाम भाई भाई रे।
झाड लिंबरो हाल, फागणाम भाई भाई रे।

इस प्रकार विभिन्न वृक्षों के नाम लेकर गीत गाते एवं नृत्य करते हैं। होली और फाग में टाँडे के लोगों के साथ ही आस पास के छोटे टाँडों से भी लोग आकर हँसी खुशी के साथ भाग लेते हैं। इस दिन बंजारे " होळीर पोस " (होली की खुशी) माँगते हैं। वे हाथ में थाली लेकर टाँडे में घूम घूमकर पैसा इकट्ठा करते हैं। फिर उन पैसों से बकरा, शराब, ताडी आदि खरीदकर टाँडे के प्रत्येक घर में उसे वितरित करते हैं। इसे " गेर करेरो " कहते हैं।" गेर करेरो " का उत्सव ही होली की समाप्ति सूचित करता है।

दशहरा (दसरा)

आश्विन शुक्ला दशमी के दिन बंजारे दशहरे का त्यौहार मनाते हैं। उत्तर भारत में बंजारों में रामलीला का भी आयोजन होता है। लेकिन ये घटस्थापना नहीं करते। कुल देवता की पूजा कर बकरे की बलि दी जाती है तथा बिरादरी वालों को प्रीति भोज दिया जाता है।

इन बडे त्यौहारों के अतिरिक्त कृष्ण-जन्माष्टमी, रामनवमी, महाशिवरात्रि, रथ सप्तमी आदि त्यौहार भी बंजारा - समाज मनाता है। यों तो बंजारा औरतें आठ आठ दिन तक बिना स्नान किए रहती हैं किंतु इन त्यौहारों के अवसर पर ये नहा धोकर नए वस्त्रादि धारण करती हैं। व्रत पूजा अनुष्ठान आदि करके अच्छे अच्छे पकवान बनाती हैं।

मेले

बंजारा जीवन में विभिन्न मेले भी रस घोलने का कार्य करते हैं। इन अवसरों पर लोग नए एवं रंग-बिरंगे कपडे पहनते हैं, विभिन्न पकवान बनाए जाते हैं तथा अनेक प्रकार के मनोरंजक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इन मेलों का सांस्कृतिक एवं व्यापारिक महत्त्व है। मेले की दूकानों से आवश्यकता की वस्तुओं के साथ ही बैल, गाय, भैंस, बकरी आदि पशुओं का क्रय-विक्रय करने का सुअवसर भी प्राप्त होता है।

पारिवारिक गीत

बंजारा - पारिवारिक गीत

परिवार मानवीय संगठनों की मूल इकाई है। "समष्टि की भावना ही तो परिवार का मूलाधार है।[11] " बच्चों का पालन-पोषण, रति-प्रवृत्ति नियंत्रण, सामाजिक बपौती का संग्रह आदि कार्य परिवार के प्रमुख कार्य माने जाते हैं।[12] इसलिए मनुष्य का परिवार और समाज से बड़ा घनिष्ठ संबंध होता है। लोकमानस का दर्पण होने के कारण लोकगीतों में जीवन के सभी पक्षों का चित्रण मिलता है।

बंजारा लोकगीतों की संवेदना बहुत व्यापक है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के कंठ से गीतों की धारा अधिक प्रवाहित हुई है। फलस्वरूप इन गीतों का नारी-जीवन से घनिष्ठ संबंध है। उनके जीवन की कथा-व्यथा इनमें अंकित हो गई है। ये गीत नारी मन की भाव-व्यंजना के वाहक हैं। गार्हस्थ्य-जीवन की मार्मिक व्यंजना के साथ साथ पारिवारिक संबंधों - पिता-पुत्री, भाई - बहन, पति - पत्नी, सास - बहू, ननद - भावज, देवर - भाभी, मां - बेटी, ससुर - बहु, जेठानी - देवरानी, सखी - सहेली आदि - की मधुरतम अभिव्यक्ति भी इन गीतों में हुई है। भाई बहिन का निश्छल स्नेह, माँ - बेटी, का सरल, स्निग्ध प्रेम और दाम्पत्य - जीवन के विविध पक्ष इन लोकगीतों में व्यक्त हुए हैं।

पारिवारिक संगठन

बंजारा - तांडा के परिवारों में संगठन एवं सहयोग का अकृत्रिम रूप दिखाई देता है। कोई भी उत्सव समारोह तब तक शुरू नहीं होता, जब तक तांडे के सब संबंधी एकत्रित न हो जाय। नारी जीवन में मातृत्व-प्राप्ति की घटना अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं आल्हादकारी मानी जाती है। यही कारण है कि पुत्र-जन्म की खुशी एक विशेष परिवार में ही सीमित न रहकर पूरे तांडे को प्रभावित करती है। बंजारा स्त्री के गर्भाधान के बाद जो गीत गाया जाता है, उसमें नारीसुलभ आशा - आकांक्षाएँ एवं हार्दिक प्रसन्नता के भाव मुखरित हो उठते हैं --

> सासूजी मेरे साहबजी को कहूँजी, डुंगर का डास-या मँगा दे जी।
>
> अबरू तो दाँख नही छे। दूध बतासा पीलो,
>
> बागों का बनफल खा लो। अबरू तो दांख नहीं छे।
>
> पीयर पूरी को वजना लागे, जेठानी मेरे जेठजी साय को कहीजे -

तांडे की स्त्रियों का कर्तव्य जच्चा-बच्चा की प्रारंभिक सेवा-सुश्रूषा तक ही

सीमित नहीं रहता । प्रसूति के बाद " निकासन" होने पर भी वे जच्चा के साथ रहती हैं । गीत गाते हुए जच्चा को प्रसूति-गृह के बाहर निकाल जाता है --

इस जच्चा ने जुल्म किया, अंग्रेजी जापा शुरू किया ।

दाई को बुलाना छोड दिया, नर्सों को बुलाना शुरू किया । इस जच्चा.

मातृत्व भाव :

स्त्री-जीवन की गाथा पुत्रोत्पत्ति से प्रारंभ हो जाती है । नवजात शिशु के धरती - स्पर्श करते ही माँ स्तनपान कराती है, झूले में झुलाती है, लोरी गाती है, राई-नोन उतारकर नजर उतारती है, कुदृष्टि से बचाने के "ढिठोना" (काजल का टीका) लगाती है । बच्चा यदि हृष्ट-पुष्ट हो तो चिंता कम रहती है, लेकिन दुर्बल अथवा अपंग शिशु के कारण माँ की व्याकुलता एवं बेचैनी का ओरछोर नहीं रहता । अपनी अंधी कन्या के लिए माता की तडप का यह चित्र कितना महान है --

मारी बांधलीरी लडकी गमाई, ओरी गती व्हाय बाई ।

यमुना नंदीमा किरणणा डुबुगो ,ओरी गती कशीच बाईए ।

आंबेलकुंडेम् नागपद्मिनी... केशर कुंडेम् दाना सुतेच ।....

माता अपनी अंधी कन्या के लिए इतनी चिंतित है कि वह केशरकुंड स्थित राक्षसों के मस्तक फोडकर उनके भेजे का हलुआ बनाकर अपनी कन्या को खिलाना चाहती है,ताकि वह ठीक हो सके ।

नटखट और हठी बच्चे को मनाने की कठिन साधना भी माँ को करनी पडती है । विविध वस्तुओं की लालच देकर शिशु को फुसलाने की कोशिश की जाती है --

काळी काळी घेळी । धोळो धोळो दूध ।

छपन्यास थोरा, रो मत रे छोरा ।रळी गळीम हिंड मत छोरा ।

छपन्या फरमत भोळे यारे जानिमा । आंधली पागडी सळ लिदोच ।....

कन्या का विवाह माता के लिए मिश्रित भावनाओं का जनक है । माता की " आँखों में आँसू " और " होठों पर हँसी " होती है । अपने ही शरीर के हाड मांस को विदा करते समय उसकी अन्तरात्मा में टीस उठती है --

बाली मातेरो गोदो छोडी चाली । धाणिरे घरेन दौडी आई ।

बापूंरो मेल छोडी चाली । बाली होडी गराडला घरेर आंगण ।

घाली कोरण बंगाइल घरेर आंगण ।बाली याडीन बलाइल घरेर आंगण.

एक ओर तो माता अपनी संतान के हितार्थ प्राणार्पण करने के लिए तैयार रहती है , दूसरी ओर सौतेली माँ का व्यवहार कटु एवं निष्ठुर रहा करता है । संतानों के

प्रति किए गए सौतेली माँ के दुर्व्यवहारों की करुण गाथा लोकगीतों में बिखरी पडी हैं। एक बंजारा लोकगीत में पुत्र इस दुर्व्यवहार का वर्णन करते हुए कहता है --

मारी मारी मासीय वेगो वनवासीय। बार मिना वेगे मासी चरारोचं भैंसीय।

तारे बेटान झिगलाए बेसीय। बार मिना वेगे मासी चरारोची भैंसीय।

तारे बेटान हाटेन मोलीय।

पितृत्व भाव

बंजारा लोकगीतों में पिता का पुत्री के प्रति असीम प्रेम दिखाई देता है। कन्या जैसे जैसे बडी होती है, वैसे वैसे उसके पिता की चिन्ता भी बढ़ती जाती है। योग्य वर की खोज की चिंता पिता के पूरे व्यक्तित्व को मथ डालती है। बंजारों में भी कन्या का विवाह पिता के लिए एक समस्या खडी कर देता है ---

पंच मंडेली राम रामिए बाईए। हमती आई परमळ केती....

हमारी रामोर कुंवार कन्या। परकमलकाचळी वीराज..हमारा ये बाई दसेच --
-- तुमारो।..

कन्या अब सयानी हो गई है। उसने विवाह की सीढी पर चरण रखा है। वह अपने कुल की प्रतिष्ठा जानती है। वह पिता से अनुरोध कर रही है कि पेटी हुए कीमती जेवरातों को बाहर निकालो। मेरा शृंगार करो --

ता - पर भूरिया पडोच। तो का कोनी लायोर हाशा।

तो का कोनी लायोर हाशा। तांगडी पर माला पडोच...

सप्तपदी के बाद जब कन्या पराई हो जाती है, तब माता ही नहीं पिता का हृदय भी द्रवित हो जाता है। अपनी बेटी कोयलबाई घर छोडकर चली जाएगी, यह चिंता उसके मन पर बोझ बनकर छा जाती है ---

आयो सगारो, साँकीनो, लेगो स्हेली में सुटाक।

कोयलबाई सीद चाली, छोडो दादाजी री बांगली ।।....

कन्या ससुराल के कष्टों से अवगत है। वह नेहर के सुखों को छोडकर सास-ससुर एवं पति की डाट फटकार सुनने नहीं जाना चाहती है --

तारे राजेमां आचो खादी आचो पीदी। तारे राजेमां मोड मोड सीळ।

तारे पागडीमा घडी गोकलेर नायक बापू। चकरी पागडी रे नसावी बापू।

माई - बहन का स्नेह -

भाई और बहन का स्नेह-संबंध अत्यधिक पवित्र होता है। ये एक ही डाल पर खिले हुए दो फूलों की तरह हैं। माता के बाद कन्या को परिवार में सर्वाधिक ममत्व

देनेवाला भाई ही होता है। भाई पर बहन को अभिमान होता है। बंजारा - समाज में भाई के प्रति निश्छल प्रेम के पवित्र संस्कार बहन के शैशव-काल से ही " बायार, लेंगी, घटिपेर, घुमर " आदि लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त होने लग जाते हैं। अन्य लोकगीतों की तरह बंजारा लोकगीतों में भी बहन भाई के लिए " वीर" शब्द का प्रयोग करती है।

बहन की कामना है कि भाई की यश-चंद्रिका चारों ओर बिखरे। भाई के दुश्मनों की असफलता की कामना करते हुए वह उन्हें दुत्कारती है --

घम घम गंदाव मिया केवडोर। खिसीयाम गंदा व मिया केवडोर।

मियारे घरे आंग केवडो रे, ओन तोड मत लिजो।

एक बहन अपने भाई को कोई बहुत बडा पदाधिकारी मानकर मोटर, तांगा, हवाई जहाज आदि साधनों से युक्त उसके रईसी थाटबाट की प्रशंसा करती है। वह उसे न पहचान पाने के लिए क्षमा याचना करती है --

मोटारेम बेटो जना ओळखीरे मियाम्। म पोलिस व्हिय कर बोली कोनी।

विमानेम बेटो जना ओळखीरे मियाम्। म शिलेदार व्हिय कर बोली कोनी।

टांगाम बेटो जना ओळखीरे मियाम्। म मामलेदार व्हिय कर बोली कोनी।

भाई की देखभाल करना बहन अपना कर्तव्य समझती है। भाई को मनपसंद भोजन बनाकर खिलाने से लेकर उसके कपडों तक बहन की निगाह रहती है। ऐसा करके बहन धन्य हो जाती है और बडे अभिमानपूर्वक अपनी सहेलियों से कहती हैं -

सोलापरेरो खाळिया, गंगाजळ वईजा।

मारे बिरणारे घडी धोती धोबी धोईजा।....

अपने भाई का गौरवगान करती हुई बहन कहती है कि मेरा भाई बडा सुघर, सुंदर है, पान खाने से उसका सौंदर्य और निखर गया है --

मारो मिया एकलो पान खाव। दो कलो पान खाव ...

बत्तेसी खालव बाईराय। मारो मिया एकलो पान खाव।...

भाभी के भाई की तुलना अपने भैया से करते हुए एक बहन भाभी के मन में भाई के प्रति प्रेम-जाग्रत करती है। पान खाए हुए माथे पर घुंघराले बालों की लट बिखराए हुए वह भाई कितना सुंदर दिखाई पड रहा है --

तारो वीरा कुंवाये ळबाजी छोरी ? पो पो पोपचाये पान।

तारे वीरा को चाली ळबाणी छोरी -- पो पो पोप्र चाये पान।

मारो वीरा पान खावे ळबाणी छोरी। मारो वीरा झळपा छोड ळबाणी -
-- छोरी।......

एक बहन अपनी भाभी को लेकर भाई पर व्यंग्य करती है कि अब आप पूरी तरह से हल्दी के जाल में घर गृहस्थी के फंदे में - फंस गए हैं। बडी रानी आपके लिए रोटी लाई है और छोटी रानी पानी। क्या खूब आपका इंतजाम हुआ है --

हल्दी री जालमा सुरया पडोस। मोटी रानी बाटी लाई।
नक्को राणी पाणी लोटा लाई। हल्दी री जाळा नागडा नक्को --
-- मेनाड।
झारी लोटा लाई। मोटी राणी बाटी लाई।

एक भोली भाली बंजारन अपने भाई से कहती है कि तुम्हे गाव की लडकियों की नजर लग गई है। जरा ठहर मैं तुम्हारी नजर उतार देती हूँ। तेरे लिए मैं चश्मा ला देती हूँ। तू उसे लगाकर चला कर - किसी की नजर न लग पाएगी ---

तुमरी नजरियो लाग जायी होजी। मारो पातळ्या वीरा।
पिळे मुट्ठा ऊपर वीरीरे हुं। दसेमा तोन घड लायी रे हुं।
वीरोर माळेन जाई रे हुं। दसमा तोन घड लायी रे हुं। —

भाई - बहन के संबंधों को देखकर भाभी के मन में ईर्ष्या न उत्पन्न हो, इसके लिए बहन एक मनोवैज्ञानिक उपाय काम में लाती है --

झारीपर झारी, झारीझारी मोती। झारी मधे कुं मोती झाकाई लो।
वीरा लोल लाईयो मोती। हांसलेस घालू मोती झाकालेऊं।
उबना में देखुं मोती झाकालियो। रमणामु देखुं मोती झाकालियो। —

हे भाभी टोकरी भर मोती भाई मेरे लिए लाया है। मैं मोतियों से लदी हूँ। लेकिन तुम चिन्ता न करो। इतने ही मोती वह तुम्हारे लिए भी लाया है।

ससुराल जाते समय बहन भाई के वियोग की वेदना से व्यथित हो कह उठती है -- हे भैया, मुझे पति के घर मत जाने दो मुझे कागज की पुडिया में बाँध कर अपनी जेबमें हिफाजत से रख लो --

साबूरो सनारो, घोरीरो घरायो - पातकीया वीरा।
कागदेरी पुडी करून खिसेमा घालेर देताई भीया।
सुईती पातळो साबती उजळो। मारे देसाई वीरा। - - -

बहन को चिंता है कि उसका भाई उसे भूल न जाय। वह भाव-विव्हल (हो) लेकर - कहती है कि - हे भैया, हमेशा मेरी ओर आते रहना। जिस गांव में जा रही हूँ, वहाँ की सारी वस्तुएँ तुम्हारे लिए हैं --

विजा परेरी हाट मोर भियारी पाटय। आवतो देस मिया आवतो देसर।

अपने द्वार पर प्रिय भाई को देखकर बहन की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहता।। प्रेम और आदर से वह भाई का स्वागत करती है --

भाया तू कुणा देखती आयोरे। बाई तू पोरिया गडेती आयोमु।
भायान बेसेन गादी दिजेरो। भायान जबरो लोय दिज।
भाया कसला कुवलारे। भाया रामराम कर लो रे।

उपर्युक्त गीत भाई-बहन के निश्छल स्नेह, अटूट विश्वास एवं करुणा को व्यक्त करते हैं।

दाम्पत्य - जीवन

विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार है। इसके द्वारा दो व्यक्ति मनप्राणों से एक हो जाते हैं। दाम्पत्य-जीवन की सफलता प्रेम एवं सहयोग की भावना पर निर्भर रहती है। आदर्श गृहस्थ जीवन का यही रहस्य है। बंजारा लोकगीतों में दाम्पत्य जीवन की विविध मनोदशाओं की सुंदर व्यंजना हुई है।

एक गीत में दाम्पति के पारस्परिक हास-परिहास की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। पत्नी पति से कहती है प्रेम - जल ही पीकर तृप्त हो जाने वाले को पानी की क्या जरूरत है --

आणाकृ लारी दांडी झाणकलोर। झाणकाठी जो लुटारे --
पायी सोनारकी रे छोरी।
पकडापचारे काळे बावरिना। लाडी गदीं वहाडी जवळेमा।

पत्नी के मन - मयूर को पति ने चुरा लिया है। बाहर का चोर आ नहीं सकता क्योंकि घर में आठ परकोटे और सोलह दरवाजे हैं। पत्नी प्रेमपूर्ण उलाहना देती है --

आठ गलियारी सोळा दरवाजा। सोडस बुती, भोजय सुती।
कतवीण पडेग चोर। मोहे पायल बाज।
भाईए टेकडीये उप्पर टेकडी। उप्पर नाचे मोर।
मोर बेचारा क्या करेगा। घर का देवर चोर।

खेत में पति पत्नी मिलकर घास काट रहे हैं। पति कहता है कि घास के गठ्ठर मैं बना रहा हूँ - माथे पर दोपहर का प्रचंड सूर्य है। ऐसे में प्यार की बातें करो --

घोस काटकर पुलिया बंधीर। दिल मेरा की खडिये दोपेर पडी लावडी।
तारी कार्य मर्जी रे बनाई मुंडाई। घडी बोलके साथ चलो तो।

पतिकी प्रेमाकुल अवस्था देख पत्नी धीरे से कहती है आस पास इतने लोग हैं। घर चलो तो मुँह की मिठाई भी दूँगी और झूला भी झुलाऊँगी।

घर साथ चलो तो, क्या क्या खाना खाती ।

तेल चव्हा, मठाई का पुडा, मजा करो ।

तेल मठाई का सारी रात ।

डफेवाळी तो साथ चली तो क्या सोना सोती ।

गादी गल्लीचा नर्म - बिछाना -- पलंग झुले सारी रात ।

बंजारा नारी भी पूर्ण स्वतंत्र नहीं होती है । वह पति की आज्ञा लेकर ही कोई कार्य कर सकती है । मायके जाने के लिए पति की अनुमति माँगते हुए उसे भाई के विवाह का कारण बताना पडता है --

आज मेरा वीरणा साडली तणीच्र ।तोळाराम घोडो झाडा तलो खडाच्र ।

आज मेरा मिया घर जायोच । वीरा घर मोरा मेलेंच ।

गृहस्थी का अधिकारी पति है । वह पत्नी का अभिभावक होता है । पत्नी की आवश्यकताओं की पूर्ति उसी को करनी होती है । एक बंजारा पत्नी बाजूबंद के लिए सुंदर लालमणि, कमरबंद के लिए लाल रंग तथा रंगीन साडी - चोली की मांग करती है --

लारे लाळा लामु मणजारा । हाँसलेन रंग चढारे,मुटियान् मणजारा ।

रंग चढारे मणजा मूरिया । लारे लाड मणजारा ।

मुटियार रंग चढा रे मणजा । लोवडीने रंग चढारे लाळा मणजा ।

दाम्पत्य - प्रेम की अभिव्यक्ति कृत्रिम क्रोध के द्वारा भी हुआ करती है । एक बंजारा नववधू - खेत में मिर्च और बैंगन तोडने के कार्य से होनेवाले कष्टों का परिचय अपने पति को देते हुए कहती है कि अंगुलियों में बैंगन के काँटे चुभ गए हैं, मिर्च से आँखें जल रही है, आँसू बह रहे हैं और धूप के कारण सिर - दर्द हो रहा है । उसे दवा की जरूरत है --

मरचा लागे,मरचा लागे, लागे सारी बाडी

मरचा तोडतुं आसे बळ पाणी लारी बेरी ।

वेंगळ लागे सारी वाडी । वेंगळ लागे सारी वाडी ।

वेंगळ तोडतुं कांटा भंजा सुई लार वेरी । ....

बंजारा नारी पति के प्रति पूर्ण निष्ठा रखती है तथा बंजारा समाज रूढि और परंपरा का प्रेमी है अतएव उसके लोक गीतों में शृंगार भावना स्वकीया नायिका से संबंधित है । परकीया प्रेम के शृंगार गीत बहुत थोडे हैं । पति-पत्नी की शृंगार भावनाओं की मधुर अभिव्यक्ति से ये गीत ओत-प्रोत हैं । एक पत्नी के उद्गार है --

वीरों को जैसे घोडी प्रिय होती है, युद्ध भूमि पर सैनिकों को जैसे तलवार प्रिय होती, है,उसी प्रकार पुरूष को अपनी कामिनी शय्या पर प्रिय होती है --

राधा मीठी घोडली, रण मीठी तलवार ।

सुरा मीठी सांग । सेज मीठी कामणी ।

पुरूष सदैव उच्छृंखल मनोवृत्ति का ही होता है । कभी कभी यौवन की उमंग में उसका मन विचलित हो जाता है जिससे पैर फिसल जाते हैं । परकीया प्रेम में आसक्त अपने पति को सही रास्ते पर लाने का प्रयास करती हुई एक बंजारिन कहती है --

सोमियारे हरोमा रंगीचुंगी बंदुक ।

सोमिया छाया छाया, बंदुक नेम्तो जा ।

जोभळी डळहळरोगती जा । सोमियारे ।।......

प्रेमीजनों का यह प्रेम एक पक्षीय नहीं है । बंजारा लोकगीतों में पति की ओर से पत्नी के प्रति प्रेमोद्गारों की अभिव्यक्ति भी हुई है । जोरों से वर्षा हो रही है । ऐसे समय पत्नी बाहर जाना चाहती है । पति उसे रोकते हुए कहता है -- हे सुन्दरी वर्षा में तेरी सुंदर साडी भीग जाएगी --

पाणी पडरीछ, राणी निसरीछ ।

राणी निसरीछ, रे जा भिजरीछ ।

बंजारा पारिवारिक लोकगीतों में शृंगार के दोनों पक्षों - संयोग और वियोग का नितांत रमणीय वर्णन प्राप्त होता है । संयोग - शृंगार के वर्णन संयत, पवित्र एवं दिव्य हैं ।

बंजारा पुरूष सदैव परिश्रम और संघर्ष से जूझता रहता है । उसे आजीविका हेतु सुदूर परदेश भी जाना पडता है । ऐसे समय उसकी पत्नी विरहिणी नायिका की दशा को पाप्त होती है । विरहिणी का पति परदेश गया है । उसे विश्वास है कि उसके द्वारा गाए गए विरह - गीतों से वह सुरक्षित घर वापस आ जाएगा । पति के प्रति पत्नी के निश्चल एवं अगाध विश्वास की अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियों में हुई है --

आज पकडोरो दडिया । जात हमारी जीतन लाई बात ।

सात छेनी सोबत छेनी लाई बात । सात छेनी दिन कडेम लात बाई ए ।

पति के वियोग के दुख को कम करने के लिए और विरहिणी का ध्यान दूसरी तरफ खींचने के लिए उसकी सहेलियाँ उसे सलाह देती हैं कि परदेश से वस्तुएँ मँगा लो --

लडका तोरी गोरी दिल्ली जावो । चीज मँगा लो कुछ खानेकी,

जावस अन्तरा लड्डू जलेबी, बालुशाही कुछ कानकी

ये तेरे पिया लेहँगा लाइयो, पेटीकोट सिलाने को ।

संयोग-शृंगार के वर्णन में जितनी प्रौढता, गंभीरता एवं उत्कटता के दर्शन होते हैं उससे कहीं अधिक सूक्ष्म मार्मिकता एवं करुण भावना की टीस वियोग के गीतों में मिलती है ।

सास - बहू का संबंध :

प्राय: सभी प्रांतों के लोकगीतों में सास और बहू के बीच में छत्तीस का आँकडा बताया गया है । सास का चरित्र कर्कशा, तानाशाह, कठोर एवं भयकारी चित्रित किया गया है । यह धारणा इतनी बद्धमूल हो गई है कि ससुराल जानेवाली वधुएँ आतंक से भर जाया करती हैं ।

बंजारा लोकगीतों में सास कठोर, निर्दयी, झगडालू तथा ईर्ष्यालु के रूप में अंकित हुई है । एक गीत में सास से त्रस्त बहू को ससुराल की मीठी खीर भी खट्टी लगती है, जब कि नैहर की दाल भी मिठासयुक्त लगती है --

सासु दव गाळी बसवेला लाग । मनद ए मुदवी गाळी करेला लाग ।

सासून पर धकल बाळीयो हमारोच । सासरेन पर धकल खेत हमारोच ।....

अपनी माँ के प्रति बहू के मन में जितनी ममता, है सास के प्रति उतनी ही अधिक घृणा है । दोपहर की गाडी से माँ के आने पर बहू प्रसन्न हो उठी लेकिन संध्या की गाडी से सास के उतरने पर उसे सिर-दर्द होने लगा --

दुपेर गाडीम याडी उतरीच । याडी उतरेच हुरप आवरीच ।

सांजेरी गाडीम सासू उतरीच । सासू उतरीच मातो दुकरोच ।

सास बहू के लिए माँ का स्थानापन्न नहीं हो पाती है । बहू मायके में राळा (धान) बोते समय कहती है कि मुठ्ठीभर राळा में कैसे बोऊँ ? सास के माँगने पर साफ साफ कह दूँगी कि राळा खत्म हो गया । अब मैं कहाँ से लाकर दूँ । लेकिन माँ के माँगने पर कह दूँगी कि तेरे लिए बडे जतन से राळा रखा है, तू खुशी से ले ले --

मुठीभर राळेनं कुकई पेरूं, राळो युं पेरूं, युं पेरूं जी ।

मुठीभर राळे नं सासू भी मांग, राळो हगोसे, राळो हेगो ये जी ।

मुठीभर भर राळेनं याडी भी मांग, राळो युं देऊं जी ।

इस प्रकार इन गीतों में सास का चित्रण एकांगी हो गया है । क्या सभी सासें कठोर और निर्दय ही होती हैं ? क्या वे अपने परिवार का सुख-दु:ख भी नहीं जानती ? सास-बहू के बिगडे संबंधों के मनोवैज्ञानिक कारणों की गहराई में ये गीत नहीं जाते ।

ननद - भौजाई :

भारतीय लोक गीतों में ननद की मूर्ति भी सास की तरह ही ईर्ष्या, द्वेष, कठोर, निर्दयता आदि के दुर्गुणों से बनाई गई है। वह भी "खलनायक" का ही रोल अदा करती है।

ननद की जली कटी बातें सुनकर एक वधू अपनी वेदना को निम्न शब्दों में व्यक्त करती है --

> अट्टाणी दरवाणी काई बोली लगिव। जे टेरी मार मन लागीच।
> भोळी मारजू वेशीच।

लेकिन कभी कभी इनमें हास्य-विनोद भी होता है। अपने भाई की सुंदरता एवं उस पर अनेक सुंदरियों के आसक्त होने की बात दुहराकर ननद भाभी को खिझाती है --

> मारो वीरा दूशी झाल्या खारो सुर प्यारो तेला।
> लगारो मुकियारी छोरीन, रोक मेंलो, पान खामे लो।
> बतीशीर रंग में लो, सिंदर काटावर थुंक में लो। जातेर छोरीन रोक में लो।

इस प्रकार ननद एवं भौजाई संबंधी गीतों में पारस्परिक हास-परिहास तो मिलता है लेकिन इसमें भी ईर्ष्या एवं द्वेष की मात्रा ही अधिक है।

देवर - भाभी

बंजारा समाज में पति - भ्राता विवाह की प्रथा प्रचलित है। क्योंकि इनके पूर्वज सुग्रीव ने अपनी भाभी तारा के साथ विवाह कर लिया था, लेकिन अब यह प्रथा कुछ कम हो रही है।

बंजारा लोकगीतों में देवर भाभी हास परिहास का खुलकर वर्णन किया गया है। होली के अवसर पर देवर भाभी द्वारा गाए जानेवाले "लेंगी" गीतों के अंतर्गत कृष्णलीला संबंधी गीत भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। इन गीतों में माखन चोरी, गोचरण, कालिय-मर्दन, रास, मथुरागमन आदि के विविध प्रसंग वर्णित हैं। इन गीतों की विशेषता यह है कि इनमें बंजारा जीवन और उनकी संस्कृति के बहुत ही मनोहर दृश्य अंकित किए गए हैं।

"लेंगी" गीतों में शृंगार का अथाह सागर आन्दोलित होता है। जन-सामान्य राधा-कृष्ण और राम - सीता की जीवन गाथाओं का आश्रय लेकर अपने हृदय की भावनाओं को सामूहिक रूप से खुलकर प्रकट करता है --

राम बाळो होळी, लक्ष्मन काळो दांडोर ।

हनुमान झुला मारोरे तुकारी, राजा दशरथ भाई भाईर ।

रामेर हातेमा रंगो चंगो दंडिया ।

कांई सीतारे हातेमा ताळ्वंदोरी जोगिरे ।

एक गीत में राधा कृष्ण के माध्यम से देवर भाभी के निश्छल प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है --

वाट जरा मारी फोडकन थाघर मारी फोडो रामा
झोळी रो बाळा, झोळी मैंररोया,
मन गळ दीय राम ।। वाट जरा...
तू राधा गोरी म काळु किष्न,
तारो मारो जोडा छेनीराम ।। वाट जरा....

देवरानी और जेठानी :

बंजारो के संयुक्त परिवार में सब भाई एवं परिवार के अन्य लोग एक साथ मिलकर रहते हैं । सामान्यत: उनमें मेल-जोल रहता है किंतु वैयक्तिक स्वार्थजन्य ईर्ष्या-द्वेष कलह का कारण बनता है । ऐसे कलहों का वर्णन बंजारा लोक गीतों में किया गया है । देवरानी और जेठानी के बीच प्रेम की झलक देखिए --

चाल जट्ठाणीबाई हाटेन जामा, रफयानी पतडीया भरोन्न ।
जामा कांचे कुडी लामा, घर आई पामलोरी जोडी ।
बाटलाई बंब शरी खोडी, बामण बाळदीन कोडी ।

बहू की सखी सहेलियाँ :

पति गृह में बहू का अवलंब उसकी सखियाँ होती हैं । पारिवारिक कष्टों को कुछ समय के लिए भुला देने का वे एक अच्छा साधन होती हैं । ऐसे ही एक प्रसंग की झांकी प्रस्तुत है --

गजेगजे वादळ कां मेल हरकी चुंदेडी । तेरी लोंडी परिया घमशामेळ ।
तारी हांसली परिया घमशामेळ, हरकी चुंदिडी ।

सखी - सहेलियों में गाए जानेवाले गीतों में प्रधानत: नारी हृदय मुखरित हुआ है । इनमें जीवन की आशा अभिलाषा उत्साह - हताशा, सुख-दुख सभी परिलक्षित हैं । इन गीतों का स्वरूप मनोविनोदपूर्ण है --

गोरा गट्टी बालाजी, चों चों बिजल्या । कांचे चळक मुंडी मळक
आरसी आळक चों चों बिजल्या ।

अपने भाई पर एक सहेली का प्रेम लक्षित होने पर उसे व्यंग्य के द्वारा छेडा भी जाता है --

आंगे आंगे सोजणी मत घालन बात । दाग दागिना घालन डुब गई...
वत मारो दाणारे वाली कारे वीरा ।

मातृत्व - कामना

बंजारा समाज में पुत्रवती नारी आदरणीय मानी जाती है । वंध्या अनादर और अपमान के आघातों को सहन करती है । इसी कारण प्रत्येक नारी मातृत्व-कामना से ओतप्रोत होती है ।

विवाह होने के बारह वर्षों बाद एक बंजारा नारी को पुत्र-प्राप्ति होती है लेकिन दुर्भाग्य से पुत्र अंधा और पंगुला है । वह बेचारी बंजारा संत सेवा भाया के सामने करुणा की भीख माँगने के लिए अपना वात्सल्य सिक्त आंचल पसारती है --

बारा वरशेर बांझा वा बेगेने, वांझा बन बेटा दे रे सेवा भाय ।
पांगळेन पाय दे रे सेवा भाया । आंधळा बेटेनो, आंधळेन -
आंखी दे रे सेवा भाया ।

वात्सल्य एवं करुणा का कितना मार्मिक संगम है ।

मामा - भांजी का संबंध

बंजारा समाज में मामा और भांजी के बीच वैवाहिक संबंध मान्य है, लेकिन लोकगीतों में मामा " फोडो और राज्य करो " की नीति का पालन करनेवाला स्वार्थी चतुर अतएव घृणित मनोवृत्ति वाला दिखाया गया है। घर फोडनेवाले ऐसे ही एक मामा को फटकारते हुए उनकी भांजी कहती है --

मामा तारी कुकडी वराई खायी जाव ।
मत देजो मामा पव देजोजो वेगी ।

इस प्रकार पारिवारिक गीतों का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि उनमें बंजारा जीवन की बहुमुखी झाँकी उपलब्ध होती है । पारिवारिक जीवन का केंद्र-बिंदु नारी होती है, अतएव नारी जीवन की कामनाएँ, अभिलाषाएँ, व्यथाएँ एवं यातनाएँ, सुख दुख आदि सभी यथावत अभिव्यक्त हो उठे हैं ।

धार्मिक लोकगीत

बंजारा : धार्मिक गीत

भारतीय जीवन धर्ममय रहा है। बंजारा मानस के धार्मिक विश्वास हिंदू धर्म भावना के परंपरागत विश्वासों से संबंधित रहे हैं। धर्म, पूजा, व्रत, त्यौहार, धार्मिक अनुष्ठान आदि सभी बातों में बंजारा समाज ने हिंदू धर्म का अनुसरण किया है, फिर भी इनकी कुछ धार्मिक मान्यताएँ ऐसी हैं, जिनका पालन वे अपने परंपरागत ढंग से करते हैं। इन मान्यताओं के पीछे लोक भावना और लोक - विश्वास का महत्वपूर्ण आधार है। इसी कारण मंत्र तंत्र, जादू टोना आदि क्रिया कलापों का उद्गम हुआ है। इन धार्मिक विश्वासों के पीछे प्राकृतिक शक्तियों एवं पारलौकिक अज्ञात शक्ति के प्रति आदिम भय की भावना छिपी हुई है।

घुमंतू जीवन से आक्रांत बंजारा लोकमानस श्रद्धा भाव से धर्ममूलक लोक-विश्वासों को स्वीकार करते हुए निष्ठापूर्वक जीवन यापन करता है। इनमें अपने पारंपारिक इष्ट देवता के प्रति अपार आस्था पाई जाती है। सामान्यत: मानसिक, शारीरिक एवं आर्थिक संकटों से मुक्त रहने के लिए देवी-देवताओं की पूजा की जाती है। बंजारा लोग इनसे पुत्र अन्नधन आदि की प्राप्ति हेतु तथा अनिष्ट निवारण हेतु प्रार्थना करते हैं। यही भक्ति भावना पूजादि विविध कार्यकलापों द्वारा लोकगीतों के माध्यम से व्यंजित हुई है।

प्रकृति पूजा

बंजारा लोक साहित्य में चंद्र, सूर्य, अग्नि, मरुत, वृक्ष, मेघ, नदी आदि प्राकृतिक शक्तियों की पूजा के उदाहरण मिलते हैं, जिनकी परंपरा वैदिक कौल से चली आई है।

बंजारा लोक जीवन में सूर्यदेव के प्रति असीम श्रद्धा झलकती है। दिन निकलते के बाद किसी कार्य को प्रारंभ करने के पूर्व सूर्य की प्रार्थना की जाती है यथा --

दुनिया भेगेर बैमान। सुरिया छेनेर अभिमान।
ऊठ पर बानी आसनात किदो। सुरियान हात जोडा वेरो राम।

जलदाता मेघ के प्रति बंजारों में गहरी श्रद्धा भावना है। बिन पानी सब सूना रहता है। धरती वीरान रहती है। तैंतीस कोटि देवगण भी मेघ की अनुपस्थिति से बेचैन हो जाते हैं। अतएव मेघराज आप पधारिए --

तेहतीस कोट जत्रा भरे,मेघराज मुला गोद्र ।

तेहतीस कोट देव खाणो किदी मेघराज मुळाद्र ।

ओ मेघराज अवतार लिदो,पंक्ते में जायो,, ओ मेघराज तो डगरगोद्र ।

नदियों के प्रति भी बंजारा पूज्य भाव रखता है । नदियों को पूज्य मानने की भावना भारतीय लोक धर्म की विशेषता रही है ।

गंगा के पवित्र जल में स्नान करने से पाप नष्ट होने की भावना निम्न गीत में अंकित हुई है --

कच्छर गंगा,कच्छर जमुना, कत कर आसनान ।

ओ गंगामा कर आंगुळी,पापेरी वळगाई होळी ।

अग्नि के प्रति पूज्य भाव संसार के सब धर्मो में मिलता है । अग्नि की महता एवं उपयोगिता के कारण समय समय पर उसका आवाहन किया जाता था[१२] । विघ्नहर्ता एवं पापकर्ता होने के कारण उसकी प्रतिष्ठा धार्मिक - अनुष्ठानों, व्रतों, उत्सवों , त्यौहारों आदि के अवसर पर की जाती है । भूत पिशाच आदि अनिष्टकारिणी शक्तियों को भगाने के लिए भी अग्नि प्रदीप्त की जाती है । बंजारा लोकमानस में भी अग्नि की पवित्रता एवं उसकी महता व्याप्त है । घुमक्कड होने के कारण निर्जन,जंगली एवं दुर्गम स्थानों पर डेरा डालने पर अग्नि प्रदीप्त करके ही विपत्तियों से रक्षा की जाती है । इसलिए अग्नि के प्रति इनमें श्रद्धा की भावना है ।

भूमि-पूजा भी बंजारों में प्रचलित है । पीपल, आम,नीम,तुलसी आदि सभी वृक्षों के साथ बंजारा समाज श्रद्धा भाव समन्वित होकर जुडा हुआ है । ऋतु संबंधी अनेक त्यौहार भी पेड पौधों की अलौकिकता और पवित्रता प्रकट करते हैं ।बंजारा समाज में प्रचलित गणगोर,दीपदान, होली आदि व्रत त्यौहार इसके उदाहरण हैं । त्यौहारों के गीतों में इसका विस्तृत उल्लेख है ।

बंजारा - जीवन और लोक गीतों में अन्न धान्य का महत्त्व भी कम नहीं है । ये जनेवदार(ज्वार), मुंगेवदा(मूंग), बाजरीवदा (बाजरा), रागीवदा (चावल का एक प्रकार), चणावदा (चना), वंघावदा (चने का एक प्रकार) एवं मेथीवदा (मेथी) इन सात अन्न धान्यों को पवित्र मानते हैं । विवाह के अवसर पर इन पवित्र अन्नों का उल्लेख करते हुए दुल्हे के शरीर पर "पवित्र दाग "दिया जाता है ।जिसे " वदाई डाग " कहते हैं । इसका विस्तृत उल्लेख विवाह के गीतों में आया है ।

पशु - पक्षी पूजा

बंजारा जीवन में इन्हें चिर जीवन साथी मानकर इन्हें विशिष्ट मानवीय

और देवत्वपूर्ण व्यक्तित्व प्रदान किया गया है । बंजारालोक साहित्य में इन पशु पक्षियों को सहायक के रूप में मानव-परिवार का ही एक अंग मानकर इनका आदरपूर्ण उल्लेख किया गया है ।

गौ की पवित्रता और उसकी मातृत्व भावना भारतीय लोक साहित्य में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है । प्राचीन काल से ही बंजारे घुमक्कड और कृषि-जीवन से सम्बद्ध रहे हैं । अतएव इनके जीवन में गोमाता का स्थान महिमामय और गौरवपूर्ण रहा है । गौ कसाइयों को बेचना इनमें पाप माना गया है । गौ के प्रति पवित्र एवं ममत्व भाव की अभिव्यक्ति निम्न प्रकार से हुई है --

मत बेचो गोवा काशी बाबा । कोई डोरी वनकसी।
आौ गौवारो लांचा घर लियाऊ । आमणामक वेंवु गोवा ।
कोई रे बाबा कां हिंडोरी,वनकसी वो गौवारो दूध काढाच ।....

कार्तिकी अमावस्या के अवसर पर टांडे की कुमारियाँ गोधन पूजा (गोदण पूजेरो) करती है । इस अवसर पर गाय के प्रति भक्ति भाव प्रकट करते हुए गाया जाता है --

गौवा पूजेन चाल गौरी गौवा पूजेन चाल ।
गौरी चालिए, गौवा पूजेन चाल ।

बंजारा जीवन में गौ यदि माता है तो बैल पिता के समान तथा जीवन की धुरी हैं । प्राचीन काल में बैलों के द्वारा ही बंजारे वाणिज्य व्यापार (बनिज)[14] किया करते थे । बैलों की पीठ पर नमक मसाला, अनाज आदि वस्तुएँ लादकर ये दूरदूर तक व्यापार करने जाया करते थे ।[15] बैल को बंजारा (गोरमाटी) बोली में बलद , बलध अर्थात बडा धन माना गया है ।

कार्तिकी अमावस्या के दिन " गोधन पूजा " के अन्तर्गत कुमारियाँ बैलों की आरती उतारते हुए गीत गाती है --

हम पुंजीया बाई गुरूरी बालद । हम पुंजीया बाई तांडेरी बालद ।
बालद पूजेन चाल गौरी ... गौरी चालिए,बालद पूजेन चाल ।

मानव की सहायता करनेवाले घोडा, कुत्ता आदि पालतू पशु भी बंजारों के ममत्व भाव के अधिकारी हैं । घोडे के प्रति मैत्री भाव निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है

देक्के मुंडला तोळाराम घोडो । जो घोडेसु झुळ खळरीच ।

कुत्ता तो बंजारों का परममित्र होता है । घुमक्कडी और शिकार के लिए कुत्ता बहुत सहायक होता है । इसलिए बंजारे कुत्तों का विशेष दल तैयार करके अपने स

रखते हैं शिकारी कुत्ते बेचने का व्यवसाय भी ये करते हैं।

नागदेव विषयक अनेक श्रद्धा - विश्वासों का उल्लेख बंजारा लोक - साहित्य में मिलता है। नागपंचमी के अवसर पर नाग को श्रद्धापूर्वक दूध पिलाया जाता है और टांडे के लोगों द्वारा उसकी पूजा की जाती है। एक गीत में नागदेवता से वरदान माँगा गया है --

ओ नागदेवो, ओ नाग देवो।
वर दियो, मारा नंगरीया।

बंजारालोक-साहित्य में पशुओं की भाँति पक्षियों को भी विशिष्ट मानवीय - व्यक्तित्व प्रदान किया गया है।

इनके विश्वासों के अनुसार मृत्यु के उपरांत मनुष्य के प्राण किसी पक्षी के रूप में उड जाते हैं और उसकी अधूरी अभिलाषाएँ किसी पक्षी के करुण स्वरों में प्रकट होती हैं। मनुष्य देह की निस्सारता एवं आत्मा की अमरता का दर्शन निम्न गीत में बहुत ही मार्मिक ढंग से हुआ है --

वहतो पंखी यार, तारो छेनी इतवार।
नवा खिडकीरो पिंजडो तारो, खले पडेच द्वारा।

पक्षियों और उनकी बोलियों को लेकर शुभाशुभ भाव भी बंजारा मानस में व्याप्त है। कौवा, घुग्घु आदि की बोली अशुभ तथा कोयल आदि की शुभ मानी जाती है।

ब्याह हेतु दूल्हे के ससुराल के लिए प्रस्थान करते समय यदि कौए की अशुभ बोली सुनाई पडे तो कुछ देर के लिए प्रस्थान रोक दिया जाता है --

तू सोमळ वेतडू काग बोलो।
तेरे हरी भरी नँगरी पर काग बोलो।

विवाहोपरांत दुल्हन की विदाई कोयल की शुभ बोली सुनकर की जाती है --

हरी बागेमा झिणी काळी कोयल बोली रे।
तांडो लादरियो, मारो न नंगरीया नायक बापू।।

देवी, देवता :

भारत की अन्य जातियों के समान बंजारा लोकधर्म में राम, कृष्ण, शिव, गणेश, अंबा, माता आदि देवीदेवताओं का विशेष महत्त्व है। बंजारों में शिव संबंधी अनेक गीत प्रचलित हैं। लोकनृत्य के साथ गाए जानेवाले इस गीत में शिव के प्रति भक्ति - भावना का प्रकटीकरण हुआ है --

महादेव शिवो शंकरो, महादेव के रहे दरीयों में ।

महादेव मेरी आत्मा रो, महादेव धरती रे कोरण रो ।....

त्रैलोक्य पर शिव की अखंड सत्ता स्थापित है । उसकी आज्ञा के बिना जगत में पत्ता भी नहीं हिल सकता । भोला शंकर जी महान हैं --

बंजारों में इंद्र की पूजा वर्षा के देवता के रूप में की जाती है । घोर अकाल पड जाने पर खेत खलिहान सूख जाते हैं ।

तीन ताळ पाताळ जमीन पर जाती हुकम चलायोर ।

हंदर देवेन हुकम किदो पानीन बलायोर ।

बंजारों ने राम को लोकादर्श देवता के रूप में अपनाया है । जिस भूमि पर राम लक्ष्मण का निवास है,उसी भूमि पर सारी दुनिया बस गई है --

असी धरती पर रामच लक्ष्मन वसगे, वीच वसगे सब धनिया ।

असी धरती पर देवस्थान वसगे, उनके बीच रे धनिया ।

जीवन के अंतिम काल में विषयासक्त मन में शम का उदय होता है । राम - नाम के संकीर्तन तथा भक्ति रस पान से शांति प्राप्त होती है । वैराग्य की यह भावना भी बंजारा लोकगीतों में है --

रामरस पियो पियान आयो, रस पियान आयो सीता रे ।

पिये मानीरे पिये हार पियोरे । रेगो ब्रह्मारी पियो,विष्णू पियो,

हार पियोरे रेगो ।

बंजारों के मन में श्रीकृष्ण के प्रति अगाध श्रद्धा है अतएव कृष्ण इनके मानस देवता है । कृष्ण की बाल लीलाओं के लोकरंजनकारी एवं लोक कल्याणकारी रूपों का चित्रण अनेकों गीतों में हुआ है ।

कांटा काम की हातम लकडीया काना गौवा चरायो जायो अंगलेमा ।

खांडू दिनु आव दडीरो मांडु चढो टेकडी ।मारो तुकारी पोरीयान --
-- गोळा किदो ।

कृष्ण चरित्र में अनेकों रसपूर्ण प्रसंग हैं जिनके कारण भारतीय जनता रसमग्न होती है । राधा-कृष्ण का प्रेम एक ऐसा ही प्रसंग है । राधा कृष्ण के हास - परिहास को एक गीत में निम्न ढंग से प्रस्तुत किया गया है --

कीसनजीरो पावो पडरोच । कीसन जी से दावो पडरोच ।

कीसनजी हाट जारोच । कीसनजी वाट छोडो रे ।

कीसनजी ऊपडा वाळोच । कीसनजी दोरो वाळोच ।

बंजारा समाज में बालाजी की पूजा होती है। यह उनके अनुसार श्रीकृष्ण काही एक अवतार है।

बालाजी घोडे धनेरोया,बालाजीन कोई मत छेडोया।
बालाजीरो भोगलागवया,बालाजी घोडे खोडारोया --
अंबा कटादू गदरी अंबेली। र हिंदोलो हिंदोलो मेरे माया
जग आ ओर।
ये मा बेसरे तुळजा भावली। र हिंदेलो हिंदोलो मेरे माया जग आओर

सीता सावित्री आदि साध्वी देवियों के समान ही बंजारो में सती वीर मास्तेम्मा देवी की भी पूजा होती है।

बागेमा को ळडा मोला कडायरे मोलाले तिताराजा।
बागेमा भुंगो मोला कडाथरे मोलाले तिताराजा।

अनिष्टकारी देवी देवता :

अनिष्टकारी शक्तियों से भयभीत होकर उनकी पूजा उपासना मनुष्य आदिकाल से करता आ रहा है। इस पूजा का स्वरूप तामसी ही अधिक दीख पडता है। बंजारे इस रूप में मरिअम्मा, शीतलादेवी, काली माता, सामकी माता, छठी माता, दुर्गा माता, येळमक्कळताई, म्हसोबा, भैरोबा, लकडया,वड्या आदि अनिष्टकारी देवी देवताओं की उपासना करते हैं।

मरिअम्मा की उपासना महामारी,भयंकर रोग आदि दूर करने के लिए की जाती है।

एक गीत में तहसआ एवं अन्य संसर्गजन्य रोगों से पीडित रोगी अपनी व्यथा मरिअम्मा के प्रति निवेदित करता है --

ओ मऱ्याम्मा,निकलीया यो नारू, कासोगत करू। जोवेरे कालालरम
भारी झारू।
बेटान कुवु हागायन लेजो,बेटा भार मारे पुटे पाच,कसोगत करू याडी।
ओ मऱ्याम्मा ।।

चेचक की बीमारी का कारण शीतलादेवी का कोप माना जाता है। शीतलादेवी के गीत प्राय: प्रत्येक प्रदेश में प्रचलित हैं। बंजारा विश्वासों के अनुसार शीतला देवी सब देवियों का अवतार है। अतएव चेचक निवारणार्थ सभी देवियों की प्रार्थना की जाती है।

सप्त मातृकाओं (सात बहिनों) में छठी माता भी एक है। इसे मनुष्य के भाग्य की देवी समझा जाता है। विशेषत: पुत्र-जन्म के छठे दिन विधि विधान से इनकी पूजा की जाती है और गौरव गीत गाए जाते हैं। बालक को दुष्टात्माओं की कुदृष्टि से बचाने एवं उसके दीर्घायुष्य हेतु प्रार्थना की जाती है --

वे माता हस्त हस्त आयेस। रोत रोत पर जायेस।
वे माता तलन फूलन कोडसी सण डेरो ले आयेस।

अनिष्टकारिणी शक्तियाँ

अनिष्टकारी शक्तियों में भूत, पिशाच, प्रेत, चुडैल आदि का समावेश होता है और उनसे त्राण पाने के लिए जादू टोना, जंतर मंतर, गंडा-ताबीज, भस्म-भभूत, वशीकरण - उच्चाटन आदि साधनों का प्रयोग किया जाता है। लोक धारणा के अनुसार जो व्यक्ति अपनी अतृप्त वासनाओं के साथ मृत्यु को प्राप्त होता है, वह भूत बन जाता है। इसलिए बंजारों में शव को जलाया नहीं जाता, गाडा जाता है। कब्र पर काँटे तथा भारी पत्थर आदि रखकर प्रेत को नीचे दबा दिया जाता है ताकि अतृप्त प्रेतात्मा वापिस घर न लौटे और परिवार के लोगों अथवा दूसरों को कष्ट न दे। किसी को भूत बाधा होने पर मांत्रिक या " भगत " को बुलाया जाता है जो भूत उतारने की मंत्र विद्या में माहिर होता है। भूत को संतुष्ट करने के लिए नींबू, मुर्गी, बकरा आदि अर्पित किए जाते हैं और भगत को संमोहित करने के लिए निम्न गीत गाया जाता है --

आन भगतो आँगेमा, सर बालेमा - हं ऽ हं ऽ हं ऽ।
आवो आवो ए साथी, देवी आवो -- हंऽ हंऽ हंऽ। - - -

मंत्र - शक्ति

जादू टोने अथवा मंत्र का प्रयोग स्वत: की इच्छा पूर्ति अथवा दूसरो को क्षति पहुँचाने के उद्देश्य से किया जाता है। बंजारों में सांप बिच्छू के विष उतारने, दूध न देनेवाली गाय भैंसों की नजर उतारने, भूत - प्रेत भगाने आदि के लिए मंत्र - शक्ति का प्रयोग किया जाता है। साँप बिच्छू को उतारने का मंत्र निम्नलिखित है -

साँप काटे, बिच्छू काटे। सब सच्चा, पिण्डे कच्चा। गुरू नानकशा,
तुम्हारी दवाई वीर हनुमान तुम्हारी दवाई। ईसर महादेव तेरा वाचा
चले -- छूँ।

पितृ-पूजा

मृत्यु के पश्चात् पारलौकिक जीवन की कल्पना भारतीय मानस की

विशेषता है। यहाँ पितृ पूजा की भी परंपरा है। उन्हें देवता सदृश मानकर वंश की समृद्धि हेतु उनकी अर्चना की जाती है। बंजारों में भी पितृ पूजा प्रचलित है। कार्तिकी अमावस्या - " काली मास " के दूसरे दिन " डोक डोकरान धबकारो " पूर्वज पूजा के अवसर पर उन्हें अन्न पानी देकर उनका श्राद्ध किया जाता है।

गुरु और संत पूजा

बंजारा लोक समाज में गुरु और संतों के प्रति पूज्य भाव चरम रूप में दिखाई देता है। उनकी मान्यता है कि गुरु और संतों की कृपा से ही मनुष्य चिंता मुक्त होकर सुख शांति पूर्ण जीवन व्यतीत करने में समर्थ होता है। बंजारा समाज में सेवाभाया और उनके भाई जेता भाया, लाखिया बंजारा आदि की पूजा प्रचलित है।

आखिल ~~अखि~~ बंजारा समाज में सेवा भाया की पूजा बालाजी का अवतार मानकर की जाती है। संकट निवारणार्थ सेवा भाया से आर्तस्वर में प्रार्थना की जाती है --

आजो आजो,सेवा आवतारी। हाक सुणलो बाऊ केरी।
रंग रंगेरी भारी तुकारी। जल्दी आजो सेवा नरधारी।

इस प्रकार बंजारा धार्मिक लोकगीतों का अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं उनके धार्मिक विश्वासों का निर्माण आदिम विश्वासों एवं हिंदू धारणाओं के संयोग से हुआ है। प्राकृतिक एवं अदृश्य शक्तियों के प्रति भय की भावना भी उनकी आराधना पद्धति को प्रभावित करती है।

श्रम परिहार के गीत

बंजारा : श्रम परिहार के गीत

यह संसार कर्म - स्थल है। अत: आदिकाल से ही मनुष्य श्रम करते समय उसके बोझ को हल्का करने के लिए श्रम - परिहार के गीतों का आश्रय लेता आया है।

बंजारा श्रम - परिहार के गीतों में व्यवसाय गीत, जतसार गीत, क्रीडा - विनोद गीत तथा पालने के गीत आदि गीतों का समावेश होता है।

व्यवसाय गीत

बंजारों की गृहस्थी की आधारशिला कृषि कार्य है। अथक परिश्रम से ये भूमि माता को प्रसन्न करते हैं। एक गीत के भाव है --" हम श्रम से लक्ष्मी की आरती उतारते हैं तो वह प्रसन्न होकर हमें हरियाली से भरी हुई फसल देती है " --

जगमा भाईरो, खेती करच करच खेतर। खेती करन चलायो संसार।
काट कूट गंजो घालो भारी जब्बर। वाणीयारी ती पाणी मंगायो -
- घालो खेआरी।

हरी भरी फसल के खडी हो जाने पर पक्षियों से रक्षा आवश्यक हो जाती है। कठोर परिश्रम तथा विषम परिस्थितियों के बीच भी बंजारों के होठों पर मुस्कान बनी रहती है। पक्षियों को उडाते समय भी गीत गाया जाता है --

डगडम डगलू हालवए सारखी। न्वि होकार खेत, होरिया सादेर खेत।
राखेर वस्तु राखले सारखी। हुले परेए मोटिया।

फसल कट जाने पर अन्न की गाडियाँ जब घर की ओर लौटती हैं तो बंजारा खुशी से झूम उठते हैं। एक बंजारा नारी अपने भाई से कहती है कि गाडी धीरे हाँको नहीं तो मेरी साडी का आंचल पहिए में फँसकर फट जाएगा और सुई गिर जाएगी --

अमीन व्हेया गाडी हाकाल। गाडी रडियावच साडीन काटीयाच।
गाडी बांधवीव, सुई लंबरेती गाडी रडियाव।
तसील व्हेया गाडी हाकाल।

श्रमजीवी तथा कृषक बंजारों को हमेशा ही साहूकारों के चरणों पर मस्तक झुकाना पडता है। साहूकार गरीबी का नाजायज फायदा उठाते हुए उन्हें अपने जाल में फँसाकर उनका रक्त पीते हैं। इस व्यथा को लोकगीतों में साकार किया गया है --

सावकारी बतिमा सामळान देखो। स्वाई डोडी तो पिसी काना को माने

मोऊपेणामा लिखा लियो खेत । दस-पांच देत तापकारी किदो ।

साहूकारों की कपट-नीति से बचे रहने की चेतावनी एक दूसरे गीत में दी गई है --

खिंच लिदो लोयी, सूंत लिदो साक्कार तारो, लूट लिदो घरदार ।
साक्कार धराणो छेनिर कपटी । भाई कऊेन भेनर कऊेन बेटी ।
अंग किनो दिटो, पांच कोनी साक्कार । यन तो आसी लगा गीच हैवा । गोर गरीब रो गोबर सारो दणी लेसे , तिणो लेरो --
साहूकार तारो ।

इन गीतों के द्वारा बंजारा समाज के आर्थिक शोषण तथा उनकी गरीबी का परिचय मिलता है ।

कृषि जीवन और व्यापार में घनिष्ट संबंध है । ब्रिटिश सरकार ने व्यापारी माल पर कंट्रोल लगाकर आम जनता का जीवन कठिन बना दिया था । किसानों की मेहनत पर पानी फिर गया था --

फरंगी राजेमा कंट्रोल लगाव वेगी, फजिती मायातोन किंव आयदेराम ।
देखोरे साहूकार आटीमा खेटेमा पडगी, जारीरी तोटो मायातोन किंव --
-- आयदेराम ।
ये देखा गोरूरी भती लगाड तुतारी, मारो बंदोटी बंदुकन किव्हृत्य ।

श्रम परिहार के गीतों में प्रासंगिक रूप में पति - पत्नी, भाई - बहन, माता - पुत्री, पिता-पुत्र, ननद-भौजाई आदि पारिवारिक संबंधों के चित्र उपस्थित किए गए हैं, जिनसे बंजारा समाज का विशाल चित्रपट हमारे सामने उपस्थित हो जाता है ।

भक्ति गीतों की एक विशेष लय होती है, जो बडी हृदयद्रावक होती है । गीत में " राम " या " हे राम " की टेक लगाई जाती है । ध्वनि सौंदर्य, अर्थ - सौंदर्य में वृद्धि करता है और श्रोताओं पर मार्मिक प्रभाव पडता है ।

जँतसार के गीत

जाँत (चक्की) पीसते समय स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं उन्हें जाँत के गीत या जतसार के गीत " कहते हैं । बंजारा बोली में जाँत को " घट " कहते हैं और इस पर गाए जानेवाले गीत " घटी परेर गीद " के रूप में जाने जाते हैं । अन्न का आटा तैयार करने की मशीनें आने के पूर्व बंजारा - टाँडे के प्रत्येक घर में पीसने का एकमात्र साधन जाँत या हाथ से चलाई जानेवाली चक्की ही हुआ करती थी ।

ये गीत आटा पीसने के श्रम को तो दूर करते ही हैं, साथ में आटा

पीसनेवाली नारीके मन को प्रेम, करुणा, उदारता आदि विविध रसों से आप्लावित कर देते हैं। बंजारा स्त्रियाँ जाँत पीसने के श्रम को गीतों में घोलकर अत्यधिक मधुर बना देती हैं। उन मधुर स्वरों में ननद-भौजाई, सास-पतोहू, माँ-बेटी, पति-पत्नी आदि संबंधों की झलक, गार्हस्थ्य जीवन के उतार - चढाव एवं हास परिहास की मधुर झाकियाँ निखर उठती हैं। घटी परेर गीतों में बंजारा नारी की मानसिक वेदनाओं का बडा ही सुंदर चित्रण हुआ है। करुण रस के जितने भी मार्मिक प्रसंग होते हैं, उन सबकी अवतारणा इन गीतों में हुई है। इन गीतों में छंद और लय भी होती है। गीत की लय जाँत की गति के अनुरूप रहती है। इनकी शैली स्वाभाविक सरल, निष्कपट तथा कर्णमधुर होती है।

इन गीतों में कहीं माता पिता के स्नेह के लिए अकुलाई ससुराल में रहनेवाली कन्या के हृदय की तडप है तो कहीं बंध्या स्त्री की मनोवेदना की अभिव्यक्ति, कहीं विरहिणी की व्याकुलता का कारुणिक वर्णन है तो कहीं गृहस्थ जीवन की कठिनाइयों से दबी हुई नारी की मनोदशाओं का विस्तृत उल्लेख है। एक ही करुण रस के भीतर जीवन के सभी रस समा गए हैं।

किसी तीज त्यौहार के अवसर पर टांडे की सब लडकियाँ आँगन में इकठ्ठी हुई हैं। किसी नवविवाहिता कन्या की उपस्थिति सभी को खलती है। वे जानना चाहती हैं कि क्या वह ससुराल से अभी नहीं आई है? बेचारी वहाँ वियोग से दुखी होगी --

ओरी मेनेन वलायेन गेव कोनी बाई ए।
मोटाजी वेरी नंगारा नांदे पर नाचरी बाईए।
हलगीरे नांदे पर नावरीच बाईए।

मनुष्य का जीवन क्षणभुंगर है। अभी है अभी नहीं। भाई की मृत्यु से बहन और पुत्र के निधन से पिता-माता व्याकुल हो उठते हैं। सबकी दुनिया उदास हो जाती है और मुख से करुण चीख फूट पडती है --

माता रे गोदेमा मेरे बंधु निकालगो प्राण।
बाप झुर, बेटा सारू, माया मारी बेटी चाल रामा ॥.....

वर के चुनाव में कन्या का पिता स्वतंत्र होता है। कभी कभी अवांछनीय वर के साथ लडकी का ब्याह कर पछताने की नौबत भी आती है। इसलिए धन अथवा किसी इतर वस्तु के मोहवश कन्या की जिंदगी खराब कर देना अनुचित है। जँतसार के निम्न गीत में यही आशय प्रकट किया गया है --

घर कोनी दिटी याडी मार कोनी दिटो ।

झूल रेरो लोमण चलो हांडिरो मुंडो दिटी ।

आछो कोनी दिटो बापू बल्ला कोनी दिटो ।

दारूरो लोभी बापू जमाई रो मुंडो दिटी ।

कई जंतसार-गीतों में प्रश्नोत्तर शैली अपनाई गई है । पाश्चात्य लोक - गीतों में भी इस शैली को अपनाया गया है ।[१६] इस शैली में मनोभाव बडी सरलता से व्यक्त हो जाता है । ऐसे ही एक गीत में पूछा गया है कि तेल बिना भी जलनेवाला दिया कैसा होता है ? बिन पानी का कुआँ कैसा होता है ? बिना मूल का पेड कहाँ होता है तथा दूध के बिना बच्चा कैसे बडा होता है --

बाईए अनुपकडितो जात हमारी, जीतन लांई बात बाईए ।

बाईए सात छेनी सोबत छेनी, दिवूं कडेम लाभ आईए ।

बाईए बना तेलेरो दिवलो, बळन सण लेगेनी बात बाईए ।

बाईए बता पाणीरी बावडीए, बना जेडेसे झाड बाईए ।

जंतसार के गीतों में पीहर से संबंधित भाई बहन, माता - पिता, चाचा - चाची आदि आत्मीय जनों का वात्सल्य एवं स्नेह भाव बडी ही स्पष्टता एवं भव्यता के साथ व्यंजित हुआ है । ससुराल में बहुओं के साथ जो कठोर व्यवहार होता है, उसका अन्त नहीं रहता । इसी कारण बहू के मन में मायके का मोह दुगुना हो जाता है । यह भाव एक गीत में इस प्रकार हैं - हे बाबा, सोलापुर की बाजार पेठ मेरी ही है, तुम्हें जो चाहिए वह ले जाओ और हमेशा अपनी बेटी से मिलने आया करो । हे भाई, बीजापुर की बाजारपेठ तेरी बहन की है अत: तुझे जो कपडा - लत्ता चाहिए, खुशी से ले जा ।

सोळापरेरी हाट मारे बापूरी वाटय । आवतो रेस बापू जावतो रेसर ।

मिठाई री हॉटेल देख घट द्ववरेगो । रे दरेदरे बापू तारो बेटीरी वदारी ।

विजापरेरी हाट मारे भियारी वाटय । आवतो रेस भिया जावतो रेसर ।

इन गीतों में नीति, उपदेश एवं कर्तव्य के उद्‌बोधक उद्गार भी प्रकट हुए हैं । एक गीत में कहा गया है कि निष्क्रिय होकर ऐशोआराम का जीवन बिताना पुरूषार्थ का लक्षण नहीं है --

तीन लंबर काचे चक्कर, पगडी री दस दस परते ।

वेनी क्तो गेन करजो रे नायक । बन रोनी रो ओटो सरको रे नायक

जंतसार गीतों में भक्ति की मंदाकिनी का निर्मल प्रवाह भी मिला हुआ

है । एक गीत में सद्गुरु सेवा भाया की महिमा वर्णित की गई है --

सेवा माया छठो घरेती चालो । सेवा मायारी घेरी पुटे पर ।
सिंदुरेरो टिको कपाळे पर । आँग चाल लार आँग के गेतो ।...

क्रीडा विनोद के गीत

बंजारा जीवन में श्रम और मनोविनोद में संतुलन स्थापित किया गया है । पुरुषों के समान ही स्त्रियाँ, बालक,बालिकाएँ भी क्रीडा-मनोरंजन में हिस्सा लेती हैं । जीवन में श्रम और संघर्ष भले ही हों ये बंजारे आनंद के क्षण जुटा ही लेते हैं। विवाह नामकरण, पितृ पक्ष आदि के अवसरों पर भाई-बिरादरी को ही नहीं, पूरे टाँडे के लोगों को दावत दी जाती है । ऐसे अवसर इनके लिए हर्ष, उल्लास और मनोरंजन के होते हैं ।

बालकों के क्रीडा विनोद :

बालक मनोविनोद के लिए खिलौने, दौड, आँख मुदौवल,भौंरा,चकडोरी, गेंद-लडी ,पतंग उडाना,वृक्षारोहन, कबड्डी,गिल्ली-डंडा आदि खेल खेलते हैं ।

वयस्कों के क्रीडा - विनोद

वयस्कों के मनोविनोद के साधनों में बौध्दिक एवं शारीरिक शक्ति के प्रदर्शन को अधिक अवसर मिलता है । शतरंज, मल्लयुद्ध ,मृगया,होलिकोत्सव आदि इनमें प्रमुख हैं ।

स्त्रियों एवं बालिकाओं के क्रीडा विनोद

गुडा-गुडी का विवाह रचना,हिंडोले पर झूलना के अतिरिक्त जन्म, नामकरण,छठी आदि अवसरो पर गाये जानेवाले गीतों तथा नृत्यों में इन्हें मनोरंजन की सामग्री प्राप्त होती है ।

बंजारा जन-जीवन ही इनके लोक साहित्य का प्रेरणा स्रोत रहा है । इन्ही से प्रेरित होकर बंजारा लोक नायकों ने अपने गीतों में बाल - जीवन की नाना अवस्थाओं की झाँकी दिखाई है ।

बालक बालिकाएँ खेलते समय कभी कभी पहेलियों की प्रश्नोत्तर शैली के गीतों का सहारा लेते हैं । "चल बता - बिना पानी का नारियल कैसा होता है ? बिना चोटी का वृक्ष कहाँ होता है ? बिना पानी का दूध किसे कहते हैं ? "

नारळ छरे नारळ, वरो क्तार । बना चेंडिरो झाड,झारी नायक
बारो क्तार । बना डांडीर र लिंबु, वरोक्तार । मन के दोटे बना

पाणीर दूध घट् नायक, वरोक्तार । मान मान
शेळा बेटो छोर नायक ।

इस प्रकार बालकों के मनोविनोद के गीतों में बाल-मनोविज्ञान को भी महत्व प्रदान किया गया है ।

पालने के गीत

शिशु को पालने में लिटाकर सुलाते समय जो गीत गाए जाते हैं, उन्हें पालने के गीत कहते हैं । इन लोरियों में वात्सल्य रस का अबाध प्रवाह दिखाई देता है । बंजारों में पालने के गीतों को " डोलीरोमा झुलव गीद " कहते हैं ।

बालक के निद्रावश हो जाने पर झोली झुलाते हुए यह गीत गाया जाता है --

हालो बाळा हालोरे, तारे झोलीम चल कोडी रे ।
चलकोडी रो माळी ,बाजरी रे खेमता चल कोडी रे ।
बाळा रे हातेमा सोनेरी कटोरी ।
कटोरी मा खीर पोळी, लापसी । हालो बाळा ।
बाळा रे हातेमा चांदीर कचोळी ।
काचेळीमा खीर पोळी, दूध-धान ।
तोई बाळा समजेईनी, गोदू लेलई-- ।

बंजारा नारी को कई बार अपना शिशु दूसरों को सौंप कर खेत पर काम करने अथवा किसी अन्य प्रयोजन से बाहर जाना पड़ जाता है । शिशु के रोने पर आस-पड़ोस की स्त्रियाँ लोरी गाती हैं -

हालो बाळा होलोडी । किडी काटी बालोडी ।
सोनोबाळा झोळी माई बाईस ।
सोजारे मोहनीया,याडी नीचे कामकाज ।
तारे कानेमा बोलू फुई ।
तारी याडी गीचे हाट पटणा,
तार बाप गोचे गोहरे खोय
दाढो डूबतूं आवच दोई जगा । सोजो बाळा सोजो ।

शृंगार और भक्ति तथा विविध गीत

बंजारा : शृंगार और भक्ति तथा विविध गीत

संस्कृत आचार्यों ने शृंगार को " रसराज " कहा है । भरत मुनि ने कहा है कि संसार में जो भी पवित्र,उत्तम,उज्ज्वल तथा दर्शनीय है, वह सब शृंगार रस में समाहित है ।[१७]

साहित्याचार्यों द्वारा शृंगार आदि के वर्णन के लिए जिन सीमारेखाओं का निर्धारण किया गया है, वह परंपरागत है । उनमें नारी हृदय के भाव-आवेग आदि पुरुष कवियों के द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं । अत: उनमें स्वाभाविकता का समावेश नहीं है । स्त्रियों की अतृप्त इच्छाएँ लोकगीतों में खुलकर प्रकट हुई हैं । इसी प्रकार यौवन की उमंगों में डूबते उतराते हृदय की विरहजन्य व्यंजनाएँ भी बडी हृदयस्पर्शी हैं । जीवन का ऐसा यथार्थ चित्रण काव्यग्रंथों में संभव नहीं , वह लोकगीतों की अपनी वस्तु हैं ।[१८]

बंजारा लोकगीतों में शृंगार रस के दोनों पक्षों - संयोग और वियोग का वर्णन मिलता है । इन गीतों में शृंगार रस का जो स्वरूप पाया जाता है, वह नितांत संयत, शुद्ध एवं पवित्र है । हिंदी के रीति कालीन कवियों ने संयोग शृंगार का जो उद्दाम, अश्लील तथा कुरुचिपूर्ण वर्णन अपनी रचनाओं में किया है, उसका यहाँ अभाव-सा है । ये गीत स्वान्त:सुखाय हैं । बंजारों के शृंगारिक लोकगीतों के स्वरूप निर्धारण में उनकी घुमक्कड स्थिति ने भी महत्त्वपूर्ण योग दिया है । बिना एडी चोटी का पसीना एक किए पेट भरना इनके लिए असंभव है । जीवन का सारा समय जीवन यापन में ही व्यतीत होने के कारण विलासिता की ओर प्रवृत्त होने के लिए न तो इनके पास समय है और न साधन । अत: बंजारा लोकगीतों में नायिका भेद का रीतिकालीन रूप तो नहीं मिलता किंतु शृंगार के वियोगात्मक पक्ष में प्रोषित पतिका नायिकाओं के अनेक वर्णन मिलते हैं । शादी की शहनाई बजी । मंगल गीत गाए गए किंतु कुछ ही समय पश्चात् प्रियतम परदेश चले गए । विरहिणी नायिका कलपती रही । नायिका करुण शब्दों में कह उठती है कि पति के विरह में कई वर्षों से व्याकुल हूँ । उसकी राह जोहते जोहते आँखें लाल हो गई हैं । दिन रात उसकी चिंता व्याप्त रहती है, न किसी से बोलना अच्छा लगता है, न उठना - बैठना ।

जहाँ तक नायिका भेद का सम्बंध है, बंजारा लोक कवियोंने इसे स्वाभाविक रूप से अपनाया है । इन गीतों में स्वकीया नायिकाओं के ही अधिक वर्णन मिलते हैं । इसका कारण बंजारा समाज की धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक मान्यताएँ हैं ।

परकीया प्रेम को इनके जीवन में कोई स्थान नहीं है ।

नायिका के नख शिख का वर्णन उस रूप में नहीं मिलता, जिस रूप में रीतिकालीन कवियों ने किया है । फिर भी शृंगार के ऐसे अनेक प्रसंग दिखाई पडते हैं, जिनमें नायिकाओं की सुंदरता, वेशभूषा, आभूषण आदि का बहुत ही प्रभावशाली एवं सजीव ढंग से चित्रण किया गया है ।

बंजारों के शृंगारिक गीतों में होली के अवसर पर गाए जानेवाले "लेंगी" गीतों का बाहुल्य है । शृंगारिक गीतों में ये गीत सरताज हैं । जिस प्रकार सावन के गणगोर गीतों में स्त्रियों के कलकंठों से स्वरलहरी प्रवाहित होकर वातावरण को और भी आर्द्र बना देती है, उसी प्रकार फागुन में लेंगी, विशेषत: पुरुष कंठ से नि:सृत होकर वसंत के उन्माद को और भी द्विगुणित कर देते हैं ।

होली फसल का त्योहार होनेके कारण उत्साह, उल्लास और उमंग का पर्व है । अत: इस अवसर पर गाए जानेवाले गीतों में एक विशेष प्रकार की मादकता रहती है । जहाँ प्रेम और यौवन की उमंगों का स्थल स्थल पर उल्लेख रहता है, वहीं दूसरी ओर होलिकोत्सव पर प्रिय के बिछोह में प्रिया की विरह वेदना को व्यंजित करनेवाले चित्र भी मिलते हैं । इन गीतों में यदि केलि-कला-मयी कामनियों का हेला-भाव है तो प्रोषित पतिकाओं के आँसुओं एवं परित्यक्ताओं के गहन निश्वासों की भी कमी नहीं है । जहाँ नृत्य गान मग्न स्त्री-पुरुषोंके समूह का वर्णन आया है, वहाँ संगीत स्वयं प्रकट हो जाता है । लोकगीतों की सामूहिक चेतना का इससे सुंदर उदाहरण और क्या हो सकता है ? इन समूह गीतों में भी शृंगारिक मुग्धता, पति वियोग, आनंद और प्रेम की प्रधानता है ।

फागुन का मस्त महीना इनकी रंगीली प्रकृति के अनुकूल है । इस समय ये लोग अपने श्रम का साकार फल निहारकर निहाल हो जाते हैं और हर्ष से नाचने लगते हैं । स्त्री-पुरुष दिनरात " लेंगी" गाते हैं । वसंत की बहार में इनका मन-मयूर नाच उठता है । ऋतुराज वसंत की निराली शोभा बंजारों के जीवन पर छा जाती है । चारों ओर फूल खिल जाते हैं । पक्षियों के मीठे बोल कानों में अमृत घोलते हैं ।

बंजारों का "लेंगी" गीत होली का प्रमुख गीत प्रकार है । इन गीतों में शृंगार प्रधान विषयों की बडी ही सरस अभिव्यक्ति हुई है ।" लेंगी" की विशेषता है चित्र सुलभ शैली । भाषा और भावों का जो ओज लेंगी में मिलता है, वह बंजारों के अन्य गीतों में दुर्लभ है । प्रेम ही इनकी मूल स्वर है और यही समूची भावधारा पर छाया रहता है । इसकी सरसता एवं संगीतात्मकता निम्न गीत में दृष्टव्य है --

बावळीया अने मा छोग छेळीळरी चरारोरे ।

सावळीया कनेमा छोरी धोबणरीया घोरीबरे ।

सीटी मीतो मत भार छोरा धोवणीचा धोरीचुरे ।

धोबणीयान पेनक छोरी जोगणीया धमे नीय ।

होली के अवसर पर गंभीरता को एक तरफ रखकर जीवन के उल्लास का स्वागत किया जाता है । अत: लेंगी गीतों में शृंगार की उद्दाम धारा प्रवाहित है । " सुव्वाळी गीदो " (शृंगारिक गाली गीत) में अश्लीलता भी आ गई है । फिर भी जन सामान्य के हृदय में प्रवाहित होनेवाली शृंगारधारा मनोरंजन एवं रोचकता की दृष्टि से आकर्षक तथा समयोचित ही लगती है । बंजारा लोककवि के द्वारा का नख-शिख वर्णन प्रस्तुत है --

ओड पांमडी सुवांळी तळव,

कावे चळक सारी रात आबरण मवीयोलाल ।

ओड छांटियां सुवाळी तळव,

ओरी कावे चळक सारी रात आब रण मवीयोलाल ।

पेर पेर कांचेरी कांचळी सुवाळी तळव,

ओरी कावे चळक सारी रात,आवरण मवीयोलाल ।

ओड ओड घुँघटो सुवाळीवळंव,

ओर घुंगरा चमके सारी रात,आबरण मवीयोलाल ।

वसंत की मादक मस्ती और पुरुषोचित रंगीन भावनाओं का अनोखे चित्र इन " सुव्वाळी-लेंगी" गीतों में अंकित है । संभोग शृंगार के मादक वर्णन भी मिलते हैं । व्यंग्य और विनोद का पुट भी है । पूर्ण चंद्र की ज्योत्स्ना में जब होली की मदभरी सुहानी रात हँसती है बंजारों का जीवन उल्लास से झूम उठता है और लेंगी के साथ स्त्री-पुरुष नृत्य मुद्रा में थिरक उठते हैं । प्रेमी प्रेमिका के शृंगार का एक चित्र इस प्रकार है --

कल्जणो पाणीन निकली । वल्टी वादळ गाडी र ऽऽऽ

थडे लिया पर बेडली । बेड लिया पर झारीर ऽऽऽ

इस गीत में प्रेयसी को " कूरजा" पक्षी के रूप में संबोधित करने की कल्पना बडी ही रमणीय लगती है ।

री भाजी छोरी तेलेमा वंगारी दे तेलेमा वंगारी छोरी नुणन मर्‍या -
-- भूलीय ।

नुणन मर्‍या भूली छोरी,दोस्तीयान घालीय । दोस्तीया बोलेनी कालेती --

प्रणय की आकुलता का चित्रण भी किया गया है। प्रेमी प्रेमिका से एकाकार हो जाना चाहता है --

मोट कवर मन छेबीन जायदो।
नानकी कवरे भारो वालो जीवडा।
फटकारो जीवडा, घर में दाई र
दो हैन ... एकलो अन घर में दोई २ भाई
हलगी बजावतो डोंगरेमा सांवळो कसेन --
धोराए लासरीया अन वली अंहेर

शृंगारिक भावना की अभिव्यक्ति राधा-कृष्ण के ब्याज से भी की गई है। लोक की व्यापक भावभूमि पर जिस प्रकार कृष्ण एक रसिक प्रेमी के रूप में गोपियों को आकर्षित करते हैं, उसी प्रकार गोपियाँ अनुकूल प्रतिक्रिया व्यक्त करती हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है --

मैं राधा गोरी, तू काला किष्न।
तारा मेरो जोडा छेनी राम।
वाट जरा मारी,फोडकन घाघर भारी,घाघर फोडी राम।
झोळी रो बाळा, झोळीमा रोया।
मन गळदीय राम। घाघर फोडो राम।

प्रेमासक्त प्रेमी अपनी प्रेमिका के स्पर्श के लिए व्याकुल हो गया है, लेकिन प्रेमिका इस अवसर से उसे वंचित कर देती है --

वीरा हात मत जोर। जातेरी छोरी धको लागीर। डोड अरी हवा छूटी।
पांव मेरी लाली चढी , लुंगरी परमळ मारी,रोळारा हात मत जोर।
कनीयास घालेरे वीरा, केरे भरोस गोरी भरोस घालवीरा।
चकोरे मेरी खेळी वीर गीया गोरी भरोस।

ये शृंगारिक गीत,जीवन के हर्ष उल्लास एवं निश्छल मन की अभिव्यक्ति के द्वार हैं।

भक्ति गीत:

बंजारा लोक कवियों ने जहाँ अपने विविध शृंगारिक गीतों से जीवन के प्रणय प्रधान अंगों को चित्रित किया है, वहीं अगाध भक्ति के अनेक प्रसंगों को निर्मल वाणी दी है। बंजारा लोक जीवन में भक्ति का अविरल प्रवाह प्रारंभ से ही चला आ रहा है। सवाभाया,जेता भाया आदि संत गुरुओं की स्तुति ये मुक्त कंठ से करते हैं।

गुरुभक्ति से लौकिक चिंताओंसे मुक्ति मिलती है और मोक्ष की उपलब्धि होती है।
गुरु महिमा के रूप में संत सेवालाल का भजन दृष्टव्य है --

जय जय सत गुरु करतार, बाबा सेवा लाल कलाधारी।
बाल ब्रह्मचारी, राम अनुरागी, दुनिया धावलोन सारी।
जल्दी आ नगधारी, रात दने री, बिनती हमारी।
छाया रेद तारी। मन जेरे कन सुनेरे, सपने मा,।

भक्ति साधन के रूप में संत समागम की भी चर्चा की जाता है। संत समदृष्टि, अविचल एवं भक्ति भाव पूर्ण होते हैं। उनके सम्पर्क में आनेवाले व्यक्तियों को भी अनायास निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है --

संत संगत किदो भाई जगमा संत संगत किदो।
संत बिना कुण साई जगमा गुरु बिना कुण साई र
माता पिता बांदीर नार, अपने हितरो भाईर।
परमवीरो छेनी, जगमा सद्गुरु बंद छडाई।

सत का फल अच्छा और असत् का बुरा होता है। " जैसी करना वैसी भरनी " यह दुनिया का रिवाज है। इसलिए चार दिन की जिंदगी में सन्मार्ग से चलना ही उचित है --

जैसी करणी वैसी भरणी, भोग मूढ अनारीर।
सती सामकी दिनी धमकी, फेरी जमकी टाटीर।
अरे देवेन छोड बंदा, का भटको अनारीर।
सणाल बंदा मतव अंदा, तुट अंदा सारीर।

इन भक्ति गीतों में संसार की असारता पर भी बहुत कुछ कहा गया है। माया-मोह के बंधन से छुटकारा पाने के लिए त्याग और आचरण की पवित्रता पर बहुत बल दिया गया है। क्षणभंगुर संसार के सुख व्यर्थ है। ईश्वर के चरणों में ही सच्चा आनंद तथा शांति है। इसलिए हे मन तू उन्हीं की शरण में जा। तेरी लाज वही रखेंगे --

वडतो पंवी यार, तारो छेनो इतवार।
आवो भाजने रोज खराऊ, पेराऊं सणगार र।
मखमल अंतर फुल लगाऊँ, मानेनी उपकार र।
कोट बणाऊँ, किल्लो बंधाऊ, बांधू बंद हजार र।

" ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या " की शंकरोक्ति के अनुसार संसार भ्रममूलक है। हमारा शरीर भ्रममूलक मिट्टी में मिलनेवाला है। शरीर में जो ममत्व बुद्धि है वही सारे अनर्थ का मूल है। भक्ति और ज्ञान से जगत् का यह मिथ्या रूप मिट जाता है। भक्त के लिए तो " वासुदेवः सर्वमिति " सब कुछ केवल वासुदेव हो जाता है।

विविध गीत

इसके अतिरिक्त अन्य विषयों से संबंधित गीत भी उपलब्ध हैं। सुविधा के लिए उन्हें हम विविध के अन्तर्गत रखकर अध्ययन करेंगे।

(अ) राष्ट्रीय गीत

लोक साहित्य में परंपरागत विषय वस्तु ही नहीं मिलती, अपितु उसमें देश और समाज में होनेवाले परिवर्तनों, आंदोलनों तथा प्रतिक्रियाओं का भी अंकन रहता है। बंजारा लोकगीतों में राष्ट्रीय आंदोलन, देशप्रेम, विदेशी अत्याचारों की भर्त्सना तथा राजनैतिक नेताओं के प्रति आदर भाव भी मिलता है।

१५ अगस्त १९४७ को देश स्वतंत्र हुआ। एक स्वप्न पूरा हुआ। यह स्वतंत्रता विभाजन के फलस्वरूप रक्तरंजित हो गई। रक्त की प्यासी सांप्रदायिकता की नदी न रुकी। फलस्वरूप ३० जनवरी १९४८ को देव तुल्य बापू की नृशंस हत्या की गई। सारा देश शोकमग्न हो गया। बंजारा लोकगीतों में इस व्यथा की बडी मार्मिक अभिव्यक्ति है --

आकाश धरती धन केरी पुरती कोई कोनी,
दिटेतून धरती माता।
मुकान वरणी मुकान शरणी,
लाखो जिवेण जगती माता।
कोई कोणी दिटेमून, फरती सुरा
गडेमा मातिया। मावोनी, ओइ के तीतो मारी।
धरती यंगजीमा महात्मारो गांधी
अवतार लियो वीरो। ओर हत्याम तारी मुक्ती।

(ब) मद्य निषेध

नशा, चाहे जिस चीज का हो, मनुष्य के जीवन को उद्ध्वस्त कर देता है। शराब, ताडी, गांजा भांग आदि नशीली के सेवन से एक व्यक्ति ही नहीं पूरा परिवार नष्ट हो जाता है। कठोर परिश्रम तथा मनोविनोद में सामंजस्य स्थापित कर

स्थामित कर व्यतीत करनेवाले बंजारे इस तथ्य को नहीं भूले हैं। तभी तो उनके लोकगीत मद्य निषेध का समर्थन करते हैं। मदिरा के दुष्परिणामों की चर्चा करते हुए एक गीत में कहा गया है --

दारु पीन कजीवेगो मट जोर, बोत्राट करतो आयोच धरा
बाईन सोटान मारा, दारु बाजीमा नशो बकोटी रो।

शराब पीने से बीबी बच्चे भूखे पेट रहते हैं। शराबी को पुलिस पकड ले जाती है, सजा होती है और जेल जाना पडता है। इस तरह निराधार होने वाले परिवार का दु:खद चित्र एक अन्य गीत में इस प्रकार है --

कुलेटू कुलोटू संसारेरो दडिया। धाडी दारु पी दाडिया।
पण बालबच्चा ढिनो प्रभु पदरेरे भाई।
कोष्ठेके बाटी छेनी ओंडीरे भाई।
डोळा काड काड देख्य याडी झाडीया।
काम धंदा कर क्तो सुखो छुडीयारे माई।
धणीना गोळ गाळ्व माटी पिपारे मायी।
भरी दोपेर भरी दोपेर क्टालेगो घुडिया। धणी ०

गांजा भांग से तो दूर रहने में ही मनुष्य का कल्याण है --

गांजा, निशा खराब च रे भारी। संगत न करो दुनियारी।
ओर अांग छरे अबीकारी। मन पीयो वाळो भिकारी, रामराम।

(क) शिकार संबंधी गीत

मूलत: बंजारा जंगल निवासी हैं। जंगल में रोग होने पर डाक्टर वैद्य कहाँ शिकार में मारे हुए प्राणियों का ही दवा दारु के रूप में उपयोग किया जाता था। यही भाव निम्नलिखित गीत में व्यक्त हुआ है --

पाच पचीस माटी मतरी करन। जाया जाया रे स्वार शिकारेन।
भांद लिए बाटी खोळो चडान।
लावी तितर, टोलीया, भटेवडी, मोर हरजिरो, छप्राण।.....

(ड) ज्ञान विज्ञान का महत्व

ने इस देश को गुलाम बनाया और इसका शोषण किया लेकिन दूसरी ओर उन्हीं के द्वारा हमारा पश्चिम के ज्ञान विज्ञान से सम्पर्क हुआ। अंग्रेजों के कारण ही यहाँ रेल, डाक, तार, यातायात तथा मशीनों का आगमन हुआ। इस कारण भारतीय जनमानस में अंग्रेजों की बुद्धि के प्रति श्रद्धा एवं प्रशंसा का भाव रहा

है। ज्ञान-विज्ञान के प्रसारक के रूप में अंग्रेजों के प्रति प्रशंसात्मक उद्गार बंजारा लोकगीत में भी मिलते हैं। यथा --

काळीर टोपी, जात शीखेटी,
अक्कल शिखरे बडी भारी।
आगाशीण इमान चलायो, हदीती
दन्यिा देखेराम। बना दळ देरी गाडी चलायो।
पीसा घणो कमायो राम।
काळेर टोपी जात फरंगी,
अक्कल शिखी बडी भारी।

(इ) हास्य गीत

हास्य जीवन का अनिवार्य अंग है। गंभीर से गंभीर व्यक्ति में भी उसके दर्शन होते हैं। बंजारा समाज परिश्रमी है, लेकिन शादी ब्याह, होली आदि के अवसरों पर हास, परिहास, व्यंग्य विनोद के द्वारा रस-धारा प्रवाहित हुआ करती है। एक बंजारा हास्य गीत में प्याज लहसुन का आपसी झगडा प्रदर्शित है।

कांदा केरी हुई सगाई, लसण भोंडो मारी गिरस्याणी।
देव मारो गोविंद स्याणी, पाणी मां बेटा तारी धुणी।
तुळ्या कोळारवान, साळ्या फेरा करो, मिटी तो वदाऊं डोरनु
छोडी रे गिरस्याणी।

यह झगडा उसी प्रकार का है जैसा अनाडी और मूर्ख दम्पति के बीच होता है और जिससे परिवार की शांति नष्ट हो जाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१ "संस्कारो नाम समवति य स्मिन्जाते पदार्थो भवति योग्य: कस्यचिदर्थस्य । " जैमिनीसूत्र -३१-३- पर शबर की टीका ।

२ एतरेय ब्राह्मण ७-३।

३ डा.पाण्डये राजबली : हिंदू संस्कार,पृ.७३।

४ डा.अग्रवाल वासुदेवशरण,प्राचीन भारतीय लोकधर्म,पृ.७४।

५ डा.उपाध्याय कृष्णदेव : भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन,पृ.१५२।

६ ऋग्वेद - १०-८५-३४ : ५.३.२ तथा ५.२८.३

७ एतैरेव गुणैर्युक्त : यज्ञवल्क्य स्मृति, १.५५।

८ "सम्यक् संकल्प निता नुष्ठेयक्रिया विशेषारम्भं क्रतम् । बृहद्वाचस्पत्यम,भाग ६,पृ.४९९५ ।

९ शब्दकल्पद्रुम,भाग-४,पृ.५५५।

१० "इतहिं सखी कर बाँस लिए बिच,मार मची झोरा सोरी की । सूरदास,सूरसागर,पद संख्या २८७३,एवं पदसंख्या २८९३ भी दृष्टव्य, दशम स्कंध,ना.प्र.सभा.काशी ।

११ Myorehead,T.H.: The Elements of Ethics,p.205.

१२ Grobbs : An Introduction to Sociology, p.206.

१३ "हव्याम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ।" ऋग्वेद १-३५-१।

१४ "ऐसी कहौ बनिज कौ अटकी ।" सूरसागर,दशम स्कंध,पद सं.१५२५,१५६६,२१४२।

१५ "चितउरगढ़कर एक बनिजारा । सिंघल दीप चला बैपारा ।" जायसी ग्रंथावली, बनिजारा खंड,पृ.३० ।

१६ Vance Randolph : Ozark Folk Songs,State Historical Society of Missouri,Columbia, p.118.

१७ "यत्किंचिल्लोके शुचिमेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तत्शृंगारेणोपमीयते ।" नाट्यशास्त्र ।

१८ डा.उपाध्याय चिंतामणि : मालवी लोकगीत : एक विवेचनात्मक अध्ययन पृ.३६५ ।

बंजारा : लोकगाथा

बंजारा : लोकगाथा

बंजारों में लोकगीतों के समान ही लोकगाथाओं का अक्षय भंडार भरा पड़ा है। लोकगीत जनमानस के कंठहार बन जाते हैं, जब कि लोकगाथाएँ कुछ लोगों तक ही सीमित रहती हैं। लोकगाथाओं में वीरता, साहस, रहस्य एवं रोमांच की अधिकता होती है। लोकगीतों में उपरोक्त गुणों का अभाव रहता है। लोकगाथा की प्रबंधात्मकता, वर्णनात्मकता, घटनाबहुलता आदि के कारण उसे कंठस्थ कर पाना कठिन होता है। लय की दृष्टि से भी उनमें एक सी सरसता सर्वत्र नहीं होती अत: सामान्य जन के लिए उनमें कोई आकर्षण नहीं होता। इसके अतिरिक्त वैयक्तिक भावनाओं की अभिव्यक्ति भी उनमें नहीं होती, इन्हीं कारणों से लोकगाथा समाज में कुछ लोगों तक ही सीमित रहती है।

आकार में प्रदीर्घ होने के कारण लोकगाथा में कथा का तारतम्य आदि से अंत तक क्रमानुसार चलता है। एक पद दूसरे से शृंखलाबद्ध होने कारण बीच में से कोई पद निकाला नहीं जा सकता और न उसका क्रम ही परिवर्तित किया जा सकता है पूर्ववर्ती पद का आशय समझे बगैर परवर्ती पद का आशय भी स्पष्ट नहीं हो सकता।

लोक साहित्य की विविध विधाएँ

लोक साहित्य की सृजन परंपरा अत्यधिक प्राचीन है। इसी कारण इसकी विविध विधाओं का विकास हुआ। इन विधाओं को मूलत: श्रव्य तथा दृश्य ऐसे दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। श्रव्य वर्ग में लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकोक्ति और मुहावरे आते हैं तथा दृश्य वर्ग में लोकनाट्य आते हैं। लोकगाथा एक दीर्घ कथा संगीत साहचर्य में व्यक्त होने के कारण पाश्चात्य विद्वानों ने इसे (Ballad) कहा है[1] तो भारतीय आचार्यों ने "गीत कथा", "प्रबंध गीत" तथा "लोकगाथा" इन संज्ञाओं से अभिहित किया है। इनमें से "लोकगाथा" का अभिधान ही सर्वथा उपयुक्त है क्योंकि वह इसमें निहित तत्वों की अभिव्यक्ति करपाने में समर्थ है।

लोकगाथा की परिभाषा और परंपरा

भारतीय लोकगाथा की परंपरा वैदिक और ब्राह्मण ग्रंथों में विद्यमान है। पुराण तो गाथाओं के भंडार ही हैं। बाद में महाकाव्यों के रूप में अनेक लोकगाथाएँ छंदबद्ध हुई। प्राकृत और अपभ्रंश काल में "गाथा सप्तशती" तथा "रासक" ग्रंथ

लोकगाथा की लोकप्रियता को प्रकट करते हैं। यही परंपरा वीरगाथाकाल की " रासो" परंपरा के रूप में विकसित होकर आई है।

भारतीय साहित्य में " गाथा" शब्द गेय कथांश, गेय स्तोत्र आदि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। गीत के अर्थ में यह संस्कृत " गै" धातु से निष्पन्न हुआ है।[5] वाचस्पत्यम्,[6] ऋग्वेद,[7] एतरेय ब्राह्मण तथा महाभारत[8] में "गाथा" का अर्थ गाने योग्य स्तोत्र किया गया है।

बैलेड" शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द "बैलारे " (Ballare) जिसका अर्थ" नाचना" होता है, से हुई है। इसका मूल अर्थ था वह गीत, जो नृत्य के साथ गाया जाता था। कालांतर में इसका प्रयोग किसी भी गीत अथवा सामूहिक रूप से गाये जाने वाले गीत के लिए होने लगा।[9]

लोकगाथा की विशेषताएँ

लोकगाथा की विशेषताएँ निम्न लिखित हैं - (१) अज्ञात रचयिता

लोकगाथा की मौखिक परंपरा के कारण इसके रचयिता का अज्ञात होना स्वाभाविक है। आज विविध जनपदीय लोकगाथाएँ उपलब्ध हैं, लेकिन उनके रचयिता एवं रचनाकाल का निर्णय कर पाना असंभव है क्योंकि रचनाओं में कहीं भी इस संबंध में कोई संकेत नहीं प्राप्त होता है। प्राचीन काल में रचयिता अपने नाम के बारे में बहुत असावधान रहा करता था।[10] लोकगाथा का रचयिता दल के मुखिया का कार्य करता है जब गाथा की रचना समाप्त हो जाती है, तब उसके लेखक होने का अहंकार वह नहीं प्रकट करता। इस प्रकार की रचना में गाथा महत्त्वपूर्ण होती है, दल महत्त्वपूर्ण होता है, लेकिन कोई व्यक्ति महत्त्वपूर्ण नहीं होता। इस प्रकार गाथा के रचयिता का अस्तित्व अंधकार में ही रह जाता है।

(२) प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव : समस्त समाज,समुदाय या जाति की रचना होने के कारण लोकगाथा को कोई प्रामाणिक मूल पाठ नहीं होता है। विभिन्न प्रांतों में प्रचलित होने के कारण स्थानीय निवासी तथा गायक अपनी इच्छानुरूप स्थानीय बोली की शब्दावली तथा नई पंक्तियाँ इसमें जोड़ते रहते हैं। इसके फलस्वरूप मूल गाथा समृद्ध होती है तथा उसकी भाषा परिष्कृत होती है। गाथा में भाषा संबंधी इतना अधिक परिवर्तन हो जाता है कि कदाचित मूल लेखक भी उसे न पहचान सके।[11] इसी कारण कुछ विद्वानों ने लोकगाथा को एक विशाल नदी की उपमा दी है।

(३) संगीतात्मकता : गेयता लोकगाथा का स्वाभाविक गुण है। [illegible] पर आधारित गाथा का संगीत से अभिन्न सम्बन्ध है। संगीत ही उसकी आत्मा है। अतः उत्तेजनात्मक तथा पुनरावृत्तिमूलक संगीत के बिना लोकगाथा अधूरी ही होता है।[१२]

(४) स्थानीय रंग : जिस प्रकार नदी अपने कूलों का स्पर्श करते हुए उसका मिट्टी अपने साथ लेकर आगे बढती है, उसी प्रकार लोकगाथा भी स्थानीय रंगों में ओतप्रोत होता है। प्रदेश विशेष के लोगों का रहन सहन रीति-रिवाज,खान पान,आचार विचार आदि सामाजिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं का सजीव चित्रण उसमें अंकित होता रहता है।

(५) मौखिक परंपरा : वेदों के समान ही लोकगाथा की मौखिक परंपरा प्रचलित रही है। पीढी दर पीढी लोकगाथा गतिशील रहती है। मौखिक परंपरा ही इसे जिलाए रहती है। यदि किसी लोकगाथा को लिपिबद्ध किया जाए,तो निश्चित समझिए कि उसकी हत्या की जा रही है।[१३] अतः मौखिक परंपरा ही लोकगाथा का प्राण एवं आत्मा है।

(६) उपदेशात्मकता का अभाव : लोकगाथा में उपदेशात्मक प्रवृत्ति नहीं होती है, फिर भी स्वाभाविक ढंग से गाथा से उपदेश ग्रहण किया जाता है। लोरकी, विजयमल सोरठी और आल्हा आदि में देशभक्ति,माता का आज्ञा का पालन,साहस, शौर्य और प्रेम के अनेक ऐसे प्रसंग मिलते हैं, जिनसे उपदेश या शिक्षा प्राप्त होती है। राबर्ट ग्रेव्हज ने उचित ही कहा है कि गाथा नीति या सदाचार की शिक्षा नहीं देती और पृथकत्व की भावना का प्रचार करती है।[१४] इस प्रकार लोकगाथा में उपदेश या आदर्श निरूपण स्वयं निःसृत होता है, जान बूझकर नहीं दिया जाता

(७) अलंकृत शैली का अभाव -: लोक गाथा अलंकृत साहित्य की कृत्रिमताओं से सर्वथा पृथक होती है। पिंगल शास्त्र के नियमानुसार विशिष्ट सांचे में भावों को ढालने की अपेक्षा लोकगाथा में सरल भावों का स्वच्छंद प्रवाह ही विद्यमान रहता है। इसी लिए लोकगाथा का सौंदर्य अनूठा होता है।

ग्रामगीत के उद्गार है। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है,छंद नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है।[१५] इसी प्रकार लोकगाथा में भावनाओं की सरल अभिव्यक्ति ही प्रधान है।

(८) रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव : लोकगाथा की मौखिक परंपरा के कारण उसके रचयिता के व्यक्तित्व का पता नहीं चलता। गाथा का न कोई एक रचयिता होता है

न इसका कोई महत्त्व होता है। उसमें सामूहिक भा[illegible] का प्रतिनिधित्व होती है, जिससे व्यक्ति का व्यक्तित्व समष्टि में लीन हो जाता है।

(९) सुदीर्घ कथानक : लोकगाथा का मूल रूप छोटा सा होता है, लेकिन मौखिक परंपरा के कारण धीरे धीरे उसका कलेवर महाकाव्यात्मक विस्तार ले लेता है। प्रत्येक युग का गायक गाथा की मूल धारा में परिवर्धन कर देता है। अत: अनायास ही इसका विस्तार बढता जाता है। "ढोलामारु रा दुल्हा" "बिल्वमल", "निहालदे सुल्तान" "बगडावत " आदि लोक गाथाओं का यही रूप है। लोक गाथा की कथावस्तु के परिवर्धन में गायकों की रुचि के साथ ही साथ रसिक-श्रोताओं की उत्सुकता का भी हाथ रहता है।

(१०) टेक पदों की पुनरावृत्ति: लोकगाथा की विशेषताओं में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है टेक पदों की पुनरावृत्ति। कई विद्वानों ने कहा है कि गीतों को जितनी बार दुहराया जाय,उतना ही उसमें आनंद आता है और टेक पदों की पुनरावृत्ति से गीत अत्यधिक संगीतात्मक होकर श्रोताओं को आनंद प्रदान करते हैं।

(११) जनभाषा का प्रयोग : लोकगाथा" लोक " उच्छ्वसित वाणी होने के कारण उसकी भाषा जनभाषा होती है और वह कभी रूढ नहीं होती है।

(१२) सामूहिक भावभूमि: लोकगाथा लोक भावनाओं की गाथा है, लोगों की भाव-संपत्ति है अत: लोकरुचि को इसमें बहुत अधिक महत्त्व प्राप्त है। प्रेम, त्याग,आत्म-समर्पण आदि लोकभावनाओं के उदात्त रूपों से लोकगाथा में लोगों की सामूहिक भावभूमि निर्मित होती है।

(१३) अनेकरूपात्मकता : मौखिक परंपरा के कारण एक ही लोकगाथा विविध रूपों में उपलब्ध होती है। गायकों की रुचि के अनुसार इसकी कथा में परिवर्तन होते रहते हैं - स्थानीय विशेषताओं का भी योग हो जाता है। इसलिए एक ही लोकगाथा के अनेक रूप हो जाते हैं। उदाहरणार्थ " ढोलामारु" "बगडावत" आदि लोक गाथाओं के विविध रूप मिलते हैं।

(१४) संदिग्ध ऐतिहासिकता: लोकगाथा का मूल अंग इतिवृत है। यह इतिवृत कल्पना तथा इतिहास के योग से निर्मित किया जाता है। लोकरुचि लोक प्रवृत्ति के कारण लोकगाथा में संदिग्ध ऐतिहासिकता मिलती है। कभी कभी पात्रों के नाम ही ऐतिहासिक होते हैं।

(१५) धर्मनिरपेक्षता : लोकगाथा में किसी विशिष्ट सांप्रदायिक धर्म भावना का

उदार भावभूमि इसके मूल में होने के कारण लोकगाथा में धर्मनिरपेक्षता की उपलब्धि होती है।

(१६) ज्ञान का अक्षय कोष : लोकगाथा अतीत का अक्षय कोष है। इसमें जनसाधारण के अनुभव, उनके विश्वास, उनकी मान्यताएँ और कल्पनाएँ संचित होने से यह लोक संस्कृति की तस्वीर होती है।

बंजारा लोक गाथा साहित्य :

आकार तथा विषय की दृष्टि से बंजारा लोकगाथा के अनेक भेद पाए जाते हैं। आकार की दृष्टि से लघु और बृहत् ऐसे दो प्रकार उपलब्ध होते हैं। विषय की दृष्टि से भी इसके अनेक प्रकार प्राप्त होते हैं।

इसमें वीर, शृंगार, करुण तथा भक्ति आदि भावों का सफल चित्रण सहज तथा मनोहारी ढंग से हुआ है।

बंजारा लोकगाथाओं का वर्गीकरण :

विषय के आधार पर बंजारा लोकगाथाओं को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है (१) धार्मिक गाथाएँ (२) वीर गाथाएँ (३) प्रणय गाथाएँ (४) रोमांच गाथाएँ।

धार्मिक लोकगाथाओं का मुख्य केन्द्र धर्म है। बंजारा लोकगाथाओं में धर्म तथा देवता विषयक धारणाओं का उल्लेख है।

धार्मिक गाथाएँ :

इन गाथाओं के गायक प्राय: ढोल, थाली, ढफ, आदि वाद्यों के साथ गाथा प्रस्तुत करते हैं। इन गाथाओं में राम, कृष्ण, शिव, पार्वती, विष्णु, हनुमान, आदि देवी देवताओं से संबंधित धार्मिक और पौराणिक गाथाएँ सम्मिलित हैं, जो प्राचीन परम्परागत है। कहीं कहीं केवल पात्रों के नाम ही पौराणिक हैं, शेष सब कुछ लोकमानस की उपज।

कुछ लोकगाथाओं के प्रारंभ में देवी देवताओं का स्मरण मंगलाचरण के रूप में किया गया है। विष्णु, दुर्गा, शिव-पार्वती आदि को अधिक महत्त्व दिया गया है। एक होली गाथा में लोगों के साथ शिव पार्वती के भी होली खेलने का वर्णन है -

फागुन, मयना, मसाड मयना घर घर बाजे बाजे आनन्द।
चल सख्यो, अपन फागुन केला, अपन अपने दिल कोसन।

कमला-परक्त,सोमायोरे, महादेव अवाझा बुवोरे कानों में ।
के महादेवुए,सोनो पारवती,फागुन केवने कू ।
कुना देसान आया मुसाफीर,बधमलिया,लोडंगी ।
मार सेकलकु,बिगाकीयालु,राबू घुमदू लडे ।
रामा,लक्ष्मण,भरत,शत्रुघ्न,हनुमान मे पाया गहोना
कमे महादेव सोनो रामजु,होली खेलने कक्कू ।
खाडी खोडीवुन,बाता करी झाने मे आया मेरे सुजन।
झटपट यामो जामे बेमे बवे छाई,भमर पलान ।

कृष्ण के समान राम और सीता के प्रति भी इनकी अपार श्रद्धा प्रकट होती है । श्रावण मास के शुक्ल पक्ष में पड़नेवाले "तीज" नामक पर्व के अवसर पर निम्नलिखित गाथा गाई जाती है, जिसमें अकाल से रक्षा हेतु प्रार्थना की गई है -

रामा रामा भजा हये, हारे हारे भगवान कू बांछा ।
काळेमा नंदना नामेरो,वरूस आयोयो आवो भगवान ।
कू बांछा काळेमा ? नाके केको,पेर पेर सुखागो हाय ।
भगवान - कु बांछा काळेमा, पापी याने सेर जार वेगी ।
आवो भगवान । कू बांछू काळेमा पापापेठी पामी पारे ।
वलो आवो भगवान । कुबांछा काळेमा वाले भारे ।
वडाल फाट, जावे,आंयो भगवान । कू बांछा काळेना ।
नाके केको भूंग वेजरी,सीकागो आयो भगवान ।
कू बांछा काळेमा,काळे वडाल छाड झूम में आयो ।
भगवान कू बांछा काळेमा जगेमा पाप चनोम वेगो । ....

एक अन्य गाथा शीतला पर्व के अवसर पर गाई जाती है, जिसमें राम,
और सीता के प्रति श्रद्धाभक्ति प्रकट हुई है तथा देवी द्वारा असुरों की हत्या का वर्णन गाथा में गाया जाता है । कई गाथाओं में देवी को भवानी,चामुंडा आदि कहा गया है । कुछ में देवी अखिल शक्ति धारण करनेवाली और मातृरूपा वर्णित है तो कुछ में अनिष्टकारिणी शक्ति मरिअम्मा के रूप में उनका वर्णन है ।मरिअम्मा बंजारो की लोकदेवता है । "मरिअम्मा गाथा" में उसकी अलौकिक लीलाएँ वर्णित हैं

रामेर धरकीती तारो पवाडा आयो,पवाडा आयो रे रामेडा गोसारडा ।
खिराळी देसेम भायान जन्मर दिनो,जन्म दिनोर रामेडा गोसाइडा ।
भरर मिनारी तोन खबरडी किती,तोन अबर कितीरे रामेडा गोसाइडा ।
तीन रे दाडेरो याडी वायदोरे मौंगी,वायदो मांगिरे रामेडा गोसाइडा।

अपने इष्ट देव या गुरु की ऐहिक लीलाओं का वर्णन करने के लिए माधुर्य अथवा प्रेमाभक्ति के रूप में उनका चरित्र लेकर गुणानुवाद, अलौकिकता एवं अलौकिक कार्यों के वर्णन गाथाओं में मिलते हैं। सेवा भाया, जेता भाया आदि गुरुओं की जीवन लीलाओं के संबंध में अनेक गाथाएँ भरी पडी हैं। निम्नलिखित गाथा में सेवाभाया के अलौकिक कार्यों का वर्णन है --

गण गावुरे सेवाला ठेरो। झुका जेता जगदंबा रोर।
मुख्यर रामजी नायकेरो। गूती बलरी मुक्काम वेरो।
गुती बलहारी रामजी रेन। तिन पुत्र वेते रे ओन।
इत्यु खेमा भीमा तिसरो। गूती वलरी ....।

वीर गाथाएँ

बंजारों में वीर गाथा के लिए " पवाडेर " शब्द का प्रयोग होता है। यह " पवाडेर " "पवाडा" शब्द का बिगडा हुआ रूप है। " पवाडे" का अर्थ है, किसी वीर का प्रशस्ति काव्य। बंजारा पवाडे मध्यकाल में रचे गए। इस काल में मुगल और राजपूत सामंत तथा राजा सत्ता संघर्ष के लिए परस्पर लडा करते थे। तत्कालीन इतिहास युद्धों और संघर्षों का इतिहास है। इसलिए इस काल में रची गई सभी वीरगाथाएँ अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखती हैं। किंतु लोकगाथा के नायकों के प्रति लोकमानस में श्रद्धा, प्रेम एवं आदर की मिली जुली भावना होने के कारण कतिपय लोककथाओं के पात्र एवं घटनाएँ इतिहास से दूर हो गई हैं। पात्र ऐतिहासिक होते हुए भी उनपर लोकमानस का रंग चढा हुआ है।

इस दृष्टि से " सेवाभाया - पवाडेर " उल्लेखनीय है। इस गाथा में सेवा का पराक्रमी नायक के रूप में वर्णन किया गया है और यह पराक्रम केवल धार्मिक दृष्टिकोण से ही रखा गया है। इसमें न ऐतिहासिक तथ्य है और न ऐतिहासिक आधार। फिर भी लोक साहित्य लोकमानस तथा समाज का दर्पण होने के कारण तत्कालीन गतिविधियों से वह बच नहीं पाया। सत्रहवीं शताब्दी में बंजारा के दक्षिण प्रवेश के काल में महाराष्ट्र में छत्रपति शिवाजी का बहुत ही बोलबाला था। शिवाजी के पुत्र संभाजी की मृत्यु के बाद (सन् १६८९ ई.) छत्रपती राजाराम (१६७०-१७०० ई.) के काल में औरंगजेब ने मराठों को समाप्त करने का संकल्प कर महाराष्ट्र में डेरा डाल रखा था। मराठे हार माननेवाले न थे। उन्होंने औरंगजेब की नाक में दम कर रखा था। इस समय संताजी घोरपडे और धनाजी जाधव ये दो

सरदार अग्रसर थे। मुगल सैनिक इनके नाम से कांपते थे। सातारा जिले के कोरेगांव में औरंगजेब की छावनी पर धावा कर इन दोनों सरदारों ने उसको संत्रस्त कर दिया। औरंगजेब की मृत्यु (१७०७ ई.) तक मराठों एवं मुगलों में ठनी रही और मराठे अजेय रहे। इस घटना का जनमानस एवं बंजारा समाज पर प्रभाव पडा। उन्होंने इस घटना के ढाँचे में ढालकर अपने लोकादर्श पात्रों के पराक्रम की व्यंजना की। ऐतिहासिक इतिवृत्त में काल संगति का ख्याल उन्हें नहीं रहा। अपने लोकनायक पात्र का वर्णन राजाराम के काल एवं घटनाओं के ढाँचे में डालकर करते करते उन्होंने शिवाजी का काल भी अंकित किया है। शिवाजी के दरबार में रहनेवाले महाकवि भूषण ने शिवाजी की स्तुति में जिन घटनाओं का उल्लेख किया था, उनका भी अंकन " सेवाभायापवाडेर " में किया गया है --

डली रोरया, चौऱ्यांसी कोटेरो सेवा राजीया।
अत मढेव डेरा डाडा, अनमेढव कोट।
वाग्याजीरे मेलभाई, सेवा करगो चोट।
काईक लूटे ज्वार, बाजरी, काईक लूट रागी।
बास्याजीरे मेलभाई, सेवा लूटे बानी।
डली रोऱ्या चौरांसी कोट सेवार,
अरबन होती, जरबन होती।
एक सेवा न होते, तो सबकी सुन्नत होती। सेवा राजी थोर।

ये वीरगाथाएँ काल विसंगत तथा तथ्यहीन अवश्य हैं किंतु इनमें ऐतिहासिक सामग्री का अभाव भी नहीं है। इसी कारण ये अपने युग का सही चित्रण प्रस्तुत करने में सफल रही हैं। मध्ययुग शूरवीरता और प्रतिद्वंदिता का युग था और शौर्य के सारे आदर्श कुलाभिमान, पीढीगत वैमनस्य और राज्यलिप्सा आदि गुणों से परिचित थे। इन लोकगाथाओं में अलौकिक निष्ठा, वीरता, साहस, बलिदान, प्रेम और उदारता का उज्ज्वल पक्ष वर्णित हुआ है तो दूसरी ओर ईर्ष्या, द्वेष, कलह आदि मानव हृदय के दुर्बल पक्षों तथा सामाजिक अनाचारों का भी समान रूप से यथार्थ चित्रण हुआ है।

शौर्य, कायरता, देशप्रेम, देशद्रोह तथा कुलगौरव - कुलकलंक की परस्पर विरोधी भावनाएँ अंकित करनेवाली "जयमल-पत्ता" की गाथा उल्लेखनीय है। राजपूतों को दबाने के लिए अकबर ने १५६७ ई. में पूरी तैयारी के साथ दूसरी बार चित्तौड पर आक्रमण किया। उसका समाचार पाकर राणा उदयसिंह चित्तौड के जंगलों में भाग

गया । इससे भयभीत न होकर चित्तौड के सरदारों ने पूरी शक्ति के साथ लोहा लेने का निश्चय किया । इन वीर सरदारों में सरदार जयमल और प्रतापसिंह उर्फ पत्ता के पराक्रम को देखकर मुगल सेना भयभीत हो गई।

जयमल बिजनौर का राजा था । मारवाड के शूरवीर सामंतों में उसका नाम ब बहुत प्रसिद्ध था । उसका जन्म राठोर वंश की मैरतिया शाखा में हुआ था । पत्ता कैलवाडे का राजा था । वह चंदावत शाखा के जगवत गोत्रोत्पन्न था । युद्ध में जयमल और पत्ता ने अपनी भयानक मारकाट के द्वारा जिस प्रकार शत्रुओं का संहार किया, उसकी प्रशंसा अकबर बादशाह ने स्वयं की और इन दोनों वीरों की प्रशंसा में आजतक राजस्थान में गीत गाए जाते हैं।

चितौड का संग्राम बढते ही शालुंबा का राजा चंदावत रहीदास युद्ध करता हुआ मारा गया । उसके गिरते ही पत्ता ने आगे बढकर मुगलों की फौजों को रोका और अपने प्राणों का भय छोडकर उसने शत्रुओं पर मार की । उस समय उसकी अवस्था १६ वर्ष की थी । अचानक बंदूक की गोली से वीर बालक पत्ता भूमि पर गिर पडा । जयमल की मृत्यु अकबर के हाथों हुई । इस युद्ध में जयमल और पत्ता की बहादुरी देखकर अकबर बहुत प्रसन्न हुआ था । उसने दिल्ली में किले के सिंह द्वार पर ऊंचे चबूतरे पर दोनों की प्रस्तर मूर्तियाँ स्थापित करवाई ।[१७] सन १६६२ ई. में भारत भ्रमण हेतु भारत आए हुए फ्रेन्च यात्री बर्नियर ने भी इन वीरों के स्मारक को देखकर गौरवोद्गार व्यक्त किए थे ।[१८] जयमल और पत्ता की बहादुरी का वर्णन गाथा में द्रष्टव्य है --

भूकिया तु जगेमां घुं क्वी मोठो । चितोड गड पर बरखत आयो --
जणावत गोतो ।

जेगल फत्ता हेगे सता विशने सात ।
उत्तराक भुवया रंगवो करेन हमनो बात ।
कवच बांध्यों सुंदररो भोजा धुवालोत ।
भुकियार जातोती वादेन नाक ।
सामळ रे बावतरा तू सामळ मारी बात ।
बिरवेते जेमल फत्ता करन देगे साथ ।
तोर सरीक कायर रेगे करेन आसी बात ।
रेते ते वादेन तो दकाळ देते हात ।
कवत बांधो कवतीरो कसन्या मुकिया ।
रकाडगो राणा से जातूरी लाज ।....

आदर्श वीरों के समान आदर्श नारियाँ भी बंजारा लोकगाथाओं की वर्ण्य विषय हैं। मीरा की प्रेमाभक्ति, कष्टों से पीडित जीवन की व्यथा मीरा की गाथा में व्यक्त हुई है --

सती भवानी कळा फेलाई, चिणा पटन छोडन आई। वाटे परी आसमान
बनाई काडमेलरी गोळ जमाई। गोळी दिनी त्रिमान मेरी माया।। १।।
गोळी लेन भिमान चालो, राणी धर्मणीती काई ब्रोलो।
ई गोळी राणी तम लोलो, छ अमरुतरी प्याला पिलो। हीरा दुवु केणिया
- मेरी माया। २।।
जोर करम त्रिमारो किदो, रान रसायन गटको पिदे।
चार लाता फतरमन हदो, हिरा गल्यों सेवकनी माया। जय जय बेणोव मन
भाया।। ३।।..

प्रणय गाथाएँ -

हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रणय गाथाओं की परंपरा बहुत प्राचीन है। विद्वानों ने प्रेमाख्यानों के स्रोत वेदों में ढूंढ निकाले हैं और पुराण, महाभारत, बौद्ध तथा जैन साहित्य में उनकी परंपरा के विकासचिह्न निर्धारित किए हैं।

संस्कृत तथा प्राकृत की अति प्राचीन गाथाओं में अतिमानवीय तत्व प्रधान हैं। बौद्ध और जैन प्रेम गाथाओं में संसार की नश्वरता के प्रसंगों की प्रधानता है। बंजारा प्रेमगाथाओं में अतिमानवीय तत्व का सर्वथा अभाव नहीं है किंतु आधिक्य भी नहीं है और जितना कुछ है, वह मध्ययुगीन विश्वासों के अनुकूल है। अधिकांश बंजारा प्रणय गाथाएँ मध्यकालीन हैं। नारी और प्रेम के संबंध में उनमें जो आदर्श व्यक्त किए हैं, वे मध्यकालीन सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों की ही उपज हैं।

भारत में प्रेमाख्यान की जो मध्यकालीन परंपरा है, उसका आधार लोकगाथा ही हैं। इससे सूफी आख्यान भी बच नहीं सके। स्वयं सूफियों के प्रेमाख्यान काव्य का आधार लोकगाथाएँ ही हैं।[१९] सूफि प्रेमाख्यानों में कथानक न सही कथानक रूढ़ियाँ लोकगाथाओं से ही ली गई हैं। इन सूफि साधकों ने पौराणिक आख्यानों के बदले लोक प्रचलित आख्यानों का आश्रय लेकर ही अपनी बात जनता तक पहुँचाई। बंजा प्रणय गाथाएँ भी इसी मध्ययुगीन परंपरा का अविच्छिन्न अंग हैं। बंजारा राजस्थान के निवासी होनेके कारण राजनैतिक, सामा और संयोगात्मक प्रेमाख्यान में प्रेम-संबंध के परिणामस्वरूप प्रेमी-प्रेमिका का मिलन अथवा विवाह हो जाता है।

ऐसे प्रेमाख्यानों में नायक नायिका पर चाहे जितनी विपत्तियां आएं, प्रलोभन दिए जाएं, किंतु वे अपने प्रेम की एकनिष्ठता पर अडिग रहते हैं। प्राय: ये प्रेमाख्यान सुखांत होते हैं इस वर्ग में " ढोला मारवाणी" "शोभा नायक बनजारा " आदि प्रेम गाथाएं सम्मिलित हैं।

ढोला मारवणी

ढोला मारवणी की प्रेमगाथा इतनी प्रसिद्ध है कि इसके राजस्थानी, छत्तीसगढी, ब्रज आदि संस्करण उपलब्ध हैं। एक रूप बंजारा बोली का भी है। इस गाथा की कथावस्तु संक्षेप में इस प्रकार है --

नरवर के राजा नल के पुत्र ढोला एवं पूगल के राजा पिंगल की पुत्री मारवणी का बचपन में विवाह हो जाता है किंतु जब ढोला बडा हो जाता है, तो उसका विवाह मालवा के राजा की कन्या रेवती से कर दिया जाता है। मारवणी जब यौवन में प्रवेश करती है तब एक दिन वह स्वप्न में अपने प्रियतम की मधुर छबि देखती है और उसके विरह में व्याकुल हो जाती है। वह अपना प्रेम संदेश ढोला के पास भेजती है किंतु रेवती और उसके मंत्री भीखूसिंग उसके प्रेम-संदेश वाहकों को धोखे से मरवा देते हैं, लेकिन कुछ ढाडी ढोला के पास मारवणी का प्रेम-संदेश पहुँचाने में सफल हो जाते हैं। मारवणी के प्रेम संदेश को सुनकर ढोला तत्काल उससे मिलने के लिए पूगल देश पहुँच जाता है।वहाँ मारवणी के साथ आनंदोपभोग करके नरवर को लौट आता है। मारवणी के साथ छल करनेवाली रेवती का सिर मुंडाकर उसे गधे पर बैठाकर शहर के बाहर निकाल दिया जाता है। ढोला मारवणी के साथ आनंदपूर्वक रहता है --

तिजे सेवारे री दने आयो, रे बापू मो मारोणी रो
रूडो सण गौर रे गणावतो।
पाटे पिंताबरेरी ए कोढडी भरीयमाँ मारोणी बाई।
काड काड पेर ल्ये साल सरोपा और गणावतो।
तिये तेवारे रोदने आये दने अगोचले याडी मो।
मारोणी रो, रूडो सणंय गौर रे गणावतो।
पाटे पितांबरेरी ये कोटडी भरीयमो मारोणबाई।
काडे काड पेर लाये लालसरो पाओ ए गणावतो।
किडी मुंगीरो जोडी लक्यो रे भगवान मो, मारोणी
रोकूडे सणमोर रे गणावतो।....

ऐ कांई सोंचो ये मारवणी
कचनेरी काया छ तारी रे भणवतो ।
मारोणीबाई ढोला लेन राजा,
दोई सुखीती जिंदगी गैंजा रे ।

इस गाथा में संदेशवाहक पक्षी है । इससे स्पष्ट है कि गाथाओं में मानव - अमानव ही नहीं जड पदार्थ भी पात्र के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं । गाथाकार प्रत्येक पदार्थ में प्राणों का स्पंदन देखता है । वह तथ्य और कल्पना में अंतर नहीं देखता । अत: सत्यासत्य का विवेक उसकी भावना से परे है । प्राय: भारत के सभी प्रदेशों की लोकगाथाओं में ये तत्व विद्यमान हैं ।

रोमांचक गाथाएँ

रोमांचक गाथाओं में जादू, परियाँ, रूप परिवर्तन, आकाश गमन आदि अलौकिक एवं रोमांचक प्रसंगों का ही प्राधान्य रहता है ।

इस वर्ग में " हासा खवार कथा ", " राजकुमार हाडकीर कथा " आदि गाथाएँ सम्मिलित होती हैं ।

हासा ार कथा " गाथा ें हासा दो ाजकुमारा का अपार उत्साह तथा उनके मन में प्रेम का उदय होते हुए भी माता रणकेसरो का मातृ प्रेम भावना प्रधान है । इस गाथा में रण केसरी द्वारा उठाए गए कष्टों संयम और अपूर्व मातृप्रेम का बढा सुंदर चित्र प्रस्तुत किया गया है । इस गाथा की कथावस्तु निम्नलिखित है --

पुडरगढ में चंदा गूजर नामक एक राजा राज्य करता था । वह अतुल पराक्रमी तथा अत्यंत दयालू था । उसके राज्य में विद्वानों और साधुओं का हमेशा आदर सम्मान होता था । चंदा गूजर की रानी का नाम रणकेसरी था । रण केसरी सुंदर घमान तथा दयालू थी । कोई संतान न होने से वह बहुत दुखी थी । देवी देवताओं की मनौतियाँ करने से भी कुछ लाभ न हुआ । इसलिए रानी घर छोडकर वन की ओर निकल गई । वन में एक दिन उसकी एक साधू से भेंट हो गई । रानी ने उन्हें प्रणाम किया । उत्तर में साधू बोला --

अगमणा देसाती आयो भोळो साधु । उतर देसान चलाये भोळो साधु ।

" पूर्व से आया हुआ मैं एक गरीब साधु हूँ । अब मैं उत्तर की यात्रा पर जा रहा हूँ ।"

रानी ने उससे प्रार्थना की -- " लोग आम और इमली के वृक्ष लगाते हैं,

लेकिन मैं दुर्भाग्य से कांटों से भरे वृक्ष और बबूल ही लगाती हूँ। हे साधू - महाराज आप मेरे इन वृक्षों की छाया में थोडा समय विश्राम कर मुझे संतोष प्रदान करें।"

"कोईक पेरे अंबा बे आमठी। केमरी तो बोये कोठवणी, बंबोठवाई।
मारे झाडेरी शिठी छाया, बेस भोठो साधु।"

इस पर साधू बोला - " हे रानी, तेरे उगाए हुए वृक्षों के नीचे में नहीं बैठूँगा। मुझे कांटे गडेंगे। तुझे मुझ से कुछ माँगना हो तो माँग ले। --

तारी झाडेरी शिठी छाया, कोनि बेसूं केसरीय।
मारे पेगमां तरशूठ भंजय, कोई मांगेर विय तो मांग केसरीय।
हम चाले हमारा देसय।

रानी ने साधू से संतान की याचना की। साधू ने उसे तीन मुट्ठी भस्म दी। कुछ दिनों के बाद रानी के दो पुत्र एवं एक पुत्री हुई। बच्चे बडे सुंदर थे। बडे लडके का नाम हासा और छोटे का नाम खबा रखा और लडकी का हांसली। राजा रानी बहुत खुश हुए परंतु यह खुशी ज्यादा दिन न चली। एक दिन राजा का स्वर्गवास हो गया। रण केसरी पर विपत्ति की कुल्हाडी गिर पडी। चंदा गूजर का खूनी भाई चलमका राजगद्दी पर बैठा। उसने रानी और उसके बच्चों को महल से निकाल दिया। रानी जंगल की ओर चल पडी।

कुछ वर्षों के बाद बच्चे बडे हुए। रानी ने उन्हें चलमका के पास राज्य में हिस्सा मांगने के लिए भेजा। हासा और खबा दोनों राजगढ पहुँचे। नगर द्वार पहुँचकर उन्होंने एक नाई राजा के पास भेजा। नाई ने राजकुमारों की भेंट राजा को देनी चाही लेकिन राजा ने नाई को जूतों से पिटवाया। तिलमिला कर नाई ने कहा —

— मालक तू तो बैठो एडरगडर। मारे नाशिबेमां मो च्यार मारर।

इसकी सूचना मिलने पर हासा और खबा राज दरबार की ओर चले। द्वार पर लिखा था। "चौदह वर्षों के वनवास के बाद ही हासा - खबा अंदर आ सकते हैं।" यह देखकर वे वापस जंगल में चले गए। चौदह वर्षों के बाद जब वे फिर एडरगढ की ओर चले तो मार्ग में कुएँ के पास एक राजकन्या दिखाई पडी। खबा उस पर मोहित हो गया। उसने उससे पानी माँगा। राजकन्या बोली -- " हे बटोही, यहाँ कुआँ भी है और बाल्टी रस्सी भी है। निकाल कर पी लो। मैं तेरे बाप की नौकरानी नहीं हूँ।"

ए पडे कुँवा बावडी, ए पडे बादली डोर।
पानी काडन पिलर, तार बापेर चाकर छेनी।

तब भी खवा आग्रह करता रहा । आखिर राजकन्या को पानी पिलाना ही पडा लेकिन खवा ने कहा - " हे गुजरणी, घूँघट में मुँह ढँककर पानी पिला रही हो, मैं पानी नहीं पिऊँगा ।कृपा करके अपना चेहरा मुझे दिखा दे ।"

तारो मुकलो ढाँको ढुँको पानी कोनी पिऊँ
ओ गुजरणी, तारो मुकलो बता ।

सहेलियों के कहने पर राजकन्या ने मुख दिखाया । खवा प्रसन्न हुआ और हासा की ओर लौटा । दोनों राजकुमार राजधानी पहुँचे । रणकेसरी रो रो कर अंधी हो गई थी । वह भी राजधानी पहुँची । उन्होंने अपना हिस्सा माँगा तो कहा गया कि तुम लोग अपनी असलियत साबित करो ।

रानी ने ईश्वर से प्रार्थना की और लोगों से कहा - मेरे बच्चों को मुझ से सात गज दूर रखो और हमारे और उनके बीच में परदा लगा दो । पुत्र प्रेम से मेरे आँचल से दूध की धार बहकर मेरे बच्चों के मुँह में जा गिरेगी ।" ऐसा ही हुआ और राजकुमारों की सत्यता प्रमाणित हो गई ।

कुछ दिनों बाद खवा के विवाह की बात निकली । उसने राजकन्या का स्मरण किया । वह राजकन्या उनकी बहन हाँसली ही निकली जिसे राणकेसरी ने बचपन में जंगल में ही छोड दिया था । दोनों भाइयों ने उसका विवाह पडोसी राज्य के राजकुमार से कर दिया । चलमका निःसंतान था । उसने अपनी पत्नी के साथ रणकेसरी से माफी माँगी और हासा को गद्दी पर बिठाकर वे जंगल में चले गए ।

हासा ने बहुत दिनों तक सुख से राज्य किया । लोग आज भी गाते हैं कि हासा और खवा दोनों भाई लोक कल्याण के लिए राज्य चलाएँ --

हासा - खवा दोई भाई । किदे राज, लोकर भलाई ।

प्रस्तुत गाथा भारतीय दृष्टिकोण पर आधारित है अर्थात सुखांत है । रानी रण केसरी के रूप में एक सती नारी का चरित्र प्रस्तुत किया गया है जो कष्ट सहिष्णुता में अग्रणी है । अपने सतीत्व एवं चारित्रिक दृढता के बल पर वह दिनों को सुख में परिणत करा लेती है । बंजारों की " सत" विधायक गाथाओं में रणकसरी की गाथा विशेष महत्व रखती है । इसी अभिप्राय वाली गाथाएँ भारत के प्रत्येक जनपद में प्रचलित हैं । विशेषतः मालवी, पंजाबी तथा ब्रज-प्रदेश में इस प्रकार की गाथाएँ विद्यमान हैं ।

संदर्भ ग्रंथसूची

१. 'Ballad is a folksong that tells a story'
- Gerould G.H.: The Ballad of tradition, Oxford University Press, 1932, p.2-3.

२. पारीक सूर्यनारायण : राजस्थानी लोकगीत, पृ.७८ ।

३. डा.सत्येन्द्र : ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन, पृ. ३४४ ।

४. डा.उपाध्याय कृष्णदेव : लोकसाहित्य की भूमिका, पृ.३६ ।

५. Practical Sanskrit English Dictionary, p.466.

६. " गाथं - गातव्यं स्त्रोत्रम् " भट्टाचार्य तारानाथ, वाचस्पत्यम्, चतुर्थ भाग, पृ.२५७० ।

७ अर्क : । यत् । वः । मरुतः । हविष्मान् । गायत् ।
गाथ । सुत सौमः दुवस्यन् । -- मॅक्समुल्लर (एडि॰)
व्हा.१, पेज ७३२, ऋग्वेद, १-२२-१६७ ।

८. " गाथा च गीतिका वापि तस्य संपद्यते नृपः । महाभारत ।

९. Graves Robert : The English Ballad, A short Critical Survey, Introduction.

१० Groves Robert : The English Ballad - Introduction, p.12.

११, Kittridge G.L.: and Sergent H.C.(ed.) English and Sootish popular Ballads - Introduction, p.17.

१२. Groves Robert : The English Ballad, p.17.

१३. Sidwick Frank : The Ballad (1915) p.39.

१५. " The ballad proper does not moralize or preach or express any strong partisan bias. "
- Graves Robert : The English Ballad, p.81.

१६ . पं.त्रिपाठी रामनरेश : कविता कौमुदी भाग-५, पृ.१-

१७ ठाकुर केशवकुमार : टॉड लिखित : राजस्थान का इतिहास" (अनु.) १९६२- पृ.१८७-९१.

१८. Letter written at Delhi, Barnier's Travells, p.256.

१९. द्विवेदी हजारीप्रसाद: हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर, सातवाँ संस्करण, १९६२ ,पृ.४८ ।

बंजारा लोककथा

बंजारा लोककथा

लोक साहित्य लोक जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति है। लोकसाहित्य के रससिक्त गीत जहाँ हृदय को आप्लावित करते हैं, वहाँ कथाएँ मनोरंजन के साथ ही मानसिक रस तृप्ति प्रदान करती हैं। मानव स्वभाव से ही कथाप्रिय है। कथा में मन को मोहित करने की अद्भुत शक्ति होती है। कथा मानव जीवन का उत्स है और कौतुहल भी। जीवन स्वयं सत्य है और कथा उसका प्रतिबिम्ब।"[1]

लोककथाएँ जीवन में व्याप्त हैं। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में लोक कथाएँ नाना रूपों में लोकजीवन को छापे हुए हैं। आदिकाल से वे हमारे साथ हैं। देश में उनका निर्बाध वास है। मानव के सुख-दुख, प्रीति-शृंगार, वीरभाव और वैर इन सबने खाद बनकर लोक कथाओं को पुष्ट किया है। रहन-सहन, रीतिरिवाज, धार्मिक विश्वास, पूजा, उपासना इन सबमें कहानी का ठाठ बनता और बदलता रहता है। कहानी मनुष्य के लिए अपूर्व विश्रांति का स्थान है। मन की थकावट को हटाने के लिए कहानी मानव समाज का प्राचीन रसायन है।"

लोक कथाओं का मूलाधार लोक मानस होने के कारण इनमें हमारी आदिम मनोवृत्तियाँ, पारंपरिक आस्था और विश्वास संचित होते रहते हैं। स्टिथ थामसन ने लोककथाओं की महत्ता को व्यक्त करते हुए उन्हें मानव-जाति के सांस्कृतिक इतिहास का महत्त्वपूर्ण भाग बतलाया है।[2]

लोक-साहित्य के अध्ययन में लोक कथाओं का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भारत कथाओं का देश माना जाता है। यहाँ लोककथाओं का अमर तथा अपार भंडार भरा हुआ है। विद्वानों की यही धारणा है कि काव्य की भांति कथाओं का भी आदि जन्म स्थान भारत है। योरोप में प्रचलित " इसाप्स फेबुल्स " में भारतीय प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। अतः संपूर्ण विश्व कथा साहित्य भारतीय कथा - साहित्य से प्रभावित है।

लोक कथाओं का स्वरूप सार्वभौमिक होता है। इसकी मर्यादा किसी एक देश, जनपद, प्रांत, जाति अथवा राष्ट्र तक ही सीमित नहीं होती। स्थान वैशिष्ट्य के कारण लोक जीवन, लोकमान्यताएँ, रीतिरिवाज, आचार विचार आदि तत्वों के प्रभावस्वरूप एक ही लोक कथा किंचित हेरफेर के साथ देश विदेश में भिन्न भिन्न रूपों में प्रचलित मिलती है। इस दृष्टिकोण से भारतीय लोक कथाओं का अपना विशिष्ट महत्त्व है।

लोककथाओं की प्राचीनता

वैदिक साहित्य कथाओंका अक्षय भंडार है। उसकी एक एक ऋचा कथाओं से संबद्ध है। इसमें कोई संदेह नहीं कि वेद विश्व-साहित्य की प्राचीनतम पुस्तक है। उसके कितने ही वृत्त कहानी के रूप में हैं। यहाँ कहानियाँ भी हैं और कहानी के बीज भी।[3] अतः भारतीय लोककथाओं की यह प्राचीन परंपरा वेदों से प्रारंभ हुई है।

ऋग्वेद में शुनः शेप का प्रसिद्ध आख्यान है, अपाला और आत्रेयी के नारी आदर्श का चित्रण भी इसमें मिलता है।[4] संवाद सूक्तों में पुरुरवा - उर्वशी संवाद[5], यम-यमी संवाद[6] और सरमा - पणिष संवाद[7] महत्वपूर्ण हैं। इसमें पुरुरवा - उर्वशी की कथा को विद्वानों ने " स्वान - मेडन " (Swanmaiden) मानक रूप के अन्तर्गत रखा है।[8] एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजियन एन्ड एथिक्स के अनुसार यह सुंदर और व्याख्यात्मक पुराख्यान (Myth) प्राचीन मूल का आख्यान है। पेंजर ने भी बताया है कि यह कथा संभवतः विश्व की प्राचीनतम प्रेम कथा है।[9] इस प्रकार हमें वेदों में वे बीज और बिंदु और किसी सीमा तक उनका विकास मिलता है, जो संसार की लोक संस्कृति और लोक कथा-कहानी के एक विशद भाग का मूलाधार है।

वेदों की बीज कहानियाँ पुराणों की कथाओं में पल्लवित पुष्पित हुई हैं। ब्राह्मण ग्रंथों में " शतपथ ब्राह्मण " में - पुरूरवा और उर्वशी की कथा प्राप्त होती है।

उपनिषदों में भी अनेक कथाओं का सूत्रपात हुआ है। नचिकेत की कथा है जिसमें यमराज से उसने तीन वर माँगे थे। केनोपनिषद् में अग्नि और यक्ष की रमणीय कथा दी गई है। उपनिषद युग के पश्चात रामायण और महाभारत के युग में कहानी को इतना अधिक महत्व दिया गया कि,वही सब प्रकार के भावों का माध्यम बन गई।

लोक कथाओं में " अभिप्राय " तत्व:

प्रत्येक लोककथा में कोई न कोई " अभिप्राय" (motif) निहित होता है। "अभिप्राय" लोककथा का प्रमुख तथा परंपरित तत्व है, जिसके द्वारा लोककथा की सामग्री प्रस्तुत की जाती है। डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के मतानुसार कहानियों के लिए अभिप्रायों का वैसा ही महत्व है जैसे किसी भवन के लिए ईंट गारे अथवा किसी मंदिर के लिए नाना भाँति की साज से उकेरे हुए शिलापट्टों का।[10]

लोककथा का सांस्कृतिक रूप, मनोवैज्ञानिक रूप और परिभ्रमणकारी रूप अभिप्राय द्वारा ही परिलक्षित होता है। संसार भर की लोककथाओं की एकता इसी के द्वारा अभिव्यक्त की गई है।"[11] लोककथाओं के निर्माण में एक मौलिक एकता छिपी हुई है, जिसमें सृष्टि के रहस्यों का दर्शन मिलता है। अभिप्रायों का रूप परिवर्तनशील रहता है और इनका विस्तार भी बहुत अधिक नहीं होता। मनुष्य के अतिरिक्त पशुपक्षी भी लोककथाओं में समान रूप से महत्त्वपूर्ण पात्र होते हैं। भारतीय साहित्य में परकाया प्रवेश, लिंग परिवर्तन, पशु-पक्षियों की बातचीत, किसी बाह्य वस्तु में प्राणों का बसना आदि कितने ही अभिप्राय हैं।

लोककथाओं की विशेषताएँ

लोककथाओं की अपनी कुछ मौलिक विशेषताएँ होती हैं। वे निम्नलिखित हैं।

(अ) विशुद्ध प्रेम का स्रोत : लोक कथाओं की आत्मा विशुद्ध प्रेम का स्रोत है। इनमें भाई बहन का विशुद्ध प्रेम, माता-पुत्र का अकृत्रिम वात्सल्य तथा पति-पत्नी का दिव्य और पवित्र प्रेमादर्श पाया जाता है। उज्ज्वल प्रेम की अनंत धारा ही इन कथाओं में बहती आई है।

(ब) अश्लीलता का अभाव लोककथाओं में प्रेम व्यापारों का विस्तृत चित्रण होते हुए भी अश्लीलता का अभाव ही पाया जाता है। इनमें प्रेम का स्वरूप प्राय:आदर्शवादी और नैतिकता पर अधिक बल देनेवाला ही रहता है।

(स) मूल प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति : कल्पना लोक में उड़ान भरनेवाली लोककथाओं की आत्मा मानव जीवन की मूल प्रवृत्तियों से दूर नहीं भटकती वरन उसका अनुगमन करती है। इनमें सर्वत्र मानव मन के स्थायी भावों का ही प्रभाव शाश्वत सत्य के रूप में प्रकट होता है। सत्य की विजय, असत्य की पराजय, सत्य पर आस्था, असत्य के दुष्परिणाम आदि मूल प्रवृत्तियों से बनी भावनाएँ एवं कल्पनाएँ लोककथाओं में संचारित होती हैं।

(ड) लोकमंगल की कामना : प्राय: लोककथाओं की समाप्ति पर --

" सर्वत्र सुखिन: सन्तु, सर्वे सन्तु निरामया: ।
भद्राणि पश्यन्ति, मा कश्चिद् दुख माप्नुयेत ।।"

संसार में सर्वत्र शांति का साम्राज्य स्थापित हो, अखिल मानव की भलाई हो और कोई भी व्यक्ति दुखी न रहे, इस प्रकार की आशीर्वचनोक्ति का उल्लेख कथाकार करता है। लोकमंगल की कामना ही इस प्रकार की उक्तियों में निहित रहती है।

(क) सुखांत और संयोगकारी अंत : लोककथाएँ प्राय: सुखांत ही होती हैं। लोककथाओं में दुख, निराशा, हानि और विपत्तियों के प्रसंगों का उल्लेख अवश्य हुआ है किंतु उनके अंत सुखद होते हैं, लोक कथाएँ सुखांत तथा संयोगांत होने का मूल कारण भारतीय आनंदवाद ही है।

(ख) अलौकिकता की प्रधानता : लोक कथाओं में प्रयुक्त पात्र एवं स्थान सभी परिचित होते हुए भी उनमें अलौकिकता का प्राधान्य और चमत्कार की प्रवृत्ति होने से ये कथाएँ रोचक और मनोरंजक होती हैं। इनमें मानव का मानवेतर प्राणियों से संबंध जुडता है। रहस्य - रोमांच, भूत, प्रेत, पिशाच, दानव, परी आदि का खुलकर वर्णन किए जाने से इनमें अद्भुत रस की धारा प्रवाहित होती है।

(ग) उत्सुकता का तत्व : प्राय: लोककथाएँ सुगम, सरस, रोचक एवं चित्ताकर्षक होने से वे श्रोताओं की उत्सुकता को जगाए रखने में समर्थ हो पाती हैं। वस्तुत: लोककथाओं में मुख्य वस्तु कौतूहल ही होती है, जिसके बिना श्रोता मनोयोग से उन्हें सुन ही नहीं सकता।

(घ) स्वाभाविक वर्णन की विशेषता : लोककथाओं में स्वाभाविक वर्णन की विशेषता पाई जाती है। इनमें वर्णन शैली की स्वाभाविकता कूटकूटकर भरी रहती है।

लोककथाओं की शैली : लोककथाओं की अपनी विधा और अपनी विशेष शैली होती है। यह शैली अत्यंत सरल, सरस तथा सीधी सादी चित्ताकर्षक होती है। इनमें संयुक्त वाक्यों की जटिलता के स्थान पर अत्यंत छोटे छोटे वाक्यों का प्रयोग होता रहता है, जैसे एक सूत्र में गुँथे हुए सुंदर मोती।

बंजारा लोककथाओं का वर्गीकरण :

बंजारा लोककथाओं का वर्गीकरण व्यक्त लोकजीवन के आधार पर ही किया जा सकता है। लोककथाओं के विषय तथा उनकी उपयोगिता के आधार पर ही उनका विभाजन रहेगा। इनमें से कुछ कथाएँ विशेष रूप से स्त्री-पुरुषों के लिए होती हैं और कुछ बालकों के लिए होती हैं। इस दृष्टि से बंजारा लोककथाओं का विषयगत वर्गीकरण निम्न प्रकार से है

१. उपदेशात्मक कथाएँ   २. प्रेमकथाएँ

रिवारिक प्रेमकथाएँ   ४. अद्भुत कथाएँ

५. मनोरंजक कथाएँ   ६. संकीर्ण कथाएँ।

उपदेशात्मक लोक कथाएँ :

उपदेशात्मक या नीति संबंधी लोककथाओं का दायरा विस्तृत होता है। प्राय: सभी लोककथाएँ उपदेशात्मक ही होती है, कई में यह उपदेश व्यक्त रूप में झलकता है तो कई में अव्यक्त रूप में। ये उपदेश पशु, पक्षियों की कथाओं में भी पाए जाते हैं। बंजारा लोक कथाओं में इनकी । टाँडे के घर घर में बूढे बच्चों को ये कथाएँ सुनाया करते हैं। इन कथाओं में सत्यका पालन, त्याग की महिमा न्याय की कठोरता, शरणागत की रक्षा तथा कर्म में संतोष आदि का भाव झलकता है। लालच और धोखा बुरी चीज है, जीवन में हौसला और संकल्प ही सब कुछ है। आप भला तो जग भला। बुरे का परिणाम बुरा ही होता है - कुछ ऐसे ही भावों से ये कथाएँ भरी होती हैं।

इस दृष्टि से " मारवाडी - राजपूत माटी " कथा द्रष्टव्य है, जो बंजारा न्याय पंचायत के समय दृष्टान्त के रूप में कही जाती है। इससे यह उपदेश ग्रहण किया जाता है कि अविवेक जीवन को नष्ट करता है। विवेक से चलने में ही जीवन सुखी होता है --

एक हेतोतो गाम। उगामेर माई एक मारवाडी रेतो तो। मारवाडी रेर भलो मोठो घर। उ घरेर उंच ओटापर मारवाडी बैठातो। ओर घरेर मुंडागेती एक रस्ता हेतोतो। मारवाडी बेठन कई विचारमां पडो। पलाटी मांडन एक हात मुंछोपर फेर फेरन मारवाडी दूर देखतोतो। उच्च बिणा एक राजपूत माटी ओर घेरेर मुंडारोती जारोतो। ओर ध्यान मारवाडी तरफ गो। मारवाडी जाणे मन मन देखन मुंछों पर हात फेररोच एक देखन गोरमाटी रिसेती अंगार हेगो। मारवाडी धाई जान गरम हे ताणी माटी कच --

" गोरभाई। काई छ ? कासेनं लडी छी ? "

राजपूतमाटी लाल हेताणी कच - " तूं मारं हातेमं समझोयाछा चाल हेट उतर। लडाईमां जे व्हीये ते व्हीये। एक तूं तो मरीस न तो मं।" मारवाडी दया धी कच-- " माई। आपण दोई लडीन मरजाया तो बिरं बातडूं सुन पोर पो-यान कुणं बाटी घाल : एर करता तू तार पोर पो-यानं अन्न मार पोरपो-यान मार

राजपूत माटी कबूल हेगो । दुसरे दन परभातो सारीनं मारन आयेरो ठेरो । राजपूत घर गयो । बिर, पोरपो-यान तलवार थी मारन ऊ मारवाडीर घर परभाते आयो । मारवाडी मातर स्व:र पोरपोरान मार स्को कोना ।

राजपूतर आयो अन आन कव-- " चल बेटा मारवाडी । हूं सारीन मारन आयो छुं । हे जो तयार अब ।"

मारवाडी थर थर कर गो तो बोलो -- अरे भाइ आपण दोइने लढेर तो छ पण काई बात छ ? को करता लढेर छ ? ते तो किस ?

राजपूत कव - " हूं जे विणा तार घरेर मुंडागेली आरोतो ते विणा तू मुछों उपर करताणी मार अपेमान किदो । म राजपूत बच्चा छु । मई अपेमान सहन कोनी करवावाळो । पर करता आपण लढताणी फेसलोच कर नाका ।"

मारवाडी हसना लागो । बोल्यो - " म मुछो उपर करतोतो इज बात छ ना ? अरे भाई । ले आ मुछो न हेंट कर लु छु पछतो काई छ ? "

राजपूत कव - " हे बरोबर । पछ मन काई कोनी कियेरो ।" अतरा बोलन राजपूत माटी घर चलेगो ।

(खडी बोली में अनुवाद)

एक गांव में एक मारवाडी रहता था । उसका विशाल मकान था । वह अपने मकान के बरामदे में बैठा हुआ था । वह पालथी मारे हुए विचारों में लीन अपनी मूँछों पर हाथ फेरता हुआ बैठा था । रास्ते से जाते हुए एक राजपूत बंजारे को यह देखकर बहुत क्रोध आया । वह गुस्से में आकर मारवाडी से जाकर कहने लगा -- " तूने मुझे क्या समझ रखा है ? नीचे उतर तो बताऊँ ।" मारवाडी की समझ में बात न आई । फिर से पूछा - भाई बात क्या है ? बंजारे ने कहा - "नीचे उतर सामने आ । जो कुछ होगा, देखा जाएगा । या तो तू मरेगा या मैं । "मारवाडी कहा - "यदि हम दोनों मर गए तो हमारे बीबी बच्चों को कौन पालेगा ? इसलिए तुम अपने बीवी बच्चों को मार डालो, मैं अपने बीवी बच्चों को । इसके बाद हम भिडें ।" इस पर दोनों राजी हो गए । दूसरे दिन सुबह दोनों ने मिलने का निश्चय किया । बंजारा घर गया, बीवी बच्चों को मार डाला और दूसरे दिन मारवाडी के यहाँ आया । मारवाडी ने अपने बीवी बच्चों को सही सलामत रखा था । उसने बंजारे से पूछा - " हमें लडना किसलिए है ? " बंजारे ने मारवाडी द्वारा मूँछों पर ताव देने की बात बताई और ललकार कि बडे छोटे का फैसला हो जाना चाहिए । मारवाडी ने हँसते हुए कहा - सी बात, लो मैं अपनी मूँछें नीची कर लेता हूँ

गए :

मानव जीवन से संबंध रखनेवाली कथाओं में प्रेमतत्व सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। दाम्पत्य जीवन से संबंधित कई कथाएँ ऐसी हैं, जिनमें प्रणय के बीज हैं और कालान्तर में वे विकसित होकर विवाह में परिणत हुए हैं। इन कथाओं में माता-पिता का अपने पुत्र के प्रति अगाध स्नेह, बहन का भाई के प्रति अकृत्रिम तथा सच्चा प्यार, पति पत्नी का पारस्परिक दृढ प्रेम तथा प्रेमी - प्रेमिका का निश्छल प्रेम स्पष्ट झलकता है। युवा युवती के प्रेम का उत्कृष्ट एवं अलौकिक आदर्श इन कथाओं में पाया जाता है। दाम्पत्य प्रेम का नितान्त पवित्र और विशुद्ध दर्शन भी होता है। प्रेम का स्वरूप संयमपूर्ण एवं अश्लीलता से परे है।

कई कथाओं में हीन व्यक्तियों से स्त्रियों के प्रेम का चित्रण किया गया है। कई में सतीत्व की परीक्षा ली गई है। कई में विमाता द्वारा दिए गए अनंत कष्टों का वर्णन किया गया है तो कहीं निरीह निश्छल प्रेम की महिमा वर्णित है। दाम्पत्य तथा प्रणय की शुद्ध संयत, नाना चेष्टाओं और शृंगार रस के विरह और संयोग दोनों पक्षों का जितना मार्मिक, सूक्ष्म, सरस एवं सजीव चित्रण इन कथाओं में हुआ है, वह अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

एक कथा " तारा र साकी" दृष्टव्य है, जिसमें दाम्पत्य संबंधों की पवित्रता व्यक्त हुई है --

एक गामे मां एक साक्कार वेतोतो। ओर पेटन एकच बेटी पेदा हुई थी। ओ नाम तारा। बेटी सारा सारी घर याणेमां लाडेर वेतीती। माँ बापेन प्यार देयवाला तारा २-३ वर्षर वेताच पोर याडीरो स्वर्गवास वेगो। ई घटना पर याणो घणो दुःख करणाको। प्यारी लाडली बेटीर अन सुखवारी देखभाल करेन साक्कार मांग कर ली दो। बाळ पणोमां वीर मासी वो ती घणा आचरेतीती। ओन आपण खास बेटीर समान प्रेमती रखाडती तो। क्यों दाडेर बापू अन बेटीमां दाडे डाट प्यार बढतो चाले। पणन ओर मासीरे मनमां जरा काळो पेदा वेय लागो। मीनाती मीना वर्षो ती वर्षो तारान काप्यजाज वेय लागो। तारा मन ही मन सोच करच की भगवान मारी याडीन लेजान मन कोई वनवास रे, मायी घाल दीनो भगवान। तारकन ईन न्याय कांई तू मारे ऊपर अतरा का रूठो वेगा। ये से वोरी याडीरे बाबतेमां सोंचती बेटी ती। जे वेळान वोर मासी आन। ओर मार कुटन कामन लगान दीनी तारा विचार करच -- हे रामा, माये घरे माँ बेयर हसेर कनी जंगलेमा जान प्राणी संगती करन। झाडेर फल फूल खान। मारो वनवासी जीवन बिताणों तो घणो

आवो करन केन वोरी याडीन हरदे लान । क्वका याटीम अक नारी, मासोरो जाने साफ मारे बापेरे प्रेमन तोडन अक जंगळ झाल्ल् चूं । पणान माता तार नगामी पर रे देयस ।

तारा आपणेो मां - बापेरो घर छोडन आतु वणा । मनेमां ढावलो करच रोक्त " माय - बापेरी मारी हने ली मासो रे जायेमां म छोड चली ।" ई ढावलो मनेमां लेन तारा रोतीरोती वन्वासीणी वेन । जंगळ भटके लाग आखिरी । पर तारा एक नियाजणी की की स्थाने मां जान एक चोडो मेदान देखन भूके तरस्ती लांव पडगी । अन भगवान ने हरके करकन वनवासी ढाळेमां दुःख व्यक्त करे लागे । तातार दुःखेर आवाज सामळन सारी जंगलेन पशु-पक्षीन चिंता पडगी की असे जंगलेमां मां कुण आन रोयच ।

भगवानेर लीला अजब छे । जंगलेर क्वेरू आन तारेर दुःखेमा वोन सायता करे लाग । मोर आन स्वता वोरी पुंचडीर छेंडी कर दीने । हणणी आन वोरे कन्मिां एक तरारी मधुर स्वर करे लागे । कबुतर आन पंखारे न्यी आव वाळ घाले लाग । हणात झाडेर फल नान खराये लाग । टीं टोडी पाणी लान पराये लाग सारी प्रकृति, धरती तारोरे दुःखे भाग लेन । तारार सेवाम लागती । पणान तारा सारक भगवाने पर भरोसा करन वोरी माता नव हरदे कररीच । रात दन वोरे मनमां मीरक वोरी मातारच हाकर छ ।

तारार ई भक्ति भरी हाक स्वर्ग लोकमां वोरी याडीन बरागी । वोर माता दुःख भरीन वेन भगवाने जान करीच की कृपालू दयानिधी भगवान तारे मनेमां इच ईच्छा वेती कांई । मार बेटी पेद वेणो तूं मन अतलीयाणे अन वोमा नाना तरार वन्वास आणे भगवान तूं कतरा क्रूर छी । दयाहीन छी । दया कर बापू, बेटी पर दया कर । भगवानेन तारारी याडी पर दया आवगी । भगवान कवकी म तारी वेटीन बराबर सुखी करं, चुं । तुंकांई चिंता मत कर ।

भगवान साचीज दया छः तारारे वनवासेरो हाक सामळन विचार कररोच की तारा रात दाड मार ध्यान करती बदळार वर्षां वन्वास की दीच । पणान अब येन बराबर सुख देणो करम । वान दनीयामां घालव ।

एक दाड अचानक एक राजा शिकार करन ओच जंगलेमां आवच । तो तारोर रूप अन गुण पर मोहित वेन । वोती गंधर्व वायार कर लेना तयार वेजा गवव करा कतो तारा घण रूपवान सुंदर छोरीरच । वोरी मोटी मोटी हणोरी आंकी,

आंकी, स्हिणीर कड, कमळेर कळीर न्यार, ओगी पुष्ट छाती, गोरो रंग, मोती सरीख ओर दाते पंगत, नाक सुडेना नोटस, नवजवान छोरी वोरे मने मां घणो प्यारेर माया घालदन। राजा विचार करच की उस रूपवान, गुणवान छोरी मन दुसरी कतीच मन कोनी। उस करन केन वोरे कन आन से प्राणी पवशीयुन प्यारेती खायन पियन देन। बमेमां वनोनव सगासेण बणान। तारोर जिवनमां एक नवो सुखदायक जीवन पेक्षा करच। तारा वोरे साथ वाया करलच। मन ओच जंगळे मां तारा नामर एक मारी शेर वसादच।

अब वनवासीणी तारा सुक्ती जंगलेर पशुपक्षीन दाणा पाणी घालन वो तो न भी सुक्ती रकाडती रामराचकरच।

(खडी बोली में कथा का सार)

एक गांव में एक साहूकार रहता था। उसके एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम तारा रखा गया। बेटी को बहुत लाड प्यार से रखा जाता। तारा २-३ वर्ष की हुई थी कि माता स्वर्ग सिधार गई। अपनी लाडली बेटी की देखभाल करने के लिए साहूकार ने तारा की मौसी के साथ दूसरा विवाह कर लिया। विमाता पहले तो तारा को बहुत चाहती थी, लेकिन धीरे धीरे पिता-पुत्री के अगाध स्नेह संबंध को देखकर उसके कलेजे पर सांप लोटने लगा। तारा पर विमाता के अत्याचार बढ गए। वह बेचारी ईश्वर को याद करती, भाग्य को दोष देती और जीवन से तंग आ गई। आखिर घर छोडकर वह जंगल में चली गई। भूख लगी तो उसे भगवान की याद आई। तारा की करुण आवाज सुनकर जंगल के पशुपक्षी चिंतित हो उठे।

भगवान की कृपा से जंगल के पशुपक्षी तारा पर कृपालु हो उठे। मोर, हिरन, कबूतर, बंदर व टिटहरी क्रमश: उसकी जरूरते पूरी करने लगे। तारा अपनी स्वर्गीय माता का स्मरण करती रही। उसकी माता ने स्वर्ग में भगवान से विनती की कि उसकी असहाय बेटी की रक्षा की जाय। भगवान ने "एवमस्तु" कह दिया।

एक दिन एक राजा शिकार खेलने उसी जंगल में आया। तारा के रूप और गुण पर मोहित होकर उसने तारा के साथ गंधर्व विवाह करने का निश्चय किया। उसकी बडी बडी आँखे हिरनी जैसी थीं, सिंहिनी की तरह उसकी कमर थी। कमल की कली जैसी नोकदार एवं पुष्ट वक्षास्थल। शरीर का रंग गोरा और मोती जैसे दंत पंक्ति। दोनों का ब्याह हो गया। तारा सुख से रहने लगी।

उपर्युक्त कहानी का अभिप्राय यह है कि काल प्रबल होता है - उसके प्रभाव से भाग्योदय होते देर नहीं लगती। सज्जन और दुर्जन को सत् और असत् का फल इसी

जीवन में मिल जाता है ।

इस कहानी का वस्तु गठन सुंदर और संबद्ध है । इसकी शैली भी मनोरंजक एवं रोचक है ।

पारिवारिक कथाएँ

पारिवारिक लोककथाओं में परिवार के व्यक्तियों एवं उनके द्वारा निर्मित घटनाओं का समावेश होता है । परिवार के सदस्यों का परस्पर रागानुराग,ईर्ष्या, स्वभाव प्रतिवर्तन आदि सामान्य असमान्य घटनाएँ होती हैं और उनमें उपदेश या उद्देश्य निहित होते हैं ।

इस प्रकार की एक कथा है " भाई मेनेर साकी" जिसमें भौजाई का ईर्ष्या और धन की लालच के कारण निरीह बहन को कष्ट उठाने पडते हैं । कथा इस प्रकार है -

दो भाई अन् एक भेन वेती । मेनेर वाया एक गरीब घरेमा देना को वाया वेगो ।भाई बेपार कर तोतो । मेनेन बेटबेटा वेगे । गरीबी भाई पेट भरन खायेन कोनी मळतोतो । भाईन भेटणू करन घणी बेट बेटान सोबत लेन माहेरेन आई । भेनेन मोटो अन् नानक्या भाई ओन वोळके कोनी। घरमों लोग ओळख दिने कोनी । पण नानक्या भाईर गोण्णी ओन घरकाम करे सार, कामे वर रकाड लिदी ।

नानक्या भाई भाई मदद करतोतो । ई देखन नानकी भोजाईर पेटे मां पाप आवगो । बायार पाळती साप मंगान । मुंडी अन् पुंचडी कान बगान माली छ करून नणादेन दिनी । ऊधर नेजान नगान रांदी । हांडीमां सापेर बेटे भाई ती सोनो, माणिक मोती निकलो । कुलेन साक्कारेर घर वो धणी गोळण गे । वनून बफळ पिसा भळे । ओ साक्कार वेगे । नानकी भौजाई कपटेती मार न्वरत्नेर हार चोरले गेव करून की । धणी गोव्या पोलीसने खर हकीगत केबो । पोलीस खर पकडन भौजाईन दाण्डा दिने । दोई भाई मेनेर माफी मांगे । नानक्या भाई मेनेन मार । गोणी दाण्डा दिनी करन । वोन व वो तार याडी बाप धण पडेच । तुं एकदम मुंगळी बालायव करन केले साथ बाप मां येती । जीव कोई मोटो छेनी करन मुंगळी घाटी । भाई वोटे पर बेटे थे वो भी देकरेते । लार लार घणि वतो । सासू ससर खरे पीरे ते सुखी वेसे ।जमाई खर हकीगत केताफनीन गोणीन ओर माहेरेर घर छोड दिनो ।

ओर सास माणास माणासेन ओळखणू । कपट न करणू सिख रेणू ।

(खडी बोली में सार)

दो भाई थे । उनके एक बहिन थी । बहिन की शादी एक गरीब के साथ की

गई । भाई व्यापार करते थे । बहिन के दो संतानें थीं - एक बेटा और एक बेटी । बहिन जैसे तैसे गरीबी में अपने दिन गुजार रही थी । एक दिन वह अपने बच्चों के साथ भाइयों के यहाँ आई, लेकिन उसे किसी ने नहीं पहचाना । छोटे भाई ने घर के कामकाज करने के लिए उसे रख लिया । छोटे भाई की पत्नी को यह सहन न हुआ । उसने अपनी ननद को रास्ते से दूर कर देने का उपाय सोचा । एक विषैली साँप का सिर काट कर उसे एक हडे में पकाने के लिए दे दिया । बहिन ने पकाना शुरू किया तो साँप के सिर से सोना, माणिक, मोती, आदि बहुमूल्य वस्तुएँ प्राप्त हुई । बहिन ने वह सब साहूकार के यहाँ बेच दिया और बदले में बहुत धन प्राप्त किया । भौजाई ने पुलिस में शिकायत की कि उसकी ननद ने उसके गहने चुराकर बेचे हैं । लेकिन सत्य छिपा न रहा । दोनों भाइयों ने अपनी बहिन से माफी माँगी ।

पारिवारिक जीवन की मधुर तिक्त घटनाओं की दृष्टि से " याडी बापेर साकी" नामक एक दूसरी कथा है, जिसमें वृद्ध माता - पिता की असहायता के कारण पुत्र और बहुएँ उन्हें ठुकरा देती हैं किन्तु बाद में धन के लालच से उन्हें अपनाते हैं ।

इस प्रकार इन कथाओं में पारिवारिक प्रेम की महत्ता, माँ - बाप के प्रति संतान का कर्तव्य आदि बातें बताई गई हैं । इस प्रकार के अभिप्रायों से युक्त इन कथाओं से मिलती जुलती अन्य जनपदीय कथाएँ मिलती हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि इन कथाओंका रूप सार्वदेशिक और सार्वकालिक है ।

अद्भुतरम्य कथाएँ

अद्भुत रम्य कथाओं का विषय है अलौकिकता । इसमें चमत्कारिक घटनाओं की भरमार रहती है । प्राय: जादू-टोना, भूत-प्रेत तथा अद्भुत परियों का ही इनमें उल्लेख होता है । दिव्य, भव्य, अलौकिक ही इन कथाओं के मूलाधार हैं । किसी का कटा हुआ सिर किसी धड से जुड जाता है, तो किसी अदृश्य शक्ति का शाप या वरदान प्राप्त होता है । ऐसी कथाएँ बच्चों का ही नहीं वयस्कों/कथा इसका ज्वलंत उदाहरण है --

एक बामण वेतो । ऊ दाडी हात देखन पेट भर खा । एक दाडो ओन काहीज मळो कोनी । ढालो हातेती घरेन आयो । गोणि को ओत राजार घरेन जो काही तो भी मळ जाय । राजार घरेन गो । राजार एक दोस्त तेली वेतो । ओ दोई ागडीर डाव रमतेते । बामण बचो आज तार दोस्तोरो पराभव वेन । रात ऊ भर जाय । राजा बामणेन कैद करवा रख । रात तेली खरोखर मरगो । परभाती बातमी

कगो । बामणेन मान घणो मडे लागो ।

बामण के लागो देन रन मदो रा र लागाको छेनी । मार मामर मामर ऊपर ओढा एक रात म्हाण करन पव बेरे । वत राक्षस बस्ता रच कान केले दे । दवडी पिराए आधोराज्य अन् राजकुमारी तो वाया करदाश करन दवडी दिने ।

वत्तेन तीन भाई शिपाई पर राज्येमा जेते । वो रजाणर घरेन मारेटे । वो तीनी भाई विचार करन राजा कन आन दम समाचार करन के । सात गाभेर सीमेपर मर्दा मेलीयाये । मोटो भाई जागणा किदो । अन् दोई नानक्या मागे । वतराम ऊ तेली के लागो मार अधूरी इच्छा रगीच । तुं मार बरोबर पगडी रम दोई पगडी रमच । तेली हार जावच । अन् ओर शेवट बेजावच । इसे बातो बामण अत सेन दरबार मां केरोच ।

वचरे भाई ऊठो मोठी सोगो । पण घटना को कोनी । वतराम वतेरो राक्षस राजकुमारीन दरबारे माईनी पाडलाराते । अन् ओन खाए । साफ तेल कलकडा येतो । इ ओन देख लिदो ओर कनेशी जान दिटो तो राक्षस अन् राजकुमारी निदेमा सुती बेरीच ।

तलवारेती ताक्त लगाडन मारो । गले पर तो ओर गळो जान कटाई पडगो । बामण एवढी रो बात्ते केरोच । नानक्यान वटाडन ए सोगो । वतेन राक्षसेर राजा हमला करे सारू वते न निकळातो । ओन नानक्या भाई अडान कच । भा सुतो जे लोकन मारणो इ वीरत्व न व्हं । इ बात ओर पटनाच । दोईर दोस्ती वेज्याच । वत राजवाडो गाम तळावे बावडी बगीचा से साफ तो तयार करदव । ओडगर जावच दाडो निकळीयावच । प्रत्येक जणा स्वतारपरंग कच । नानक्या सेनापती व्व । मोटो राजा व्वेट राजकुमारी ती वाया करच । बामण राजज्योतीशी वेजाव्व । हनू इ साकीछ ।

(खड़ी बोली में सार)

एक ज्योतिषी था । एक दिन उसे कुछ प्राप्ति नहीं हुई । वह खाली हाथ घर लौटा । कुछ पाने की आशा में वह राजा के यहाँ गया । राजा तेली के साथ शतरंज खेल रहा था । ज्योतिषी ने राजा से कहा -- " तुम्हारा यह मित्र आज रात को ही मर जाएगा । " राजा ने क्रोधित होकर उसे बंदी बनवा लिया लेकिन तेली सचमुच रात्रि में गुजर गया । प्रात:काल यह वार्ता राजा को मिली तो वह ज्योतिषी का लोहा मान गया ।

ज्योतिषी ने राजा से कहा - " इस नगर से दूर सात गांव हैं । उन सातों

गांवों की सीमा पार एक नाला है। उस नाले पर एक बडा राक्षस निवास करता है। "यह सुनकर राजा ने ढिंढोरा पिटवाया कि उस राक्षस को मारनेवाले को आधा राज्य और राजकुमारी पुरस्कारस्वरूप दी जाएगी।

राजा के सिपाहियों में तीन सगे भाई भी थे। यह घोषणा सुनकर वे राजा के पास पहुँचे और राक्षस को मारने का संकल्प बताया। राजा की सम्मति पाकर वे राक्षस को मारने के लिए चल पडे। इधर राजा की घोषणा सुनकर राक्षस राजकुमारी को उठा ले गया। राजा चिंतित हो गया। तीनों भाई राक्षस को मारने के प्रयत्न में लगे। रात के समय बडा भाई पहरा देता रहता था, बाकी दोनों सोते थे। राजमहल में ज्योतिषी राजा को उस ओर की सारी घटनाएँ बताता जाता था।

उधर मौका देखकर बडे भाई ने राक्षस की गरदन उडा दी। राजकुमारी को साथ लिए तीनों भाई दरबार में उपस्थित हुए। अपने वचन के अनुसार राजा ने बडे भाई के साथ राजकुमारी का ब्याह कर दिया तथा कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण उसे राजा भी बना दिया। मंझले भाई को प्रधानमंत्री व छोटे भाई को सेनापति के पद पर नियुक्त किया। ज्योतिषी राज ज्योतिषी बन गया।

इस प्रकार यह कथा अलौकिकता, साहसिकता तथा आकर्षण से युक्त है।

<u>मनोरंजक कथाएँ</u>

इनका प्रधान उद्देश्य मनोरंजन प्रदान करना होता है। इन्हें बालक, वयस्क एवं प्रौढ सभी बडे चाव से सुनते हैं। इनमें से अधिकतर कथाएँ एक व्यक्ति की बुद्धिमानी एवं दूसरे व्यक्ति की बेवकूफी पर आधारित होती हैं। विविध जातियों के गुण और स्वभाव पर, उनकी विशेषताओं, दुर्बलताओं और मूर्खताओं पर छींटा कसा जाता है। इनमें प्राय: मनोरंजन के साथ ही उपदेश और नीति का भाव भी निहित रहता है।

इस दृष्टि से " डोकरी अन् जनावरेर साकी " कथा द्रष्टव्य है, जिसमें बुढ़ी की चालाकी के साथ ही साथ मनोरंजक घटनाएँ भी अंकित हुई हैं --

एक वेळा डोकरी आवणी बेटीन भेटे सारू पर गामेन जाबाळ वेती बतरामा। अेर बोडी डोकरीन की - मीं तुं मार नणादेन भेटेन जारीचो तो जो। पण वाटे पर वाघ, चितो, किरबा, सिंह घण ढीवो तोन खा जावच।

डाकरी बोडीन की - बोडी बोडी मन तुंबडीमां घालन सिवीर गळेमां लटकाताळीन। मेल दकतो म डगर जाऊंचो। डोकरीन तुंमडीमां घालन सिव्वीर

गळेमां बांधन छोड दिनी । वाटे पर वाट देक्ते गो वेटे केरे ते । ओ स्विीर गळे भाई काईव जको बायेर विचार कर रेते । स्त्रिी जाते सात तुमडी फोडनाके अन् डोकरीन खामा के लाग ।

डोकरी की मन तम लारती खाओ । अंगडिया लकडी लान अंगार लगाडो अन् राख करो । ओती मुंडो लू लून पछ मन खाओ । से जणा लकडी लाए अन् बाळन राखकिदे । डोकरी राखेर माई ब्रेसगी । बाजून से घेरन ब्रेसगे । डोकरी पादी जोरेमा राख वडी बाजूरी आंकेमां । आंकी मसळेगोणा डोकरी डगरगी ।

(खडी बोली में सार)

एक बुढियाने अपनी बेटी से मिलने पडोस के गांव जानेकी तैयारी की तो उसकी बहू ने कहा -- " मार्ग में बाघ, सिंह, चीता आदि हिंस्र पशु मिलेंगे, वे तुझे मार कर खा जाएँगे ।"

बूढी ने अपनी बहू से कहा -- " हे बहू ! तू मुझे एक नाली में रखकर उसे गधे के गले में बाँध देना । इस प्रकार मैं निर्विघ्न जंगल से चली जाऊँगी ।" बहू ने ऐसा ही किया ।

मार्ग में बूढी एक स्थान पर सुरक्षा के लिए रुक गई । जंगल की लकडियाँ जलाकर आग तैयार की । लकडियाँ जलने के बाद वहाँ उनकी राख रह गई । उसी राख को घेरकर वह वहाँ बैठी । बूढी ने एका एक जोर से पाद दिया, जिससे आसपास की राख उडकर उसकी आँखों में छा गई । बूढी अपनी आँखें मलते मलते चली गई ।

संकीर्ण कथाएँ

इनके अन्तर्गत बालकथाएँ, हास्यकथाएँ, परीकथाएँ आदि समाविष्ट होती हैं । इनका प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन होता है - विशेषत: बालकों का । इस प्रकार की " कागला अन् चलकोडी " नामक एक कथा यहाँ प्रस्तुत है --

एक वेतो कागला । एक वेती चलकोडी । एक दाडो कागला गोतो हाटेन । जना पाणी आयो जोरेती । जना डाको पाणी आयो जोरेती । कागलोरो घर वेतो गोबरेरो । चलकी डोरो घर वेतो मेणोरो । पाणी आयो जोरेतो । कागलारो घर वैरान डगरगो । जना कगलान लागो सी । कागला धांसन गो, चल कोडीर घरेन चल कोडी बाई, चल कोडी बाई चल कोडी बाई बाग लो काडा । जना थाम मर धणिान खायेन घालरी चूं । चलकोडी बाई, चलकोडीबाई वागलो काड । थाम मार

घणिन आंगोळी करारी चूं । चल्कोडी बाई, चल्कोडी बाई वागली काड । जना थाम मर घणिन स्वाररी चूं । घटीरकन घणिन स्वार देन चल्कोडी वागलो काडी । दे क्तो तो कागला पाणीती घुडारो तो घुडान घुडान कागला मरगोतो । कागला वत, हम अत ।

(खडी बोलीमें सार)

एक था कौवा । एक थी चिडिया । एक दिन कौवा गया बाजार । जोर से वर्षा हुई । चारों ओर पानी ही पानी हो गया । कौवे का घर था गोबर का चिडिया का घर था मोम का । कौवे का घर उड गया । वह ठंड से कांपने लगा । आसरे के लिए चिडिया के घर आया । "चिडिया बाई, चिडिया बाई जल्दी दरवाजा खोल ।" " भाई जरा ठहर, मैं अपने पति को भोजन करा रही हूँ ।" चिडिया बाई, चिडिया बाई जल्दी दरवाजा खोला ।" भाई जरा ठहर, मैं अपने पति को नहला रही हूँ ।" " चिडियाबाई, चिडियाबाई, जल्दी दरवाजा खोल ।" भाई जरा ठहर, मैं अपने पति की तैयारी कर रही हूँ ।" जब चिडिया ने दरवाजा खोला तब कौवा मर चुका था ।

यह कथा " क्रम संबुद्ध लघु छंद " की कोटि में आएगी । जिसमें कथावृत लघु और संतुलित वाक्यों की पुनरावृत्ति कथा पूरी होने तक होती रहती है । इसमें बाल मनोरंजन के साथ ही बाजार, वर्षा, पानी, गोबर का घर, मोम का घर, घोंसला आदि अनेक वस्तुओं का ज्ञान कराने का उद्देश्य भी यहाँ निहित है ।

कथा के अंत में चिडिया की टालमटोल की वृत्ति का प्रमाण देते हुए एक प्रकार की शिक्षा का "अभिप्राय" भी है कि शरणागत को तत्काल सहायता देना हमारा धर्म है ।

बंजारा लोककथाओं का मुल्यांकन

बंजारा लोक कथाओं की परिधि लोकगीतों के समान विशाल एवं विस्तृत है । यहाँ विस्तार भय के कारण कुछ प्रातिनिधिक कथाओं का ही चयन किया गया है ताकि इन कथाओं की अनेक विशेषताओं तथा विविध प्रवृत्तियों का विश्लेषण प्रस्तुत हो सके ।

इन कथाओं में बंजार - जीवन के सुख-दुख, आशा-निराशा, हर्ष-खेद, ईर्ष्या - कुंठा, त्याग भोग आदि गुणों का सजीव चित्रण किया गया है । लोक विश्वास और लोक मान्यताओं का भी उचित प्रतिनिधित्व हुआ है । मातृ-प्रेम की महिमा तथा ईश्वरीय शक्ति की महत्ता भी बताई गई है । लोककथाओं में मनुष्य

की सहायता मनुष्य ही नहीं पक्षी भी करते हैं । " बुरे काम का फल बुरा ही होता ", इस उक्ति का प्रतिपादन " भाई मेनेर " तथा "मां याडीर " नामक कथाओं में हुआ है । भौजाई को अपने दुष्कर्मों पर पश्चाताप करना पड़ता है । पुरूष स्त्री के वशवर्ती के रूप में दिखाई देते हैं । उदाहरणार्थ " मां याडीर " कथा का भाई जो पत्नी के इशारे पर बुरा से बुरा कर्म करने पर उतारू हो जाता है । इन कथाओं में स्त्री-चरित्र का आदर्श भी है और उनका स्वार्थ रंजित रूप भी। पारिवारिक कथाओं की भाभियों और बहुओं की स्वार्थमयी कुत्सित प्रतिमाएँ यथावत प्रस्तुत कर दी गई हैं । इन कथाओं में लोकधर्म का निर्वाह किया गया है । धर्म के रक्षण के लिए प्राणों की भी आहुति दी गई है । भारतीय आदर्श आदर्श के अनुसार ये कथाएँ सुखांत हैं तथा इनमें लोकमंगल की भावना परिव्याप्त है । जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण मिलता है । प्राय: सभी कथाओं का अंत : " अब तम सुखेती करन लावो " "क्वटन करण सिल रेणू " आदि आशीर्वादात्मक वचनों से होता है ।

लोककथा लोकजीवन की अनुकृति है, इसी कारण जन जीवन का उल्लास - आवेश, रीति रिवाज, स्थानीय संस्कार आदि भावों का प्रस्फुटन इनमें गहराई से हुआ है । ये कथाएँ चित्ताकर्षक तथा लोकरंजक हैं ।

इनका कथानक सरल और स्वाभाविक गति से युक्त है । कहीं भी घटनाओं के घात प्रतिघात से इनकी गति अवरूद्ध नहीं हुई है । शैली मनोरंजक एवं रोचक है । इन कथाओं की बंजारा भाषा शिष्ट एवं सशक्त है । उसमें गति एवं वाणी का विलास है । प्रादेशिक भाषाओं का प्रभाव भी परिलक्षित होता है । उदाहरणार्थ बागला" (दरवाजा - कन्नड) ," वेळा" (बहुवचन - समय - मराठी) एवं " घणो " (बहुत - मारवाडी) आदि शब्द ।

संक्षेप में बंजारा लोककथाएँ सरल , स्वाभाविक संक्षिप्त तथा रोचक हैं ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. डा.शर्मा विनयमोहन : दृष्टिकोण, पृ.५

२. Stiath Thompson : The Folk Tales, p.443.

३. डा.अग्रवाल वासुदेवशरण : "धूमिल फूल" की भूमिका

४. ऋग्वेद - ८-९-१ ।

५. वही-१०-६५।

६. वही-१०-१० ।

७ वही १०-१३०।

८. Scandinavian Legends and Folk Tales, p.174.

९. Penzer, N.M., The Ocean of the Story, p.345.

१० आजकल-लोककथा अंक,मई १९५४,पृ.१११

११ डा.सत्येन्द्र : लोकसाहित्य विज्ञान, पृ.२२२।

बंजारा : लोकोक्तियाँ

बंजारा लोकोक्तियाँ

लोकोक्ति लोकसाहित्य का महत्वपूर्ण अंग है। यह लोक के अनुभवसिद्ध ज्ञान की निधि है, जो कि लोकगीत,लोककथा की भाँति मौखिक परंपरा के माध्यम से लोक की विरासत के रूप में उपलब्ध है।

अनुभव, अनुभूति और विचारों के आधार पर लोक की उक्ति लोकोक्ति है। लोक की यह उक्ति लोक छाप पाने पर ही लोकोक्ति बनती है।[1] लोकोक्ति लोककथा और लोकगीत से पृथक होती है, लेकिन उसमें कथा की रोचकता और गीत की गति एवं ध्वनि होती है। इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है।

आकार में छोटी होते हुए भी लोकोक्ति अपने मार्मिक कथन में सूक्ष्म, गहरी, पैनी एवं सशक्त होती है। इसमें मानव के सूक्ष्म निरीक्षण, अनुशीलन और अनुभव का सार निहित होता है। इसमें कटु सत्य एवं सांसारिक व्यवहार पटुता कूट कूट कर भरी होती है। इनमें गागर में सागर भरा रहता है। इनमें जीवन का सत्य बडी खूबी से प्रकट होता है। इसी कारण इन्हें डा. वासुदेवशरण अग्रवाल ने "मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र " कहा है।*[2] ये मानवीज्ञान के घनीभूत रत्न हैं।

लोकोक्ति का रूप सार्वभौम होता है। इसमें विषय का क्षेत्र सीमित या संकुचित नहीं होता है। जीवन, दर्शन, ज्ञान, व्यवहार, व्यापार, नीति, राजनीति, समाज,इतिहास सभी क्षेत्रों में इसका मुक्त संचार रहता है। जीवन की तीक्ष्ण आलोचना,लोक अनुभूति का अर्थ गौरव और उनकी व्यावहारिक पैनी दृष्टि, उसका मानसिक धरातल, उसकी रुचि या अरुचि की परिचायिका लोकोक्ति है। अर्थात कहावतें,पहेलियाँ, सूक्तियाँ, मुहावरे आदि सभी लोकोक्ति के अन्तर्गत आते हैं।

लोकोक्तियों की प्राचीन परंपरा

लोकोक्तियों की परंपरा बहुत प्राचीन है। संस्कृत साहित्य लोकोक्तियों का अखंड भंडार है। वेदों और उपनिषदों में भी इनकी कमी नहीं है। महाकवि कालिदास, माघ, भारवि और हर्ष की अमर कलाकृतियों में इनका सुंदर प्रयोग मिलता है। पंचतंत्र, हितोपदेश आदि नीति कथाग्रंथों में प्राय: नीति संबंधी लोकोक्तियों का यत्र तत्र प्रयोग किया गया है।

भारत वर्ष के प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेद में लोकोक्तियों के अनेक उदाहरण

मिलते हैं । जैसे -- " न ऋते श्रांतस्य सख्याय देवा : । " अर्थात बिना कष्ट उठाये देवता भी सहायता नहीं करते ।

रामायण महाभारत तो लोकोक्तियों से भरे हुए हैं । रामायण में --

" आम्रं छित्वा कुठारेण निम्बं परिचरेत्तु क: ।
यश्चैनं पयसा सिंचन्ते नास्य मधुरो भवेत् ।"[3]

अर्थात आम के पेड को कुठार से काटकर नीम की परिचर्या कौन करे ? नीम को दूध से सींचने पर भी वह मीठा नहीं होता । तथा " सेनापतौ यशो गन्ता, न तु योद्धाः कथंचन ।"[4] अर्थात -- " लडे सिपाही नाम सरदार का ।"

पंचतंत्र , हितोपदेश आदि ग्रंथों में नीति संबंधी उक्तियाँ बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध होती हैं । " कंटकेनैव कंटकम् " तथा " शठे शाठ्यं समाचरेत् " ऐसी ही उक्तियाँ हैं, जिनमें नीति या उपदेश भरा पडा है ।

प्राकृत साहित्य भी ऐसी उक्तियों से समृद्ध है, जिसमें लोकानुभूति की व्यंजना होती है । महाकवि राजशेखर के लिखे हुए " कर्पूर मंजरी " में " हत्थ कंकण किं दप्पणेण पेक्खी " अर्थात हाथ कंगन को आरसी क्या ? अपभ्रंश में " को तं पुसर णिडालइ लिहियउ " अर्थात ललाट में लिखे हुए को कौन मिटा सकता है ?[5] जैसे चुस्त तथा सुंदर उदाहरण मिलते हैं ।

लोकोक्तियों की विशेषताएँ :

लोकोक्तियों में भावों की मार्मिकता घनीभूत होती है और लघु प्रयत्न से विस्तृत अर्थ प्रकट होता है । अत: सूत्ररूपता, बोलचाल की भाषा, वाणी का चटपटापन तथा रचयिता का अज्ञात होना आदि लोकोक्तियों की कुछ निजी विशेषताएँ हैं । इसके अतिरिक्त समाजशैली, गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति, विशाल भाव शैली, लघुता, अनुभूति और निरीक्षण, सरलता ,लाघवत्व, सरल भाषा तथा लोकरंजकता भी इनकी विशेषताओं में समाहित होते हैं ।

रूप की दृष्टि से - कहावत, पहेली और मुहावरा ऐसे तीन भेद होते हैं । क्रमश: हम उनका अध्ययन एवं मूल्यांकन प्रस्तुत करेंगे ।

कहावतें : कहावतें लोक-जीवन में मुक्त बिखरी हुई लोकमानस के बुद्धि - चातुर्य की अनुभूत व्यंजना है । इनकी सूत्र प्रणाली " गागर में सागर के सदृश्य व्यापक एवं मार्मिक होती है । बिहारी के दोहे के समान ये देखन में छोटे " किंतु " घाव करें गंभीर होती है ।

कहावतों का स्रोत अत्यंत प्राचीन है और संसार की सभी सभ्य-असभ्य जातियों

में इनका प्रचार है। इनके प्रयोग से वाणी के विधान में तीव्रता तथा प्रभाव उत्पन्न होता है, भाषा सशक्त होती है, श्रोताओं पर व्यापक प्रभाव पड़ता है तथा लोकमानस के अनुभवों एवं ज्ञान का प्रकाशन होता है।

कहावतों की विशेषताएँ :

कहावतें चिरकालीन अनुभूत ज्ञान के सूत्र हैं। साहित्य की दृष्टि से भी कहावतों का महत्त्व असाधारण है। इनके प्रयोग से भाषा में सुंदरता, सजीवता तथा आकर्षण की वृद्धि हो जाती है। इनकी दूसरी विशेषता तुकांतयुक्त होना है। तुकांतयुक्त रचना स्मृति में आसानी से घर बना लेती है।

बंजारा लोगों की वचन-चातुरी का पता इनके दैनंदिन व्यवहार में व्यवहृत कहावतों से चलता है। इनका निर्माण बंजारा समाज द्वारा विशेष अवस्था में होता है और उसके पश्चात लोक छाप पाकर ये प्रचलित होती हैं। अतः इनका उपयोग भी बंजारा समाज विशेष अभिप्राय से करता है।

बंजारा कहावतें बंजारों के सूक्ष्म निरीक्षण तथा गहन अनुभव पर आधारित हैं। देशकाल तथा जीवन के विविध पहलुओं की विशेषताएँ इनमें परिलक्षित होती हैं। ये शाश्वत सत्य के ठोस धरातल पर प्रतिष्ठित हैं।

बंजारा कहावतों का वर्गीकरण

बंजारा कहावतों की परिधि व्यापक है। जीवन का हर एक पहलू इन कहावतों में प्रतिबिम्बित है। बंजारों की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विचार धाराएँ इनमें समाई हुई हैं। इनका क्षेत्र जीवन - व्यापी होने के कारण इनका स्पष्ट वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हें निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है --

१. जाति संबंधी
२. नीति संबंधी
३. प्रकृति तथा कृषि संबंधी
४. पशु, पक्षी संबंधी
५. प्रकीर्ण।

जाति संबंधी :

इन कहावतों में किसी जाति विशेष का आचार - विचार, आहार - व्यवहार, रहन सहन आदि सम्यक रूप से वर्णित किया जाता है। कुछ ऐसी भी कहावतें हैं जो बंजारा समाज से ही संबंधित हैं।

बंजारा समाज में मद्यपान का रिवाज है किंतु एक सीमा तक ही। मर्यादा के

बाहर होने पर वहाँ भी मद्यपान को निंदनीय माना गया है। एक कहावत में उसकी निंदा की गई है --

पिये मंद हो गये धुंद। आगेर माटीन मळगी संध।

(मद्यपान किया, बेहोश हो गया, अगले आदमी को अवसर दे दिया।)

स्वच्छंद खानपान एवं परिश्रमी जीवन के कारण बंजारे हृष्टपुष्ट होते हैं। राजपूती वंश का अभिमान होने के कारण उन्हें जाति पराक्रम पर गर्व रहता है -

गोरखाटी, खा बाटी। हातमां ले काठी।

(बंजारा खाता है रोटी और हाथ में रखता है लाठी)

निरूपयोगी मनुष्य के संबंध में कहा जाता है --

खाडू भाई रो हांस्या। खेते भाई रो बासीया।
मळाये भाईरो नासीया।

(गायों के झुंड में सांड, खेत में उगाई हुई घास और पंचायत में का बेशर्म समान होते हैं।)

किसी बात की सत्यता सिद्ध होने पर कहा जाता है --

छोरीन घेडार हूंस। टांडरीन घूंघटेन हूंस।
माटीन बातेर हूंस। वेळ आवेगी कते कट जारतार कूंच।

(लड़की को पल्लू पसंद। स्त्री को घूंघट पसंद। मर्द को बात पसंद। समय पर कट जाएगी तेरे पैर की नस।)

घर का आदमी जब घरवालों को तकलीप देता है तब कहा जाता है --

पामणो पापणो चोर मार कतो, घरेर गाबडीन
मारन टांग तोड नको ते कच।

(चोर को मारने के लिए कहा तो घर की गाय को मार कर पैर तोड दिया।)

सुख के दिन आने पर खुशियों में ही डूब जाने तथा भावी दुःख की चिंता न करने पर निम्नलिखित कहावत का प्रयोग किया जाता है --

आचो खादो आचो पिदो अदो अमदन।
वो दाड कोसान कोनी गे अब तू जाण।

(खूब दीवाली मनाई, अब होली मना।)

परंपरा को छोडकर उल्टे मार्ग का अवलंब करने पर कहा जाता है --

अरकडी तरकडी जात पुरानी।
आपण कूं पंडावलो कूरानी।

(ऐसी वैसी जात पुरानी। आप उल्टे तो कैसे पढोगे ?)

नीति संबंधी :

बंजारा लोकोक्ति-साहित्य में उपदेश और नीति से संबंधित कहावतें अधिक मात्रा में पाई जाती हैं। समस्त लोक - जीवन का सार इनमें मिलता है।

पाप छिप नहीं सकता और सत्य प्रकट होकर ही रहता है। इस अर्थ की कहावत है --

पापेरो बलबला पानीमें बोल।

(पाप का बुलबुला पानी में बोलता है।)

मतलब की बातें छोड व्यर्थ की बातें करने की प्रवृत्ति की भर्त्सना निम्न कहावत में मिलती है --

मरद मरद की जकडी। टाँग छोड जड पकडी।

(मर्द मर्द की जकडी है। टाँगे छोड कर जड मत पकड।)

असत्य के सौ पर्दों के पीछे से भी सत्य दिखाई दे जाता है। कहावत कहती है .

चटका किदी मटकाये। भीया मांदो फटकाये।

आवटी वेड एक एकन लटकाए।

(चटक पटक करके मटक रहे थे।

ठहरो, अब समय आया है। मैं एक एक को लटका दूँगा।)

किसी के कर्मों का श्रेय कोई अन्य ले तो निम्न कहावत कही जाती है --

बावल मारे मिटकी। बाप तिरंमदास।

बाप खागी की। बेटा सूंग हात।

(बेटा मारे मेंढक, बाप तीरंदाज। बाप घी खाय तो बेटा हाथ सुंघाए।)

मनुष्य अपनी योग्यता के अनुरूप संकल्प करता है और उसी के अनुरूप कर्म करता है। इसके लिए निम्नलिखित कहावत है --

मानेन पान। बेसरमीन धान।

(मानी को मान और बेशरम को धान।)

कमाये कोई और खाए कोई तो " अंधी पीसे कुत्ते खाँये " के अर्थवाली निम्नलिखित कहावत प्रचलित है --

येर नसाबी कमाये भोई। खागे हरकोई।

आंधा पाव ढेलकी किये कांई।

प्रकृति तथा कृषि संबंधी :

वनवासी होने तथा कृषि का उद्योग करने के कारण प्रकृति तथा कृषि से संबंध रखनेवाली अनेक कहावतें इनमें उपलब्ध हैं । इस दृष्टि से निम्न कहावतें दृष्टव्य हैं --

(१) सफलता प्राप्ति हेतु धैर्य की आवश्यकता होती है --

बावट सीज डोतुंणीन । कणाकीर कांच निकल आई ।

(चावल पके ही नहीं - थाली चाट चाट कर उसको चमक निकाल दो ।)

(२) बडी हानि पर ध्यान न देकर थोडी हानि पर पश्चाताप करना --

सारी भणभी बळगीन । पूळी सारू कसेन रोयेच ।

(पुआल का ढेर जल गया तू एक आँटे के लिए रोता है ।)

(३) घमंडी का गर्व नष्ट होने पर --

चरमटडी पागडी कू । मारो दस दरियारी घोडेरी

जीन कूं ढिल हुई ।

(सजी पगडी बाँधने वाले तूने अब योंही क्यों पगडी लपेट ली ? फौजी घोडी की जीन अब ढीली कैसे हुई ?)

प्रकीर्ण कहावते :

विविध विषयों से संबंधित कहावतें निम्नलिखित हैं --

(१) किसी वस्तु की बाहरी चमक दमक का भेद खुल जाने पर --

पाड दिये सोनेरी डळी । फोडन दिये एक नीकळी ।

बामण देखन मारोतो, ढेड नीकळो ।

(उठा कर देखा तो सोने की डली, लेकिन फोडने पर राख निकली । ब्राह्मण समझकर बुलाया, वह डोम निकला ।)

(२) निकम्मे से निकम्मा मिले तो काम बन चुका --

आळसीर संग हिजडा करो कव ।

(आलसी और हिजडे का साथ ।)

(३) अवसर से लाभ उठा लेने पर --

एक घालू एक घालू, केन दी घाल किनो कच ।

(एक डालूं, एक डालूं कहकर दो डाल दिए ।)

(४) किसी छोटी बात से काम बिगड जाना --

वट मंटडीग्धी पागडो, सगमटडी मी मूंब,

कूं मूं फेरे आई। सरी की दाडी मीं कूं ः भराइ।

पहेली :

पहेली संस्कृत " प्रहेलिका" का तद्भव रूप है, जिसका अर्थ है गोपनीय शब्द रचना। पहेली बुझौवल में मनोरंजन का उद्देश्य तो निहित होता ही है, साथ ही बुद्धि की परीक्षा भी ली जाती है।

पहेली की परंपरा बहुत प्राचीन है। विद्वानों के कथनानुसार इनका वैदिक काल में प्रचलन था। आर्यो के अनुष्ठानिक कार्यो में पहेली बुझौवल की प्रथा थी। इस प्रकार की प्रथा भारत में ही नहीं बल्कि विश्व साहित्य में भी उपलब्ध होती है। बुद्धि परीक्षा हेतु बंजारों में पहेली का अर्थ पूछने की प्रथा है। कठिन परिश्रम के बाद यह मनोरंजन का भी अच्छा साधन है।

पहेलियों का वर्गीकरण :

बजारों में पहेलियों को " फाडेर साकी" कहते हैं, जिसका अर्थ है कूट प्रश्नों के उत्तर देना। पहेलियाँ भी सम्पूर्ण बंजारा जीवन का स्पर्श करती हैं। इनका विषयगत विभाजन निम्न प्रकार से होगा --

१. प्रकृति तथा कृषि संबंधी। २. प्राणी -जीव संबंधी
३. भोज्य और खाद्य पदार्थ संबंधी ४. घरेलू वस्तु संबंधी
५. अंग - प्रत्यंग संबंधी ६. मिश्र विषय।

बंजारा पहेलियों की एक विशेषता यह है कि ये प्राय: वाक्य-खंडों में होती हैं और इनका उत्तर अलग से देना पडता है। इनकी भी परंपरा मौखिक होती है और रचयिता अज्ञात होता है।

प्रकृति तथा कृषि संबंधी :

इस वर्ग की पहेलियाँ की संख्या ही सबसे अधिक है।

झाड झांबरो फूल गोदडो।

(झाड झूलता है और फूल झारते हैं। उत्तर - हरी धनिया)

झितरी समा गद गोलास बेटा।

(पत्तों के जंजाल में छिपा रहता है गोल बेटा। उत्तर - बैंगन)

एक चिडिया पहनी पाजामा चूडीदार। उसमें छिपे पिल्ले हजार।

(उत्तर - खसखस)

थाळी भर रपिया, तराप मोजेनी तराप मोजनी ।

(थाली में भरे रुपए हजार, गिन्ते गिन्ते हो गए बेजार । उत्तर - तारे)

काळे खेतेर धहीर होडी पडी ।

(काले खेत में दही की हंडी गिर पडी । उत्तर - कपास)

रातडो घोडो हरी पूँछ । तोन आवतो तारे बापेन पूछ ।

(रात के घोडे को हरी पूछ । उत्तर न सूझे तो अपने बाप से पूछ । --

-- उत्तर - हरी मिर्च)

नानक्या सो माटो, सो धोती पेर ।

(छोटा सा आदमी, पहने धोती - उत्तर - मक्का)

प्राणी - जीव संबंधी :

पशु पक्षी का मानव जीवन से घनिष्ठ संबंध है । बंजारा जीवन में तो उनका बहुत अधिक महत्त्व है । इनसे संबंधित पहेलियाँ निम्नलिखित हैं --

पान छेनी, सुपारी छेनी, चुना छेनी, मुंडर गेती लाळी ।

(पान खाया, सुपारी खाई, चूना लगाया और ओठ लाल कर लिए । --

-- उत्तर - तोता)

नाणक्या सो माटी थालमू थुलमू कडकशाई माथे पर फूल ।

(छोटा सा मनुष्य माथे पर फूल लटका कर करता है थालम थुलम । --

-- उत्तर - मुर्गा)

काळे खेतम लोयेर डाग ।

(काले खेत में पीला दाग । उत्तर - धामीण - सांप)

भोज्य और खाद्य पदार्थ संबंधी :

भोज्य और खाद्य पदार्थों से संबंधित पहेलियाँ निम्नलिखित हैं --

माई मांस, ऊपर हाडका ।

(अंदर मांस और ऊपर हड्डी । उत्तर - नारियल)

याडी याडी बावडी देख, बावडी उपर झाड देख ।

झाडे पर फड देख, फळेन खान मुंडो देख ।

(माँ माँ बावडी देख, बावडी के ऊपर पेड देख, पेड के ऊपर फल देख,

फल को खाता मुँह देख । उत्तर - अमरूद ।)

घरेलू वस्तु संबंधी :

दिन गोळा वेजाव, रात लांब वेजाव ।

(दिन में गोला होता है और रात में होता लंबा । उत्तर - चटाई ।)

सूकी वाव्डी माँ मिटको बोलगो ।

(सूखी बावडी में बैठकर तोता बोलता है । उत्तर - घंटा)

घाटो घाटो आन काळेन बेसगो ।

(गडबडी से चला और कोने में बैठा । उत्तर - जूते)

फळेन वेल साईजा ।

(पेड ने ही फल खा दिया । उत्तर - दीपक ।)

अंग प्रत्यंग संबंधी

बंजारा समाज में मनुष्य शरीर के विभिन्न अंगों से संबंधित पहेलियाँ भी हैं --

नान्की देवळी तोताबाई नाचस ।

(छोटे से घर में मैना नाचती । उत्तर - जीभ ।)

नान्की सी हांडीम । चावळ्या चावळ्या ।

(छोटीसी हंडी में गडबडी मचाता । उत्तर - दाँत ।)

मिश्र विषय

जमीन जड पालो पेड सो फुलेरो एकज फल ।

(जमीन में जड, पेड में पता और फूल - एक ही लगा है फल ।

उत्तर - जायफल ।)

काळी गावडीर कळजो मिसे ।

(काली बूढी का दिल मीठा । उत्तर - मधुमक्खी का छत्ता ।)

मारेती आए तीन पामण दो भार बेसगो, एक भाई पशगो ।

(बाहर से आए तीन मेहमान, दो बाहर बैठ गए, एक अंदर चला गया ।)

उत्तर - दो जूते और एक मनुष्य ।)

मुहावर

मुहावरा अरबी भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है -- " आपस में बातचीत और सवाल जवाब करना । " संस्कृत में इसके अर्थ को प्रकट करनेवाला कोई उपयुक्त पर्यायवाची नहीं है । " वाग्रीति " तथा " रमणीय प्रयोग " शब्द कुछ

पंडितों ने प्रचलित किए हैं किंतु ये अपर्याप्त हैं। मुहावरे में अर्थ की अभिव्यक्ति लक्षणा और व्यंजना पर निर्भर होती है।

लोकोक्ति और मुहावरे में अंतर है। मुहावरा वाक्य खंड है और लोकोक्ति एक संपूर्ण वाक्य। मुहावरे के द्वारा वाक्य बनाया जाता है जब कि लोकोक्ति स्वयं वाक्य होती है -- कर्ता क्रिया से युक्त। मुहावरा किसी भी भाषा का प्राण होता है। इसके प्रयोग से भाषा में रोचकता आ जाती है।

बंजारा मुहावरे :

बंजारा मुहावरे भी इनके जीवन से घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं। यदि कोई बहानेबाजी कर रहा हो तो उसे कहा जाता है -- " नाटक करगो नाटक।"

हमेशा अशुभ वाणी एवं निंदा सूचक शब्दों का प्रयोग करनेवाले के लिए कहा जाता है --

झांबरीस झोल, माररीच तोल।
न लेरो न देरो जरा मुंडे बीतो बोल।
(लेना न देना, मुँह से कुछ अच्छा बोल।)

दालभात में मूसरचंद बनने वाले बेबात की बात करनेवालों को कहा जाता है --

बगर कलाई वच वच गाई। तोन काल बलाई। जगो आज कूँ आई।
(बिना समझे बडबड मत कर।)

किसी को विचारपूर्वक बर्ताव करने के लिए कहा जाता है --

साणीन साणी मळगे ते तीन वाटे, एक साणीन अडाणी मळगेतो दी वाटे।

निष्कर्ष :

बंजारा लोकोक्ति साहित्य में जीवन के विविध पक्षों का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। ये मनोरंजन के साथही साथ मार्गदर्शन भी करते हैं। कहावतों में सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति, शाश्वत सत्य तथा सूत्र प्रणाली के दर्शन होते हैं। पहेलियों में हास्य तथा बुद्धि चातुर्य का संगम दिखाई पडता है। सभी पहेलियों की रचना शैली छंदबद्ध तुकान्त की है। इन में चित्रात्मकता भी है। बंजारा भाषा के मुहावरों ने अपनी क्षमता से इसे शक्तिशाली बनाया है। संक्षेप में बंजारा लोकोक्ति साहित्य बंजारा समाज एवं संस्कृति का चित्रण वास्तविक रूप में करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. डा.बड़थ्वाल पीताम्बरदत्त : गढ़वाली परवाणा, भूमिका

२. डा.अग्रवाल वासुदेवशरण : पृथिवीपुत्र, पृ.१११।

३. रामायण - २-३५-१६ ।

४. महाभारत - ५-१६८-२८।

५. पुष्पदंत महापुराण - २४-८-८।

बंजारा लोक कलाएँ

बंजारा लोककलाएँ

मानव हृदय की अन्यतम अभिव्यक्ति कला है । उसकी अन्तरात्मा का विकास है कला । कला समाज के सौंदर्य की सफल अभिव्यंजना है । हृदय जब भावों से बोझिल और अनुभूतियों से श्लेष हो जाता है तो मनुष्य उन भावों - अनुभूतियों को दूसरे तक पहुँचा देने के लिए व्यग्र हो उठता है, यही व्यग्रता कला है । मानव जीवन के अभ्युदय के साथ ही कला का भी आरंभ हुआ है और मनुष्य - जीवन की भाँति कला का इतिहास भी विराट एवं अतलदर्शी है ।

लोककला के विविध पहलू

लोक मानस की कला लोककला कहलायेगी । डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार भारतीय कला के उदार तटपर लोक के सर्वांगीण जीवन का प्रतिबिंब पडा है । लोक का संपूर्ण परिचय भारतीय कला को समझाने की कुंजी है ।[1] लोक - संगीत , लोक नृत्य तथा लोक चित्रकला लोककला के प्रमुख तीन पहलू हैं । लोककला के ये तीन पहलू एक दूसरे से तंत्र (Technique) की दृष्टि से भले ही भिन्न हों, लेकिन लोकहृदय की भावात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि से एक ही हैं । ये तीनों एक दूसरे से परस्पर संबंधित हैं ।

लोक - संगीत

लोक-संगीत लोकगीतों की आत्मा है । अत: लोक-संगीत लोकगीतों के सौंदर्य आनंद का अनिवार्य अंग है । लोकसंगीत का इतिहास अत्यंत प्राचीन है । शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति लोकसंगीत से ही हुई है ।

लोकसंगीत लोक पक्ष है - उसका प्रेरणास्रोत जन-मानस है, जहाँ शास्त्रीय संगीत व्यक्ति निविष्ट तथा शास्त्रनिविष्ट है । लोकगीत का सर्जक एक व्यक्ति नहीं होता, उसकी उद्भावना जनसमूह में प्रचलित संगीतात्मक धुनों के आधार पर होती है । लोकसंगीत का खास कोई लिखित शास्त्र नहीं है, फिर भी उसकी अपनी कुछ परंपराएँ हैं । लोकसंगीत के पीछे समाज का भावात्मक संबंध होता है । तथा उसके विशिष्ट स्वर-चयन के अनुसार उसकी गूँज, झटके तथा खटके होते हैं । लोकसंगीत में लय की प्रधानता रहती है ।

मानव-हृदय के सहज संवेदनशील भाव गीत के द्वारा स्वर एवं लयबद्ध हो जाने के पश्चात " धुन" की निर्मिति होती है । यही धुन लोकगीतों की विशेषता प्रकट

प्रकट करती है। ये लोक धुनें चार-पांच स्वरों में ही सीमित होती हैं। इनके स्वर लयबद्ध, प्रसंगानुरूप, सरल होते हैं। एक ही धुन में अनेक गीत गाए जा सकते हैं।"[२]

बंजारा लोक संगीत -

बंजारा लोकगीतों का अध्ययन करनेपर स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन गीतों के भावों में जहाँ सहज सरलता, जीवन की गहराई एवं प्रसंग की मार्मिकता है, वहाँ उनकी धुने भी अपना विशेष स्थान रखती हैं। इनकी धुनों में जहाँ जीवन की कारुणारम्य अवसाद भरी विह्वलता है वहाँ करुणा का अथाह सागर उमड पडता है। जहाँ हर्ष उल्लास भरा मांगलिक तथा प्रणय की मस्ती भरा प्रवाह है, वहाँ उल्लसित स्वर - लहरियों से वातावरण को मंडित करने की क्षमता भी हैं। जहाँ शरद रात्रि के शांत एवं स्निग्ध वातावरण में इनके गीतों की रसीली धुन छेडी जाती है वहाँ सारा वातावरण एक अनूठी मस्ती से भर जाता है। बेटी की बिदाई पर नयन झार - झार झरने लग जाते हैं और प्रणय निवेदन पर सारे अंग - अंग में स्फुरण एवं मस्ती की तरंग जगा देते हैं। सच पूछिए तो - इन गीतों में जादू भरा हुआ है।

स्वर रचना -

लोकगीतों की रचनाएँ किसी स्वाभाविक भावोद्रेक की स्थिति में होती हैं। उनमें बौद्धिक तत्व की न्यूनता रहती है। इन गीतों के स्वर - रचनाओं में स्वरज्ञान या संगीत ज्ञान को श्रेय नहीं दिया जा सकता। किसी भाव विशेष को व्यक्त करने के लिए स्वर - रचनाएँ स्वाभाविक रूप से ही गायक के हृदय से उद्भासित होती हैं।

स्वर रचना की दृष्टि से बंजारा लोकगीतों की लोक धुनों के अध्ययन से यह पता चलता है कि इन गीतों में शब्दों और स्वरों की अत्यंत सादगी होती हैं। उनमें स्वरों का उतार - चढाव भी बहुत कम होता है। इनमें अंतरा कहीं रहता है। कहीं नहीं। प्रति गीत पंक्ति के साथ टेक रहती है। अधिक तर गीतों की धुनें एक-सी मिलती है। संक्षेप में, इन गीतों में आलाप या स्वर विस्तार का या शास्त्रीय विधानों का अभाव होगा। परंतु ये अपने जातिगत शास्त्र की दृष्टि से परिपूर्ण है।

बंजारा लोकसंगीत में लयात्मक प्रवृत्ति को व्यक्त करने के लिए ढोल, ढोलक,

वृत्ति को विशिष्ट मात्राओं के क्रम में व्यक्त करने की क्षमता रखते हैं।

बंजारा लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत के समान ताल का प्राय: कोई शास्त्र नहीं है। गीतों की लय ही उसकी आत्मा है। ये तालें स्पष्ट और सरल होती हैं। बंजारा लोकगीतों में ताल की दृष्टि से ढोलक, ढोल, नगारा, डफ आदि वाद्य सहायक होते हैं।

बंजारा लोकगीतों में अधिकतर निम्न तालों का प्रयोग होता है --

दादरा - ६ मात्राएँ - धा धिन ना / धा तिन ना

चाचर - ७ मात्राएँ - धाक धिन धा धिन।

धाक तिन धा धिन

कहरवा - ८ मात्राएँ - धागिन तिन कधिना

लोकवाद्य

लोकगीतों के गाने में किसी ना किसी वाद्ययंत्र की सहायता ली जाती है। जहाँ पर कोई वाद्ययंत्र उपलब्ध नहीं होता वहाँ चुटकी बजाकर अथवा ताली देकर इस अभाव की पूर्ति की जाती है।

बंजारा लोकसंगीत में प्रयुक्त होनेवाले वाद्यों में ढोल,ढोलक, झांझ, करताल, थाली, डफ आदि प्रमुख वाद्य हैं। इनमें ढोल और डफ सबसे अधिक लोकप्रिय तथा महत्त्वपूर्ण हैं। ढोल के बोल पृथक पृथक होते हैं। होलिकोत्सव में " लेंगी " या " बधावा" गाते समय डफ का अभिन्न संबंध स्थापित होता है। भजनों में करताल, एकतारा, ढोलक,खंगडी और थालियों का प्रयोग करते हैं।

बंजारा लोकगीतों की कुछ स्वर-लिपियां :

शास्त्रीय संगीत की शैलियों के निर्धारण में स्वर तथा गायन तत्व के साथ गीतों का अर्थ और शब्द को साधारणत: कोई स्थान नहीं रहता। परंतु लोकगीतों में स्वर की प्रधानता रहते हुए भी शब्द अपेक्षा कृत गौण नहीं रहता। शब्द और स्वरों की रचना का जितना सुंदर सामंजस्य लोकगीतों में मिलता है, उतना किसी में नहीं। इस दृष्टि से बंजारा लोकगीतों की कुछ स्वर-लिपियाँ अध्ययन के लिए उपयुक्त होंगी।

भजनगीत - - बंजारा लोक-संगीत के विशेष अंग " भजन " हैं। भगवान की स्तुति में भावना की प्रधानता, स्वर-रचना में गंभीरता तथा प्रौढता आदि विशेष गुण होते हैं। इसीलिए शब्द की अपेक्षा स्वर ही भजनों का प्रधान तत्व है। अत:

भजन प्राय: ध्वनि प्रधान होते हैं। भजन गीतों की प्रकृति गंभीर और चाल धीमी होती है। इस दृष्टि से निम्नलिखित भजन की स्वर-लिपि देखिए --

धन्य धन्य पवरा वाळे नर, सुद बुधी देद बाल्केनर।
शक्ती छेनी हमारेरे कन, करन आयोछे देव तारेकन।
भूली चुको खोळेम लेन, सुदबुधी देव सम्भाळेन।

- झपताल मात्रा - १०

स्थायी

धन्य धन्य पवरा बाळे न र
सा रे गं गं गंरेसा रेसासा रे गं गं रे सा रे सा
सुद बुधी देदड बाल्के नर
सारे गं गं रेसारे गंरेसारेसा

अन्तरा

शक्ती छेनी हमारेरे कन
सारे गं गं सा सा रे गं सा सा रे
करन आयोछे देवो तारेकन
सारेरे गंगंरे रेसा गंसारेरे
भूडली चुकी खोळेम धालनर
सारेग गं गं गरेसा रेगगग
शेष अंतरे इसी धुनमें बजेंगे

धार्मिक गीत - धार्मिक गीतों की शब्दरचना छोटी होती है तथा उनकी ताल अत्यंत सरल होती है। गीत लयप्रधान होते हैं, तथा उनके स्वरों का फिराव केवल तीन चार स्वरोंतक ही सीमित रहता है। इन गीतों के शब्द भी अत्यंत सामान्य होते हैं और उनमें बहुधा पुनरावृत्ति होती है। गीतों में हा ताल का आभास मिल जाता है। जगदंबा देवीसंबंधी एक धार्मिक गीत का नमूना देखिए --

मारी देवी रीसेम मरारी
हैद्राबादेस केर मवाई योर।
देवी केरी जगजेठी,
बेटा देद मन्छुटी , ...

ताल - केरवा मात्रा - ८

स्थायी

मार्री देवी गी से म भरारो र

सा रे गं गं रे मा रे सा रे गं गं रे सा रे मा

हैदवादेम केर मवाड्यां र

सा रे गं गं रे रे सा रे गं रे सा रे रे

अन्तरा

देवी केरी जग जेठा

सा रे गं गं गं रे गं रे

बेटा देद मन छूटी

सा रे गं गं गं रे गं गं रे

शेष अंतरे इसी धुन में बजेंगे।

पारिवारिक गीत -

इन गीतों की लय प्राय: धीमी होती होती है और इनकी रचनाएँ दो या चार स्वरों से अधिक भी नहीं होती। इन गीतों की विशेषता यह है कि गाते समय गीत की पंक्ति के अंत में एक ही स्वर पर रुककर काफी मात्राओं तक एक विशिष्ट प्रकार की निर्माण करने की चेष्टा की जाती है। ये सब गीत प्राय: तीन - चार स्वरों में ही चलते फिरते हैं। उनमें कोई उतार - चढाव तथा वैविध्य नहीं होता है। इस दृष्टि से एक जंतसार (घटी परेर) गीत दृष्टव्य है --

मारोनी हस्लो घाळ लीदी,

सपाइडा धोती आपरा धाळोजरा।

ताल - त्रिताल मात्रा ८

स्थायी

मा रो नी हस्लो घाळ लीदी

सा रे गं म गं गं म गं गं गं गं गं रे सा

से पा ई डा धोती आपरा धाळो जरा

सा रे गं गं गं मरे गं म गं गं गं गं गं रे सा

नृत्य को जन्म दिया । लोकगीतों की तरह लोकनृत्यों को एक अत्यंत परिपुष्ट परंपरा के रूप में उसका एक अलिखित शास्त्र है, जो समाज के सांस्कृतिक तथा भावात्म स्तर के अनुरूप ही जीवित है । लोक नृत्य जब सामाजिक पृष्ठभूमि में व्यवहृत होते हैं तो अनेक मुद्राएं स्वभाव से ही नर्तक के अंग में समाजाती हैं । हर्ष, उल्लास, कारुण्य, उत्साह, वीरता तथा शौर्य के भाव चेहरे पर व्यक्त होते हैं ।

बंजारा लोकनृत्य और उसकी विशेषताएं

बंजारों ने लोकसंगीत को अपने गले का हार और लोकनृत्य को अपने पैरों का साज बना रखा है । और यही उनका एकमात्र सहारा भी है । बंजारा लोकनृत्य की विशेषताएं इस प्रकार हैं --

(१) वेशभूषा की रंगीनी और कलात्मकता : बंजारा जाति स्वभावत: घुमंतु होने के कारण इनके जीवन में अथक परिश्रम और प्राकृतिक सौंदर्य के अभाव की पूर्ति रंगीन वेशभूषाओं से की है । नृत्य के समय इनकी वेशभूषा बडी कलापूर्ण होती है और अलंकृत रहती है ।

(२) पौरुषता : बंजारा जाति राजस्थान की वीरभूमि के राजपूत वंश की वहिशदार होनेके नाते इनके लोकनृत्य पौरुषप्रधान होते हैं । विशेषत: पुरुषों के नृत्य जोशीले होते हैं ।

(३) शारीरिक परिश्रम की प्रधानता: यह अत्यंत परिश्रमी जाति होने से इनका जीवन बडा परिश्रमपूर्ण रहा है । इस कारण बंजारा पुरुषों के नृत्यों में शारीरिक अंगों का बहुत श्रम होता है ।

(४) शृंगारिकता : जीवन में विविध आनंद के अभाव की पूर्ति के लिए इनके नृत्यों में शृंगारिकता आई है तथा यह पिछडी जाति होने के कारण इनके नृत्यों में धार्मिकता का अंश मात्र दिखता है ।

बंजारा लोकनृत्य की विविध छटाएँ मुख्यत: होलिकोत्सव पर देखी जा सकती हैं । इसी अवसर पर लेंगी, डांडिया, घूमर आदि नृत्यों का आयोजन होता है । बंजारों में नृत्यों का सिरमौर गिना जानेवाला नृत्य " लेंगी " है । पूर्णचंद्र की ज्योत्स्ना में जब रात हंसती है तो बंजारों का जीवन लेंगी नृत्य के उल्लास में झूम उठता है और इनके पग डफ की थाप के साथ थिरक उठते हैं । स्त्री-पुरुष - समवेत

इसी प्रकार विवाह गीत का एक नमूना देखिए ---

रमजम घुंघरा वाजवाये ढुवाजी
करे करे सारे वयना लायेव सुवाजी

ताल - त्रिताल मात्रा ८

स्थायी

रमजम	घुंघरा	वाजवाये	ढुवाजी
सा सा रे ग	म म ग रे	रे ग म म	ग रे ग
करे	सारे	वयना लायेव	ढुवाजी
सा सा	रे ग	म म ग रे रे ग म न	ग रे ग

लोकनृत्य

नृत्यकला यह मनुष्य के आंतरिक भावोन्मेष का साकार आविष्कार है। जब किसी मधुर स्पर्श से हृदय तंत्री के तार छिड उठते हैं अथवा किसी उत्पीडित हृदय की भावनाएँ हिलोरे मारती हैं तब नर्तकों के पदों में चंचल गति, अंग भंगियों में सहज सौंदर्य तथा भाव-भंगिना- चेष्टाओं में सरलता निसृत होकर घुंघरुओं की छमछाम मादकता साकार हो उठती है।

आदिम मानव में कालान्तर से सामाजिक और सामूहिक भावना निर्माण होकर लोकनृत्यों की उत्पत्ति हुई। इन्हीं लोकनृत्यों का विकास शास्त्रीय रूप में हुआ। लोकनृत्य स्वान्तः सुखाय होने के कारण उनमें भावों की स्वाभाविकता रहती है। लोकनृत्यों में किसी देश अथवा जनपद की संस्कृति निहित रहती है। मनुष्यों का स्वभाव, उसकी कला, सरलता, रीति-रिवाज, जातीयता, धार्मिकता, सामाजिकता आदि का पता उनसे चलता है। अतएव वे किसी देश की लोक संस्कृति के अविच्छिन्न अंग बन पाते हैं।

लोकनृत्य और शास्त्रीय नृत्य

शास्त्रीय नृत्य का प्रादुर्भाव भी लोकनृत्य से ही हुआ है। लोकनृत्यों की मूल आंगिक मुद्राओं तथा भावमुद्राओं से प्रेरणा लेकर कुछ आचार्यों ने शास्त्रीय

लोकनृत्य की ध्वनि के साथ सारा वातावरण गूंज उठता है। इस नृत्य में का स्त्री-पुरुषों के सवाल - जबाब की अनोखी अदा देखिए -

स्त्री - " हरा हरे, गिरीयणा, काई मत किजो।"

पुरुष - " हरा हरे, गेरीनीने, काई मत किजो। "

स्त्री - " ओलीय बारी भोसी गेरीयार माथे पावदीजो,

पुरुष - " ओला बारी वोला गेरीनार माथे फेराने वारो जाथो हेटो मेला दीद।"

वर्षाकालीन उमडती - घुमडती काली-काली घटाओं का गर्जन सुनकर मत्त मयूर पिहू - पिहू कह कर नाच उठता है, हरित वृक्षों के सघन कुंज में बैठी कोयल कुहूकुहू कर चहक उठती है, तो मानव भी अपने मन में उमडती हुई अभिलाषाओं के साथ झूम उठता है। प्रकृति की इस मस्ती में बंजारा तरुणियाँ एकाकार होती हैं, तो नृत्य की स्वाभाविक सृष्टि निर्माण होकर उनके कलकंठ से संगीत का निर्झर फूट पडता है और निम्न गीत की धुन के साथ " तांडेरी " नृत्य में उनके कोमल पैर थिरक उठते हैं --

घम् घम् नाच नारी, घम् घम् नाच।

लायोई कोटीन माला।

लायोई ननसद बाबा।

लायोओ हांसली रे जोडी।

लायोओ भूरियारी जोडी।

खेतों-खलिहानों में थिरक थिरक कर नृत्य करने वाली बंजारा-कन्याओं के घूमर नृत्य में और गणगौर के अवसर पर प्रस्तुत करनेवाले तीज त्यौहार नृत्य में सहज सौंदर्य अंकित हुआ है। माथेपर झीने झीने घूंघट डाले, चंद्राकार फडकते हुए चुन्नेदार लहंगे परिधान करके पायल की पैंजनियों की झनक झनक स्वर - लहरियों के साथ नीचे - ऊपर झुक झुक कर लचीले अंगों को लचकाती हुई और अपने दोनों हाथों से लययुक्त चुटकियाँ देती हुई बंजारा कुंवारियाँ अपने अंग सौष्ठव का प्रदर्शन करती है तो शृंगारिक लेंगी नृत्य का रूप प्रत्यक्ष हो उठता है और इस नृत्य के साथ लयकारी से गाये जानेवाले गीत की मधुर ध्वनि भी नृत्य के साथ एकाकार हो उठती है --

भाया जतरान गेवो स्जनवाईया ।

काचे चक्के भीयारो,धोती रक्क ।

भीया डोलीन गेवो स्जनवाईयो ।

काचे चक्के भीयारी,रेजा रक्क ।

चित्र और अलंकरण कलाएँ

संसार की सभ्यता और संस्कृति के विकास का इतिहास मानव मन के विविध कला प्रकटीकरण से भरा हुआ है । मनुष्य का हृदय जब अपने चारों ओर प्रकृति के सौंदर्य को देखता है तब बरबस उस सौंदर्य के प्रभाव को रेखाओं के माध्यम से प्रकट करना चाहता है । यही कला प्रकटीकरण का आरंभिक रूप है जो चित्रकला के रूप में विकसित हुआ ।

भारतीय चित्रकला के इतिहास में भित्ति - चित्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । भित्ति चित्रों की थाती से ही भारतीय चित्रकला के जीवित इतिहास का पता चलता है । इसा की कुछ शताब्दियों पहले के भारत में नाना प्रकार का कल्प वल्लियों का उल्लेख पाया जाता है । घरों की स्वच्छ धवल भित्तियों पर सूक्ष्म रेखा विशारद कलाकार नाना भावरसों से युक्त इन कल्पवल्लियों का अंकन करते थे । ये कल्पवल्लियाँ प्राचीन लोककला के जीवित प्रमाण हैं । इस लोककला को जीवित रखने और उसमें नित नये जीवंत तत्वों का समावेश करने का श्रेय नारी को ही है । व्रतों, त्यौहारों और उत्सवों पर आंगनों ,दीवालों और द्वारों पर भाँति भाँति की आकृतियाँ अंकित करके मंगलमय आध्यात्मिक भावनाओं के रूप में इस लोककला की उल्लासमयी परंपराएं हमारे साथ जुडी हुई है । आज भी प्रत्येक त्यौहार पर लोक मंगल देवी देवताओं की छबियाँ अंकित की जाती हैं । इन प्रतीकों को आरोग्य, समृद्धि और मंगल का सूचक माना जाता है ।

बंजारा लोककला की समृद्धि उनके विभिन्न भित्ति-चित्रों के माध्यम से उनकी जातिगत लोककला की परंपरा को आज भी अक्षुण्ण बना रही है । इनमें मेहंदी मांडने की प्रथा भी अधिक प्रचलित है । प्रत्येक त्यौहार, उत्सव तथा मौसम में विविधाकृति मेहंदी लगाई जाती है ।

गोदन

गोदनाकृतियाँ

मनुष्य शरीर के भिन्न भिन्न अंगों को चित्रित करने के मूल में अलंकरण की भावना है। यही भावना शरीर पर गोदनाकृतियों को अंकित करने की प्रथा को जन्म देती है। संसार की समस्त आदिम जातियों में गोदने की प्रथा का व्यापक प्रसार है और इस प्रथा के साथ ही विभिन्न जातियों में तत्संबंधी मान्यताएँ एवं समाजगत मर्यादाओं ने भी अपना स्थान बना लिया है।

बंजारा स्त्री और कन्याएं अपने दोनों हाथों पर, मस्तक पर और नाक के दाएँ बाजू पर कोंच लेती हैं। इन अंकन प्रतीकों में चंद्र, अर्धचंद्र, रूई के फूल सौंदर्य दृष्टि तो अंकित होती है, साथ में परंपरागत जातीय धारणाओं का परिचय भी मिलता है।

कशीदकारी कला

जीवन में वस्त्रों का अपना एक अलग महत्त्व होता है। वस्त्र व्यक्ति के शरीर की रक्षा करने के साथ साथ उसके सौंदर्य एवं प्रभाव को बढा देते हैं।

बंजारों में रंग बिरंगी और विविध कसीदाकारी संपन्न वस्त्रों का विधान मुख्यत: शारीरिक सौंदर्य की अभिवृद्धि के हेतु ही हुआ है। बंजारिनों की चोलियाँ (कावळी) कलात्मक सौंदर्य के उत्कृष्ट नमूने होते हैं। इनके लहँगे (फेटिया) घाघरे और घूंघट की कशीदाकारी कला बहुत ऊँचे दर्जे तक पहुँची है।

प्रत्येक घर में फुर्सत के समय पर बंजारा स्त्रियाँ अपने कपडे अपने घर में ही कलात्मक ढंग से - कलासंपन्न कशीदाकारी से तैयार करती हैं। काँच के टुकडे, छोटे कोडियाँ और मर्मरित मुद्राओं से वे अपने कपडों को सजाती हैं। कपडों के साथ अपने विविध गहने भी अलंकृत करती है।

वस्तुत: लोकजीवन की उमंगों ने ही इस बंजारा लोकधर्मी कलाओं के वर्चस्व को प्रतिष्ठित किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. डा.अग्रवाल वासुदेवशरण : कला और संस्कृति, पृ.२०४।

२. कुमार गंधर्व : लोकसंगीत - सम्मेलन पत्रिका - लोकसंस्कृति अंक, पृ.३१२।

उ प सं हा र

उपसंहार

बंजारा लोक-साहित्य के संबंध में हमने अबतक जो विवेचना की है, उसका सारांश प्रस्तुत करते हुए अब हम अपनी शोध-यात्रा की उपलब्धियों पर दृष्टिपात करेंगे।

प्रत्येक देश की संस्कृति का मूल उत्स वहाँ के लोक-जीवन में परिव्याप्त होता है। भारतीय संस्कृति में लोक-जीवन की व्याप्ति है। जीवन व्याप्त अनंत लोकाचारों, संस्कारों एवं परंपरागत विचारों के संगठित समायोजन से भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ है। यही संस्कृति की अक्षुण्ण सरिता, लोकवाणी के पथ पर शतमुखी होकर लोक-साहित्य के रूप में प्रवाहित हो रही है।

द्वितीय अध्याय से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि बंजारों का उद्गम राजपूत वंश से हुआ है। राजस्थान - मारवाड इनका मूल निवास स्थान है। बंजारा भाषा आर्य परिवार के हिंदी वंश की राजस्थानी की उपभाषाओं - मारवाडी और मालवी से घनिष्ठ संबंध रखती है। इसकी कोई लिपि नहीं है लेकिन राजस्थान से संबंधित होने के कारण देवनागरी से मिलती जुलती महाजनी लिपि इसके लिए सर्वथा उपयुक्त रहेगी। बंजारा भाषा बोलनेवालों की संख्या, क्षेत्र-विस्तार, अभिव्यक्ति क्षमता, समृद्ध लोक-साहित्य तथा सुदृढ सांस्कृतिक पृष्ठभूमि आदि तथ्यों के आधार पर बंजारा बोली नहीं, अपितु भाषा सिद्ध होती है। बंजारा जाति `जिप्सी समुदाय` से संबंधित है। जिप्सी आर्यवंशी हैं और उनकी भाषा का मूल स्रोत संस्कृत है। भारत में बंजारों की आबादी ६० लाख के करीब है। इनकी गिनती " जिप्सी" में कर लेने पर विश्व में इनकी आबादी २० करोड है।

किसी भी जाति की सभ्यता और संस्कृति के अभिज्ञान के लिए उसके लोकजीवन एवं लोक-संस्कृती का ज्ञान भी आवश्यक है। सदियों से बंजारा घुमक्कड रहा है। अत: उनके आदिम विश्वास, उनकी मान्यताएँ, उनके जीवन-मूल्य, उनके संस्कार आदि जातीय विशेषताएँ और आदिम परंपराएँ देखी जा सकती हैं।

लोकगीत हमारे जी[illegible] का [illegible] हैं । अतः लोकगीत मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विकास पर प्रकाश डालते हैं [illegible] के परिपार्श्व में इन गीतों की महत्ता सर्वोपरि है ।

वे गीत जो आकार में बडे हैं, जिनमें कथानक की प्रधानता के साथ ही गेयता भी है " लोकगाथा" कहे जा सकते हैं । अधिकांश लोकगाथाओं के रचयिता अनाम हैं । अतः उनकी रचनाओं में उनके व्यक्तित्व का अभाव स्वाभाविक ही है ।

भारतीय कथा-साहित्य की परंपरा अत्यंत प्राचीन है । इसकी शैली सुबोध होती है । " सत् " की विजय और " असत् " की पराजय दिखाना लोककथाकारों का लक्ष्य रहा है । इन लोककथाओं में जिस समाज का चित्र अंकित हुआ है वह सुखी है ।

लोक साहित्य में लोकोक्तियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । लोकोक्तियाँ अनुभव सिद्ध ज्ञान की निधि हैं । लोकोक्तियों की सबसे बडी विशेषता है इनकी समास शैली । इनमें इनके रचयिताओं ने गागर में सागर भरने का प्रयास किया है ।

लोक - मानस की कला" लोककला" कहलाएगी । बंजारा लोककलाएँ अपनी जातीय विशेषताओं से संपन्न हैं ।

इस प्रबंध के संबंध में एक प्रश्न उठ सकता है कि अन्ततः इस प्रयास का मूल्य क्या है ? -- बंजारा लोक-साहित्य की देन क्या है ? सामान्यतः अन्य हिंदी - जनपदीय लोक-साहित्य का जो मूल्य एवं मौलिक देन है, वही बंजारा, लोक - साहित्य का भी है । प्रत्येक देश अपनी सांस्कृतिक अभिवृद्धि के लिए लोक-चेतना का मुखापेक्षी है । लोकमानस की अथाह गहराइयों से लोकसाहित्य का रूपांकन हुआ है । लोकमानस के सुख दुःख पूर्ण क्षणों का एवं उतार चढाव युक्त मनः स्थितियों का अत्यंत स्वाभाविक निरूपण लोकसाहित्य में रहता है ।

बंजारा समाज भारतीय राजस्थानी संस्कृति से संपन्न है । इन लोगों के आदिम विश्वास, इनकी मान्यताएँ, इनके जीवन मूल्य आदि इनके लोक-साहित्य में सुरक्षित हैं । अतः बंजारा लोक-साहित्य हिंदी के लिए केवल भाषा विज्ञान की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण निधि नहीं है, बल्कि नृ-विज्ञान, जाति-विज्ञान, संस्कृति तथा साहित्य की दृष्टि से भी अमूल्य है ।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से बंजारा लोक-साहित्य काफी महत्त्व रहता है। बंजारा बोली पश्चिमी हिंदी की ही एक प्रशाखा है, अत: वह राजस्थानी की अनुजा ही है किन्तु अन्य अनेक बोलियों - मालवी, मेवाडी, हाडौती, भोजपुरी आदि से भी इसका निकट संबंध है। इसमें इन सब का प्रभाव है। पर इन प्रभावों के अतिरिक्त उसकी अपनी मौलिकता भी है। इसके अनेक शब्द ऐसे हैं जिनका पर्यायवाची मिलना कठिन है। अत: राष्ट्रभाषा हिंदी की समृद्धि के लिए लोकभाषा के शब्दों को अपनाना आज न केवल वांछनीय है बल्कि अनिवार्य भी है। बंजारा बोली का भी योगदान इसमें इतना ही महत्त्व पूर्ण होगा जितना ब्रज, अवधी, मालवी या किसी अन्य बोली का।

समाज-विज्ञान, संस्कृति और साहित्य की दृष्टि से भी इसका महत्व कम नहीं है। बंजारा लोक-साहित्य के मूल में सौंदर्य की खोज है और यह सौंदर्य जीवन के विभिन्न रूपों में प्रस्फुटित हुआ है। प्रकृति के साथ ही जीवनकी नैसर्गिक सुषमा को इस साहित्य ने ग्रहण किया है। गीतों या कथाओं में जो चरित्र चित्रित हुए हैं उनमें यथार्थता और स्वाभाविकता तो है ही, साथ ही आदर्श की प्रतिष्ठा भी है। गीतों में तो विविध भाव बिखरे पडे हैं।

लोक नायक मानवीयता का पुजारी होता है। उसकी निश्चल अभिव्यक्ति स्वांत:सुखाय के साथ ही लोकहिताय भी होती है। लोक-साहित्य की सामूहिक चेतना और प्रेरणा एक-सी होने के कारण राष्ट्रीय भावात्मक एकता (Emotional Integration) स्थापित करने में हर प्रदेश के लोक साहित्य का अध्ययन बहुत सहायक सिद्ध हो सकता है, इस दृष्टि से भी बंजारा लोक साहित्य का योगदान अपूर्व है।

संदर्भ ग्रंथ

लेखक	ग्रंथ
१. डा.अग्रवाल वासुदेवशरण	प्राचीन भारतीय लोकधर्म
२ अग्रवाल भारत भूषण (संपा.)	डा.नगेंद्र के सर्वश्रेष्ठ निबंध
३ उपाध्याय भरतसिंह	पाली साहित्य का इतिहास
४ कुलकर्णी कृष्णि.	मराठी भाषा उद्गम आणि विकास
५ डा.चटर्जी सुनीतिकुमार	राजस्थानी कहावतें,भाग-१
६ डा.तिवारी भोलानाथ	भारतीय लोक साहित्य
७ ,,	कविता कौमुदी ,भाग-५
८. डा.दुबे श्यामाचरण	छतीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय
९. डा.द्विवेदी हजारीप्रसाद	हिंदी साहित्य की भूमिका
१०.डा.दुबे श्यामाचरण	मानव और संस्कृति
११ पं.नेहरू जवाहरलाल	विश्व इतिहास की झलक
१२.डा.पाण्डेय राजबली	हिंदू संस्कार
१३ पारीख सूर्यकरण	राजस्थानी लोकगीत
१४ डा.भार्गव,व्ही.एस.	मध्यकालीन राजस्थान का इतिहास
१५.डा.माहेश्वरी हीरालाल	राजस्थानी भाषा और साहित्य
१६.मनोहर प्रभाकर(सं.)	,,
१७.डा.मेनारिया मोतीलाल	,,
१८.डा.यादव शंकरलाल	हरियाना प्रदेश का लोकसाहित्य
१९.डा.वर्मा धीरेंद्र (सं.)	हिंदी साहित्य कोश
२०.,,,,,,	हिंदी भाषा का इतिहास
२१.व्यास भोलाशंकर (संपा.)	हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास
२२.शर्मा गोवर्धन	डिंगल साहित्य
२३.डा.शुक्ल रामशंकर	भाषा शब्द कोश
२४.डा.शर्मा विनयमोहन	दृष्टिकोण।
२५.संचालक,सूचना विभाग,मध्यभारत	मध्य भारत का इतिहास
२६.सीतादेवी (सं.)	धूलि धूसरित मणियाँ
२७.डा.सत्येन्द्र	लोकसाहित्य विज्ञान
२८. ,,	ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन
२९.डॉ.सहल कन्हैयालाल	लोककथाओं की कुछ प्ररूढ़ियाँ

पत्र पत्रिकाएं

१.डॉ.राजेन्द्रप्रसाद अखिल भारतीय सांस्कृतिक सम्मेलन

२.हिंदीसाहित्य सम्मेलन,प्रयाग,सं.२००१

३.पं.त्रिपाठी रामनरेश जनपद,अंक १.

४.डा.द्विवेदी हजारी प्रसाद जनपद त्रैमासिक अंक १,१९६९

५.डा.नामवरसिंह जनपद त्रैमासिक खंड,१,अं.१.

६.डा.अग्रवाल वासुदेवशरण सम्मेलन पत्रिका लोकसंस्कृति

७.डा.द्विवेदी ह.प्र. ,,,,,,,,,,

८.सत्यार्थी देवेन्द्र आजकल (दिल्ली)सं.७,नवम्बर,१९५१

१. पाणिनी: अष्टाध्यायी

२.महाभारत

३.हर्षचरितम्

४.पुराण निरुक्त

५.भविष्य पुराण,प्रति सर्ग पर्व

ऋग्वेद

७.अर्थर्ववेद

वेदान्त सूत्र

९.गौतमसूत्र

१०.जैमिनीसूत्र

११.शतपथ ब्राह्मण

१२.महाभारत-आदिपर्व शांति पर्व

१३.ऐतेरय ब्राह्मण

१४.बृहदारण्यक उपनिषाद

१५.रघुवंशम्

१६.तैत्रिरीय संहिता

१७.ऐतरेयोपनिषाद

१८.श्रीमद्भगवत गीता

१९.संगीत रत्नाकर

२०.प्रताप रुद्राय

२१.भट्टाचार्य तारानाथ: वाचस्पत्यम्,चतुर्थ भाग

२२.पुष्पदन्त महापुराण

२३.

1. Apte,V.S. Sanskrit English Dictionary

2. Baines,Athelstane Ethmography,Strassburg,1912

3.Dr.Bhandarkar,D.R. Wilson Phidlogical Lectures, Literary Society,Vol.I,1919

4.Bhimbhai Kriparam Hindu of Gujrat.

5.Bhargawa B.S. Criminal Tribes of India, Lucknow,1949.

6.Beams,John A comparative Grammar of the Modern Aryan Language of India

English (Contd.

7. Batkin, A.S. — Folklore Dictionary

8. Crook, William — Castes and Tribes of N.W. Provinces and Outh, Vol. 1896

9. Cowell — Academy, 1870.

10. Cumberledge H.R. — Monograph on Bunjarrah Class, 1882, (Bombay Edun., Press)

11. Dr. Chatterji, S.K. — Origin and Development of Bengali Language.

12. Dr. Das, Kunj Bhikhari — A Study of Orrissan Folklore

13. Dr. Dwivedi (ed) — Selection from Brahmana and Upnishada.

14. Elliot, H.M. — The races of North Western Provinces of India, London Vol. I, 1869.

15. — Encyclopeadia of Social Sciences, Vol. 5.

16. — Encyclopeadia of Britanica, Vol. 9.

17 " — Encyclopeadia of Religion and Ethics, Vol. 12.

18 Frazer J.G. — The Golden Bough Vol. IX.

19. Gillan, J.L. and J.P. — Cultural Sociology, New York, 1948.

20. Dr. Grierson, William — Linguistic Survey of India, Vol. I, Part I, Calcutta, 1927

21. Gunthrorpe, E.J. — Notes of Criminal Tribes, Bombay, 1882.

English (Contd...

22. Gerould G.H. — The Ballad of Tradition (Oxford University Press, 1932)

23. Graves, Robert — The English Ballads.

24. Gibbs H.A. — Introduction to the Proverbs Arabia.

25. Hollins S.T. — Criminal Tribes of U.P.1914

26. Hootan E.A. — Up from the Ape, New York, 1958.

27. Irvine — Army of Indian Mughals.

28. Ibbestson D.J. — The Punjab Castes and Tribes, Vol.II.

29. Krishna Iyer L.A. — Anthropology in India.

30. Kennedy M. — Criminal Classes of Bombay Presidency, Bombay, 1908.

31. K.Iyer, L.A. and Balratnam - Anthropology in India, Bombay, 1961.

32. Kittrege, G.L. — F.J.Child's English and Scottish Popular Ballads.

33. Lemmarchand, A.E.M. — A Guide of Criminal Tribes, Nagpur, 1908.

34. Dr.Mujumdar D.N. — Races and Culture of India, Bombay, 1958.

35 Maria Leach — Dictionary of Folklore Col.I.

36. Pott — Die Zigenner in Europa and Asien, 1844-45, Vol.I and II.

37. Prasad Narmdeswar — People of Tribal Bihar, Ranchi, The Tribal Research Institute, 1961.

38. Penzer N.M. — The Ocean of the Story, London 1924.

39. Rose, H.A. — Tribes and Castes of Punjab and N.W.F. Provinces, Lahore, Vol. II, 1911.

40. -do- — Tribes and Castes of Punjab, Lahore, Vol. III, 1914.

41. Race and Sanger — Blood Groups in Man, London, 1958.

42. Dr. S. Radhakrishna — Hindu View of Tribes.

43. Syed Siraj Ul Hassan — The Castes and Tribes of H.E. H. Nizams Domination, Vol. I Bombay, 1920.

44. Sher Singh Sher — The Sikligars of Punjab, 1966.

45. Smith, V.A. — India, Vol. III.

46. Sinha, N.K. — History of India.

47. Sidwick — The Ballad

48. Stiath Thompson — The Folk Tales.

49. Stiath Thompson — The Tales.

50. Tod, James — Letters of Maharattas Indian Office Tracts, 1798.

51. Thurston. E — Castes and Tribes of Southern India, Vol. I.

52 Wilks — South of India

Journals Reports andGaxetters

1. Sinclair — Castes in the Dekkan, India Antiquiry, July, 1884.

2. Aiyappan, A. — Report on the Socio-Economic Condition of the Ab-original Tribes of the Provinces of Madras, 1948.

4. Kitts, E.J. — Report on the Census of Berar, 1881.

5. Hastings, Warren — Census of India, Vol. VI, 1891.

6. Stuart, H.A. — Census of India, XIII, 1891.

7. Robertson B — Census of India, Vol. XI, part I, 1891.

8. Jackson, A.M.T. — Indian Antiquary, Vol. XI.

9. Temple R. — Indian Antiquary, Vol. IX.

10. Tessitory — Indian Antiquary, 1914-16.

11. Lokur B.N. — Report of the Advisory Committe on the Revision of Scheduled Castes and Scheduled Tribes, 1965.

12. Mullay S.S. — Notes on Criminal Tribes of the Madras Presidency, Madras, 1882.

13. Govt. of India — Report on ~~kk~~ the Criminal Tribes act Enquiring Committee 1949.

14. Govt. of India — Census of India Vol. IX, XI, 1961

15. Tribal Cultural Research Institute, Hyderabad — The Banjara of Andhra Pradesh.